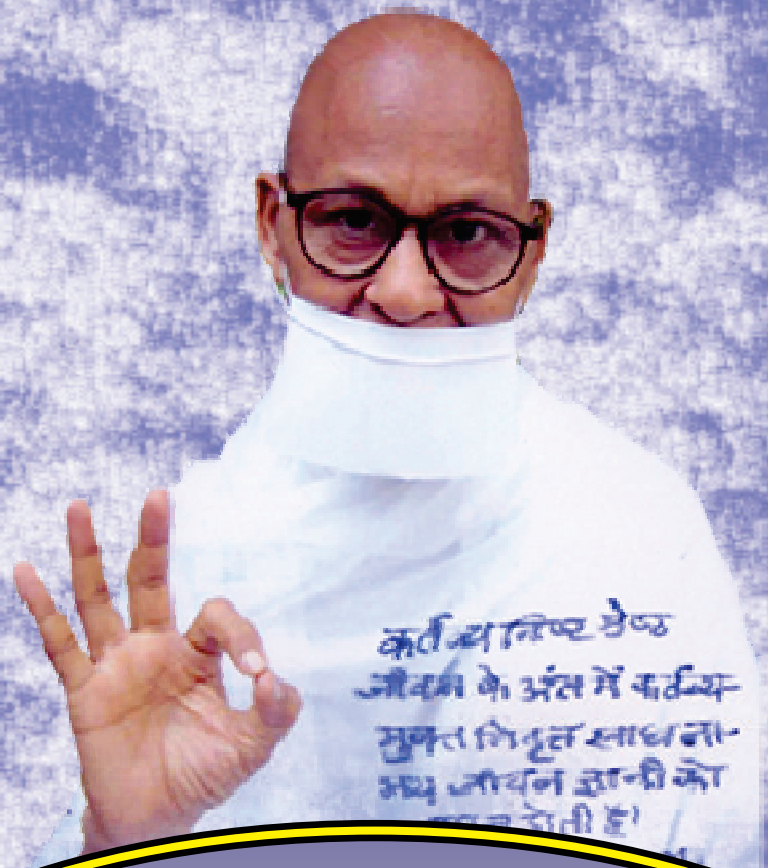

आगम मनीषी

श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर

भाग ० ५

ज्ञाता धर्मकथा सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : ज्ञाता सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– ग्यारह अ गसूत्रों में यह छट्ठा अ गसूत्र है । भगवती सूत्र के बाद इस शास्त्र का क्रम रखा गया है । अ गसूत्र होने से यह गणधर रचित आगम है ।

विभाजन की अपेक्षा इसके दो श्रुत स्क ध है । प्रथम श्रुतस्क ध में १९ अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्क ध में १० वर्ग और उन वर्गों में कुल २०६ अध्ययन है । वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र का परिमाण ५५०० श्लोक तुल्य स्वीकारा गया है ।

इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि जी की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । वर्तमान में अर्वाचीन व्याख्याएँ स स्कृत हिंदी गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध है जिसमें स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलखऋषि जी म॰सा॰ आचार्य श्री आत्माराम जी म॰सा॰ आचार्य श्री हस्तीमलजी म॰सा॰ आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰ आदि द्वारा स पादित मिलती है । इसके ऊपरा त युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म॰सा॰ के नाम से प्रसिद्ध बत्तीसी में, गुरुप्राण आगम बत्रीसी में, स स्कृति रक्षक स घ ब्यावर की बत्तीसी में यह शास्त्र विवेचन सहित उपलब्ध है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के पूर्ण नाम की सार्थकता क्या है एव इसकी विषय वस्तु किस प्रकार है ?

उत्तर– इस पूरे सूत्र में शिक्षाप्रद दृष्टा त(ज्ञात) और धर्मकथाएँ वर्णित होने से इसका परिपूर्ण नाम ज्ञाता+धर्मकथा=**ज्ञाताधर्मकथा** अ गसूत्र है । स क्षिप्त में इसे ज्ञातासूत्र भी कह दिया जाता है ।

प्रथम श्रुतस्क ध में कितनी ही ऐतिहासिक कथाएँ है अर्थात् घटित घटनाएँ एव चरित्र है और कितनी ही कथाएँ रूपक या दृष्टा त के रूप में कही गई है । इन सभी कथाओं का उद्देश्य विविध प्रकार से प्रतिबोध प्रेरणा या शिक्षा देना मात्र है । जिनसे मुमुक्षु साधक भलीभाँति आत्मजागरण एव आत्म उत्थान कर सके ।

इन कथाओं में श्रद्धा का महत्त्व, आहार करने का उद्देश्य, अनासक्ति, इन्द्रिय विजय, विवेक बुद्धि, गुण वृद्धि, पुद्गल स्वभाव, कर्म परिणाम

एव कर्मों से आत्मा की दशा, क्रमिक आत्मविकास, भोगों का जहर के समान दुष्परिणाम, सहनशीलता के माध्यम से स यम की आराधना-विराधना एव दुर्गति-सद्गति आदि विषयों पर सरल और सरस भाषा में प्रकाश ड़ाला गया है । ये कथाएँ वाद-विवाद या मनोर जन के लिए नहीं है, अपितु जीवन उत्थान के लिये आदर्श रूप में चि तन मनन करने योग्य है ।

द्वितीय श्रुतस्क ध में स यम साधना करके देवलोक में जाने वाले २०६ जीवों का जीवन वृत्त है । सभी साधिकाएँ स्त्री पर्याय में स यम स्वीकार कर देवी के रूप में उत्पन्न होने वाली आत्माएँ है । वे सभी तेवीसवें तीर्थंकर के शासन में दीक्षित हुई एव स यम की विराधिका बनी । देव भव के अन तर मनुष्य भव प्राप्त कर स यम की शुद्ध आराधना करेगी एव वे सभी(२०६) आत्माएँ मुक्ति प्राप्त करेगी ।

इस प्रकार यह छट्ठा अ ग सूत्र कथा प्रधान शास्त्र है । जन साधारण के लिए भी यह रोचक आगम है एव जीवन निर्माण योग्य अनेक प्रेरणाओं का भ ड़ार है । एक विशेषता इसकी यह भी है कि इसमें कही गई जीवन उत्थान की प्रेरणाएँ श्रमण एव श्रमणोपासक दोनों ही वर्गों के लिए बहुत उपयोगी है ।

प्रश्न–३ : प्रथम श्रुतस्क ध के १९ अध्ययनों के नाम और परिचय क्या है ?

उत्तर– इसके १९ अध्ययनों के नाम और परिचय इस प्रकार है–

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
१	उत्क्षिप्त ज्ञात	स यम से उत्क्षिप्त चित्त, ऐसे साधक मेघमुनि के जीवन दृष्टा त से स यम में पुनः स्थिर होने की शिक्षा दी गई है ।
२	स घाड़ज्ञात	विजय चोर का स गाथ(साथ) जेल में धन्ना शेठ के द्वारा निभाने के दृष्टा त से श्रमणों को ऐसी भावना से शरीर के साथ को निभाने हेतु आहार का कथन ।
३	अ ड़े	धीरज रखने से **अ ड़े** द्वारा आन दकारी मयूर की प्राप्ति के दृष्टा त से साधकों को स यम–मोक्षमार्ग में श्रद्धायुक्त धैर्य रखने का कथन ।

४	कूर्म (कछुआ)	अ गों को स्थिरता से गोपन करके रखने वाले कछुएँ के दृष्टा त से श्रमणों को इन्द्रिय निग्रह करने की प्रेरणा ।
५	शैलक राजर्षि	"स यम मार्ग में चलते हुए कभी प्रमाद प्रविष्ट हो जाय तो पुन: विवेक जागृत करना-कराना" यह शैलक मुनि और प थक शिष्य के दृष्टा त से दर्शाया गया है ।
६	तु बड़	तुम्बे के दृष्टा त से समझाया गया है कि जीव कर्मलेप बढ़ने से भारी होकर स सार में गमन करता है और कर्मलेप से मुक्त होकर ऊपर गति करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।अत: साधक कर्म क्षय करने में प्रयत्नशील बनें ।
७	रोहिणी ज्ञात	धन्ना सार्थवाह द्वारा चार बहुओं की परीक्षा में रोहिणी नाम की छोटी बहु विशेष बुद्धिशाली होने से घर की अधिकारिणी बनी । उसी तरह ग्रहण किये चारित्र तप में उत्तरोत्तर उन्नति करके साधक मोक्षाधिकारी बन सकता है ।
८	मल्ली भगवती	स यम-तप में भी लघु-माया कपट क्षम्य नहीं होता । उच्च रसायन युक्त साधना के एक या अनेक गुणों से तीर्थंकर पद की प्राप्ति हो सकती है । श्रेष्ठ वचन प्रतिज्ञा को समय पर निभाकर ६ मित्रों ने दीक्षा का साथ निभाया; मोहाभिभूत बने हुए तथा आक्रमण करके आये राजाओं को विशेष सूझबूझ से द्रमल्ली कु वरी ने विरक्त बनाया इत्यादि तत्त्व दर्शन मल्ली भगवती के दृष्टा त से कराये गये हक्त
९	माक दीय	माक दी सार्थवाह के पुत्र जिनरक्ष और जिनपाल के जीवनवृत्त(दृष्टा त) से भुक्त भोगों की पुन: स्मृति नहीं करके साधक को साधना में सावधान रहना चाहिए तो वह जिनपाल की तरह अपनी नगरी में अर्थात् मोक्ष में पहुँच सकता है ।

		पुन: भोगों में आकर्षित होने से जिनरक्षित की तरह दु:खद परिणाम की प्राप्ति होती है ।
१०	च द्रमा	च द्र की कला घटती भी है और बढ़ती भी है; वैसे ही साधक को गुणों की वृद्धि करके पूर्णता को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना चाहिये । गुणों को विलुप्त कर अमावसवत् कभी भी नहीं बनना चाहिये ।
११	दावदव	वृक्षों द्वारा विविध हवाओं को सहन करने के दृष्टा त से साधक को अनुकूल प्रतिकूल सभी प्रकार के परीषहों के आनेपर अथवा मनोज्ञ अमनोज्ञ वचनों के स योग में भी मध्यस्थ भावों में, स यम भावों में स्थिर रहने की प्रेरणा दी गई है अर्थात् स यम में ड़ा वाड़ोल नहीं होना एव रागद्वेष में भी नहीं पड़ना चाहिये ।
१२	उदक ज्ञात	पानी के दृष्टा त से पुद्गलों के परिवर्तनशील स्वभाव को दर्शाया गया है । अच्छे पुद्गल खराब और खराब पुद्गल अच्छे बन जाते हक्त।अत: सर्व पुद्गल स्वभाव को जानकर स्थिर समत्व भावों में रमण करना चाहिए ।
१३	दर्दुर-मेंढ़क	साधक को धर्मप्राप्ति के बाद भी स त समागम करते रहना चाहिए जिससे धर्म स स्कार पुष्ट होते रहें । अन्यथा साधक न द मणियार की तरह भटक जाता है, पशुयोनि में पहुँच जाता है । मानव को दान आदि परोपकार के कार्यों की यशकीर्ति में डूबना नहीं चाहिये । ये शिक्षा न द मणियार के दृष्टा त द्वारा इस अध्ययन में समझाई गई है ।
१४	तेतलि पुत्र	तेतलिपुत्र प्रधान और सुनार की पुत्री पोटिला के इस घटित दृष्टा त द्वारा अनेक शिक्षा स देश दिये गये हक्त । प्रसन्न व्यक्ति या राजा कभी अप्रसन्न हो जाता है ।अनुरागी व्यक्ति कभी

		तिरस्कार कर देता है । वचनबद्ध देव अनेक प्रयत्नों से वचन निभाता है । जीवन के अच्छे स योग भी क्षणिक होते हक्त, वे कभी दुखदायी भी बन जाते हक्त धर्म ही एक मात्र त्राण-शरण रूप सुखदायी है ।
१५	न दी फल	जहरीले मधुर फलों की उपमा द्वारा बताया गया है कि स सार के लुभावने सुखभोग भी जीवन में विष तुल्य है एव भवो-भव जन्म-मरण की वृद्धि कराने वाले हक्त । इनसे दूर ही (बचकर) रहने में सुरक्षा है ।
१६	अमरक का(द्रौपदी)	द्रौपदी के अनेक भवों के वर्णन से एव अ त में अमरक का में स हरण युक्त घटित जीवन चरित्र के द्वारा अनेक शिक्षाएँ सूचित की गई है ।
१७	आकीर्ण अश्व	घोड़ों के दृष्टा त से शब्दादि इन्द्रिय विषयों की आसक्ति का कटुफल वध-ब धन रूप बताकर उन्नतजाति के अश्वों के समान इन्द्रिय विषयों से दूर रहने की शिक्षा साधकों को दी गई है ।
१८	सु सुमा दारिका	इस अध्ययन में आहार की उत्कृष्टतम अना-सक्ति की दशा को प्रतिफलित किया गया है । साधक साधनाकाल में जो आहार करता है, वह मात्र शरीर निर्वाहार्थ करे; स्वादवृत्ति, आसक्ति उस आहार में न करे, यह शिक्षा दर्शाई गई है ।
१९	क ड़रीक–पु ड़रीक	महाविदेह क्षेत्र के दो भाई राजाओं के जीवन दृष्टा त से दर्शाया गया है कि स यम साधना से च्युत होकर राज्य एव भोग सुखों में लीन होने पर जीव की अवदशा अधोगति हो जाती है । सैकड़ों हजारों वर्षों की स यम साधना व्यर्थ हो जाती है और स यम साधना युक्त जीवन जीने वाले की अल्प समय में ही उच्च गति हो जाती है ।

इस प्रकार इस प्रथम श्रुतस्क ध में घटित और कल्पित दृष्टा तों से धर्म साधकों को अनेकानेक शिक्षाएँ दी गई है । इन शिक्षाओं को धारण कर साधक अपनी साधना में स्थिरता पूर्वक आराधक बन सकता है ।

प्रथम श्रुतस्क ध

अध्ययन–१ : मेघकुमार

प्रश्न–१ : मेघकुमार का सा सारिक परिचय क्या है ?

उत्तर– मेघकुमार का जन्म राजगृह नगर में हुआ था । उनके पिता श्रेणिक राजा और माता धरिणी देवी थी । कोणिक, अभयकुमार आदि उनके भाई अन्य माताओं के पुत्र थे । श्रेणिक राजा के न दा आदि १३, काली आदि १०, चेलना, धारिणी, यों कुल २५ अन्य राणियों के नाम शास्त्रों में मिलते हक्त मेघकुमार कलाचार्य के पास रहकर ७२ कलाओं में प्रवीण हुए । अभय कुमार, कोणिक आदि समर्थ बड़े भाई थे । अतः उन पर राज्य या स सार की कोई जिम्मेदारी नहीं थी । यौवनवय प्राप्त होने पर आठ राजकन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ । वैवाहिक जीवन में उनका पूर्ण सुखमय समय व्यतीत हो रहा था ।

प्रश्न–२ : मेघकुमार नाम रखने के पीछे कोई विशेष कारण था ?

उत्तर– गर्भ में आने के दो महिने बाद तीसरे महीने में मेघकुमार की माता को दोहद उत्पन्न हुआ था अर्थात् एक उत्कृष्टतम इच्छा–मनोकामना हुई थी कि मक्त मेघाछन्न आकाश एव म द-म द वृष्टि के प्राकृतिक मनोरम वातावरण में राजा के साथ सपरिवार आन द पूर्वक नगर एव उपवन में भ्रमण करूँ, विचरण करूँ ।वह समय वर्षाकाल समाप्त होने के बाद का था ।अतः शास्त्र में अकाल मेघ दोहद कहा गया । राणी भी इस मनोरथ पूर्ति की अशक्यता से व्याकुल थी । राजा ने सुना तो वे भी चि तित बने पर कुछ कर सकने जैसा हाथ में था नहीं । क्यों कि प्राकृतिक स योग कुदरती होते हक्त्ो मानव के हाथ में नहीं होते । आखिर अभयकुमार ने अपने मित्र देव को अट्ठम तप से याद कर बुलाकर वैसा प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करवाया । माता का मनोरथ पूर्ण हुआ, दोहद की पूर्ति समाप्ति हुई । देव ने भी अपनी वैक्रिय माया समेट ली और अभयकुमार से मिलकर विदाई ली । इस घटना की विशेषता

को लेकर पुत्र जन्म होने पर माता पिता ने मेघ के दोहद को स्मृति में रखकर मेघकुमार नाम रखा ।

प्रश्न–३ : राजषी वैभव में से परिवर्तित हुआ उनका धार्मिक जीवन कैसा रहा ?

उत्तर– पुण्य स योग से भगवान महावीर स्वामी का राजगृही में पदार्पण हुआ । पुण्यानुब धी पुण्य की प्रकृष्टता से हलुकर्मी मेघकुमार को प्रभु के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ । माता-पिता की आज्ञा प्राप्त की और दीक्षा महोत्सव के साथ वे मेघमुनि बन गये । स यम की प्रथम रात्रि कष्टमय व्यतीत हुई । दीक्षा छोड़कर घर जाने के स कल्प से सुबह भगवान के पास गये । प्रभु तो घट-घट अ तर्यामी थे, स्वत: भगवान ने मेघमुनि को पूछ लिया कि तुम घर जाने के स कल्प से आये हो ! मेघमुनि ने स्वीकार किया। भगवान ने बड़े ही सु दर ढ़ग से समझाकर मेघमुनि को स यम में स्थिर किया । अपनी कमजोरी के प्रायश्चित्त रूप में मेघमुनि ने पुन: दीक्षा ग्रहण करते हुए यह स कल्प किया कि "दो नैत्र की रक्षा के अतिरिक्त मेरा पूरा शरीर मुनियों की सेवा के लिये सदा अर्पित रहेगा ।"

स यम जीवन में मेघमुनि ने अनेक प्रकार से तप का आचरण किया, भिक्षुपड़िमा और गुणरत्न स वत्सर तप किया, ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान किया एव अ त में स लेखना स थारा द्वारा समाधि पूर्वक काल करके, प्रथम अणुत्तर विमान में देव बने । वहाँ से वे महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स पूर्ण कर्मों का क्षय करेंगे ।

प्रश्न–४ : अभयकुमार ने किस देव को किस प्रकार बुलाया ? आज भी कोई बुला सकते है ?

उत्तर– अभयकुमार श्रेणिक के सभी पुत्रों में बड़े थे तथा बुद्धिनिधान एव अत्य त पुण्यशाली थे । उनका प्रथम देवलोक में एक पूर्व का मित्र देव था । अभयकुमार चि तन के बाद इस निर्णय पर पहुँचे कि अकाल मेघ एव असमय वृष्टि, देव सहाय से स भव हो सकती है । मुझे अपने साथी मित्र देव को बुलाकर यह कार्य करवाना चाहिये । देव को बुलाने का तरीका भी उसे याद आ गया और निर्णय करके वह अपनी पौषधशाला में गया । अट्ठम तप धारण किया । विधिपूर्वक पौषध भी धारण किया और उस देव का स्मरण(जाप आदि) करते हुए तल्लीन हो गया । अभयकुमार का यह अट्ठम पौषध धर्माचरण रूप नहीं था कि तु सा सारिक कार्यपूर्ति हेतु

सफल श्रेष्ठ साधना थी । अ तगड़ सूत्र वर्णित सुलसा ने देवप्रसन्न करने और अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिये सावद्य विधि का अनुपालन किया था । उस विधि से उसे देव को प्रसन्न कर बुलाने में अत्यधिक समय(वर्षों) लगे थे । जब कि निर्वद्य तप साधना से तीन दिन में सफलता मिल जाती है । निर तर देव का स्मरण या जाप करने से स्वाभाविक ही देव को अ ग स्फुरण आदि से कुछ अनुमान हुआ कि कोई याद कर रहा है फिर अवधि ज्ञान में उपयोग लगाकर जान लिया कि अभयकुमार ने मुझे याद किया है । पौषधशाला में देव पहुँच गया । वैमानिक देवों की गमनशक्ति अनुपम होती है । वे कुछ ही क्षणों में मानवलोक में पहुँच सकते हक्त । देव ने अभय कुमार से याद करने का कारण पूछा तब अभयकुमार ने पौषध पालकर हाथ जोड़कर देव को अपनी माता धारिणी की दोहद युक्त बाद बताई तथा दोहद को पूर्ण करने का निवेदन किया ।

आज भी कोई व्यक्ति इतनी दृढ़ता, स्थिरता एव तल्लीनता से प्रयत्न करे तो देव उपस्थित हो सकते हक्त । तीन दिन निर तर चौविहार उपवास, श्रद्धा एव अप्रमत्तभाव तथा एकाग्रता करना जरूरी है ।

प्रश्न–५ : मेघकुमार की दीक्षा में उतावल हुई थी क्या ? अथवा माता-पिता ने बराबर कसौटी नहीं की थी ? जो दीक्षा के प्रथम दिन में ही वैराग्य उतर गया और घर जाने लगे ?

उत्तर– मेघकुमार स्वय यौवन वय में परिपूर्ण उम्र के थे । ७२ कला में निपुण थे । बालक नहीं थे । माता-पिता ने भी बहुत कसौटी उत्तर प्रत्युत्तर किये । खूब समझाने का प्रयत्न किया । प्रत्येक सुझाव का उत्तर मेघकुमार की तरफ से वैराग्यपूर्ण और वीरता, दृढ़तापूर्ण था । बिना इच्छा के माता-पिता को निरुत्तर होकर आज्ञा देना आवश्यक हो गया । तो भी एक दिन के लिये राजा बनाने का अ तिम हथियार भी अपनाया । राजा बने मेघ से आदेश मा गने पर भी उन्होंने दीक्षा की तैयारी का एव ओघा-पात्रा म गाने का एव शिरमुड़न के लिये नाई को बुलाने का ही आदेश दिया । दीक्षा स ब धी उत्तर प्रत्युत्तर जमाली के प्रकरण अनुसार ही होने से यहाँ उनका पुनर्कथन नहीं किया है । जिज्ञासु भगवतीसूत्र प्रश्नोत्तर शतक–९, पृष्ट–१८५ पर देखे । दीक्षा देने वाले स्वय सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी थे एव माता-पिता तथा पत्नियाँ आदि पारिवारिक लोगों ने भी मोह पूर्ण बहुत प्रयत्न किया ही था । वास्तव में वैराग्य भी सच्चा ही था कि तु प्रथम रात्रि की भवितव्यता

ऐसी ही थी जो भगवान महावीर स्वामी तो केवल ज्ञान से जानते ही थे ।

नवदीक्षित मुनि बाल या वृद्ध आदि कुछ हो तो उसके रात्रि विश्राम की व्यवस्था विशेष रूप से की जा सकती है । कि तु मेघमुनि तो युवा, क्षत्रिय एव पूर्ण समर्थ थे । अतः रत्नाधिक के क्रम से ही उन्होंने अपने लिये शयन स्थान अ तिम स्वीकार किया । जो स तों के बाहर जाने-आने वाले द्वार के निकट हुआ । शुरु में सोते समय से लेकर सुबह उठते समय तक थोड़ी-थोड़ी देर में किसी न किसी स त का बाहर जाना आना रहा । यों भी दीक्षा के दिनों में दीक्षार्थी को विविध श्रम महोत्सव के कारण होता ही है और फिर यहाँ दीक्षा के बाद रात्रि में स तों के आवागमन से निद्रा विश्राम नहीं हो पाने से स योग फरसना वश उनकी विचारधारा में परिवर्तन आया और दीक्षा छोड़ने के स कल्प से ही प्रभु को व दन कर आज्ञा लेकर घर जाने का निवेदन करने का निर्णय किया था । सार यह है कि दीक्षा में उतावल नही हुई, योग्यता भी वैराग्य की परिपूर्ण थी, कसौटी भी हुई, दीक्षा दाता भी स्वय तीर्थंकर प्रभु थे, कि तु भवितव्यता ऐसी ही थी, यों समझना चाहिये ।

प्रश्न–६ : प्रभु ने उसे किस प्रकार पुनः वैराग्य में स्थिर किया ?

उत्तर– सर्वज्ञ प्रभु के लिये यह कोई कठिन था नहीं । भगवान ने मेघ मुनि को उसके दो पूर्व भवों का विवरण सुनाया । यहाँ से तीसरे भव में हे मेघ ! तूँ हजार हाथी-हाथिनियों का अधिपति **सुमेरुप्रभ** नामका हाथी था एक समय वन में दावानल प्रकटा । अग्नि से बचने के लिये समस्त प्राणी अपने प्राण बचाने इधर से उधर भागने लगे । तूँ भी अपने यूथ से बिछुड़ गया । अकेला ही एक सरोवर पर पहुँचा । पानी पीने की आशा से उसमें उतरा । कीचड़ में फँस गया, पानी तक पहुँच नहीं सका । वृद्ध जर्जरित १२० वर्ष की तेरी काया थी । प्रयत्न करने पर पुनः बाहर भी नहीं निकल सका कि तु अधिक-अधिक कीचड़ में फँसता गया ।

उस समय एक जवान हाथी पानी पीने वहाँ आया । जिसे तूँ ने अपने झु ड़ में से बलपूर्वक निकाल दिया था । तुझे देखते ही उसने पुराने वैर को याद किया, तीक्ष्ण दा तों से तीन बार प्रहार किया फिर पानी पीकर चला गया । उस प्रहार से तुझे प्रच ड़ वेदना हुई जिसे सात दिन-रात सहन करता हुआ मर कर तूँ पुनः ज गल में **मेरुप्रभ** हाथी बना ।

इस बार भी तूँ सात सौ हाथियों का अधिपति बना एव सुख पूर्वक रहने लगा । एक बार ज गल में दावानल प्रगटा जिसे देखकर विचार करते-

करते तुझे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, पूर्वभव को स्पष्ट देखने लगा । बार बार होनेवाले दावानल से बचने का उपाय ढू ढ़ कर तूँने अन्य साथियों के सहयोग से एक योजन प्रमाण गोलाकर क्षेत्र को साफ करके वृक्षों से रहित मेदान बना दिया। ताकि दावानल के समय ज गल के पशु इस मैदान में आकर निर्भय एव सुरक्षित रह सके । यथासमय फिर दावानल प्रगटा । सभी प्राणी सुरक्षित उस मैदान में पहुँच गये । हे मेघ ! तूँ भी उस मैदान में पहुँचकर स्थान प्राप्त कर खड़ा हो गया । मैदान खचाखच भर गया था । धक्का-धक्की हो भी रही थी । तूँने खाज करने के लिये एक पाँव ऊपर उठाया । उसी समय धक्के खाते-खाते एक खरगोस तेरे उस पाँव की जगह में आकर बैठ गया । तूँ वापिस पाँव रखने लगा तो खरगोश को देखकर उसकी अनुक पा के लिये तूने पाँव अधर ही रखा । २–३ दिन से दावानल शा त हुआ । सभी पशु-पक्षी वहाँ से निकल गये । तूँने भी चलने के लिये पाँव नीचे रखने का प्रयत्न किया कि तु पाँव तीन दिन में अकड़ जाने से हे मेघ ! तूँ धड़ाम से नीचे गिर पड़ा । तब तेरे शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई । तीन दिन उस वेदना को वेदता हुआ १०० वर्ष की आयु पूर्ण करके श्रेणिक राजा की धारणी राणी की कुक्षी में पुत्र रूप में तूँ उत्पन्न हुआ ।

हे मेघ ! पशु योनि में एक छोटे प्राणी के लिये तूँने कितना अपार कष्ट तीन दिन सहन किया एव पूर्व भव में शत्रु हाथी के प्रहार से उत्पन्न महावेदना को सात दिन सहन किया, ऐसे ही भवोभव में जीव अनादि से महादुःखों को भुगतता आ रहा है । अब मानव भव पाकर तूँ युवावस्था में स्वस्थ समर्थ शरीर स पन्न होकर सर्व दुःखमुक्त कराने वाली स यम यात्रा में थोड़े से कष्टों को सम्यक् सहन नहीं कर पाया ।

इस अपनी पूर्वभव की घटना को भगवान के मुख से सुनकर मेघ मुनि को शुभ परिणामों से, प्रशस्त अध्यवसायों से एव लेश्याओं की विशुद्धि से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । वह स्वय प्रत्यक्ष अपने ही ज्ञान से भगवान से सुना वैसा ही अपना पूर्व भव देखने-जानने लगा ।

इस प्रकार भगवान के द्वारा पूर्वभव स्मरण कराने से उसका वैराग्य पुनः कई गुणा बढ़ गया । वह स यम भावो में स्थिर हो गया । आन दाश्रुओं युक्त होकर भगवान से व दन नमस्कार कर पुनः दीक्षा देने का निवेदन किया और सदा के लिये दो आ खों की रक्षा के अतिरिक्त स पूर्ण शरीर स यम एव स यमियों की सेवा में न्योछावर कर दिया । इस प्रकार भगवान ने मेघ

मुनि को सहज ही स यम भावों में पुनः स्थिर कर दिया था ।

प्रश्न–७ : मेघमुनि ने फिर किस प्रकार तप स यम ज्ञान ध्यान की वृद्धि कर आत्मकल्याण किया ?

उत्तर– मेघमुनि ने क्रमशः ग्यारह अ गों का अध्ययन किया । उपवास आदि मासखमण पर्यंत तप से आत्मा को भावित करते हुए स यम में विचरण करने लगे । यथासमय उन्होंने(भगवती श॰–२ में वर्णित स्क धक के समान) भिक्षु की ११ प्रतिमाओं की भी आराधना करी । गुणरत्न स वत्सर तप भी किया । फिर विविध तप मासखमण पर्यंत करते रहे । अ त में स्क धक के समान ही शरीर हाड़पिंजर सा बन गया । फिर राजगृही के बाहर **विपुल** पर्वत पर पादपोपगमन स थारा किया । पर्वत पर चढ़ना एव स थारा विधि का वर्णन स्क धक के समान समझना । एक महीने के स थारे से १२ वर्ष की कुल दीक्षा पर्याय से आयुष्य पूर्ण कर विजय नामक अनुत्तर विमान में ३३ सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुए । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में मानव भव प्राप्त कर तप-स यम का आराधन कर मुक्ति प्राप्त करेंगे ।

प्रश्न–८ : इस अध्ययन से क्या-क्या शिक्षा एव प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर– **(१)** जीव ने अनेक भवों में विविध वेदनाएँ सहन की है । अतः इस मानव भव को पाकर धर्म साधना करने में कष्टों से कभी भी नहीं धबराना चाहिए । **(२)** पशु या मनुष्य किसी को भी अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो सकता है । **(३)** पुनर्जन्म एव कर्म सिद्धा त की सम्यक् आस्था रखनी चाहिये । **(४)** दुख की घड़ियों में भी विवेकपूर्ण आवश्यक कर्तव्यों में च्युत नहीं होना चाहिये । जैसे कि मेघमुनि स यम में अस्थिरचित्त हो जाने पर भी अचानक ही कोई प्रवृत्ति न करते हुए, भगवान की सेवा में विनय पूर्वक निवेदन करने के लिये पहुँच गये । **(५)** किसी को भी मार्गच्युत हुआ जान कर योग्य उपायों से कुशलतापूर्वक पुनः सदगुणों में उसे तत्पर बनाने का प्रयत्न करना चाहिये कि तु निंदा, अवहेलना, तिरस्कार आदि निंदनीय प्रवृत्तिओ का आचरण कदापि नहीं करना चाहिये । **(६)** अपनी भूलों का पश्चात्ताप करके उन्हें शीघ्र सुधार लेना चाहिये कि तु छिपाने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिये । **(७)** अनुक पा और दया भाव यह आत्मोन्नति का एक उत्तम गुण है । इसे समकित का चौथा लक्षण कहा गया है । प्रसिद्ध कवि तुलसीदासजी के शब्दों में यह धर्म का मूल है । उक्त कथानक में हाथी जैसे एक पशु ने दया भाव के निमित्त से ही स सार भ्रमण के मार्ग

की जगह मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लिया । हृदय कि सच्ची अनुक पा और उस पर दृढ़ रहने का यह परिणाम है । **(८)** आत्मा अन त शाश्वत तत्व है । रागद्वेष आदि विकारों से ग्रस्त होने के कारण वह विभिन्न अवस्थाओं में जन्म मरण करता है । एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना ही स सरण या स सार कहलाता है । कभी आत्मा अधोगति के पाताल में तो कभी उच्चगति के शिखर पर पहुँच जाती है । इस उतार चढ़ाव का मूल कारण स्वय आत्मा ही है । स योग मिलने पर आत्मा जब अपने सच्चे स्वरूप को समझ लेता है तब अनुकुल पुरुषार्थ कर विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करके शाश्वत सुखों का स्वामी बन जाता है । मेघकुमार के जीवन में यही घटित हुआ । हाथी से मानव, फिर मुनि, तत्पश्चात देव बना और क्रमशः परमात्म पद को प्राप्त करेगा । **(९) स यम से मेघमुनि के चित्त का उखड़ जाना,** यह इस अध्ययन का एक प्रमुख विषय है, भगवान के द्वारा पूर्व भव सुना कर स यम में स्थिर करने के प्रेरक विषय का मूल निमित्त भी यही है ।अतः अध्ययन का नाम **मेघकुमार** न होकर **उक्खित्तणाय** रखा गया है ।

अध्ययन–२ : स घाड़

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में दृष्टा त रूप कथानक किस प्रकार है ?

उत्तर– राजगृह नगर में धन्य शेठ रहता था उसकी पत्नि भद्रा सेठाणी थी । उनके कोई स तान नहीं थी । आखिर मानवीय अपेक्षा बलवती बनी और भद्रा ने अनेक देवी-देवताओं की मनौती करी। वर्षों के प्रयत्न से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई । दैवी कृपा समझकर उस बालक का नाम **देवदत्त** रखा । वह कुछ बड़ा हुआ उसको स भालने के लिये **प थक** दासपुत्रक को रखा । एक बार भद्रा ने देवदत्त कुमार को स्नान कराकर वस्त्राभूषण से सुसज्जित करके दासचेटक प थक को खेलाने के लिये दिया । घर के बाहर जाकर देवदत्त को एक तरफ बिठाकर प थक अपने दोस्तों के साथ खेलने लगा। नगर का प्रख्यात, निर्दय विजयचोर घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा । आभूषण सुसज्जित्त देवदत्त बालक को देखा, बालक को उठाकर वह चल दिया । नगर के बाहर जाकर उस बालक के आभूषण उतार लिये और उसे एक कुए में फेंक दिया । कुए में पड़ते ही बालक के प्राण प खेरु उड़ गये ।

थोड़ी देर बाद प थक का ध्यान बालक पर गया । खोजने पर भी

बालक कहीं मिला नहीं । आखिर धन्य सेठ ने पुलिस में शिकायत की । नगर रक्षक खोजते-खोजते उस अ धकूप के पास पहुँचे । उसमें देखा तो बालक मरा पड़ा था । पैरो के निशान देखते-देखते नगर रक्षकों को विजय चोर झाड़ियों में छिपा मिल गया, पकड़ कर खूब मारा । नगर में घूमा कर और कारागार में ड़ाल दिया ।

थोड़े समय बाद कोई गलती में आ जाने से धन्य सेठ को भी जेल की सजा हुई । स योगवशात् विजयचोर की बेड़ी के साथ ही उसे भी स ब द्ध कर दिया । सेठाणी दासप थक के साथ सेठजी के लिये खाना जेल में पहुँचाने लगी । सेठ खाना खा रहे थे तब पास में बैठे विजयचोर ने भी खाना मा गा । सेठ ने पुत्र हत्यारा कहकर मना कर दिया । चोर तो कई दिनों से भूखा प्यासा ही था । सेठ को जब मल-मूत्र की बाधा हुई तब वह अकड़ गया कि मुझे मल-मूत्र की बाधा नहीं है, मक्त तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा । उसके साथ बेड़ी का ब धन होने से सेठ उसके चले बिना जा नहीं सकता था । दुबारा तिबारा सेठ के आग्रह करने पर उसने शर्त रखी कि भोजन में हिस्सा देना म जूर करो तो में तुम्हारे साथ चल सकता हूँ । बिना इच्छा सेठ को शर्त म जूर करनी पड़ी ।

दूसरे दिन भोजन आया । चोर को भोजन का हिस्सा देकर फिर सेठ ने खाया । दास प थक ने यह दृश्य देखा और घर जाकर सेठाणी को बता दिया । यह क्रम कुछ दिन चलता रहा । फिर जाँच पड़ताल आदि किसी भी तरह से सेठ की सजा समाप्त हो गई । सेठ घर पर आ गये । सेठाणी को पुत्रघातक चोर को खाना देने की बात पर बहुत नाराजी थी । सेठ के घर आने पर सभी कर्मचारी एव परिवार के लगों ने आदर सन्मान दिया । कि तु सेठाणी मुँह चढ़ाकर बैठी रही ।

सेठ ने इस व्यवहार का सेठाणी से स्पष्टीकरण मा गा । सेठानी ने कहा– अपने प्रिय पुत्र देवदत्त की घात करने वाले चोर को तुम खाना दो तो भला मुझे तुम्हारे आने का कैसे आन द स तोष होगा ? सेठ ने खुलासा किया कि मक्तने कोई धर्म या पुण्य समझकर उसे खाना नहीं दिया और न कोई उसके साथ मित्रता से खाना दिया । कि तु मेरी मल-मूत्र की बाधा रोकने की ऐसी परिस्थिति खड़ी होने पर मुझे उसको खाना देने की शर्त विवश होकर म जूर करनी पड़ी थी । सेठानी समझ गई उसका भ्रमजनक रोष समाप्त हो गया । शा ति से रहने लगे । कालान्तर में धर्मघोष स्थविर के पास दीक्षा

लेकर सेठ स्वर्ग में गया । प्रथम स्वर्ग की चार पल्योपम की उम्र समाप्त कर महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगा ।

प्रश्न–२ : इस कथानक रूप दृष्टा त से सूत्रकार ने साधकों को क्या समझाया है ?

उत्तर– शास्त्र में दृष्टा त रूप कथानक विशाल भी हो सकते हैक्त कि तु उसमें कोई एक छोटा सा प्रेरणा स्थल लक्षित रहता है। इस कथानक में भी सूत्रकार ने स यमशील साधक अपने शरीर का स रक्षण किस वृत्ति से, किस भावों से करे, इस तत्त्व को समझने के लिये स केत किया है ।

जिस तरह धन्य सेठ ने एक परिस्थिति को पार करने के लिये चोर को आहार दिया था कि तु किसी भी प्रकार का अनुराग या आन द उस आहार देने में धन्य के मानस में तनिक भी नहीं था । क्यों कि वह चोर को अपना बहुत बड़ा नुकशान करने वाला जान रहा था, पुत्र का हत्यारा मान रहा था, बस इसी मानस के कारण चोर को आहार देने में उसकी पूर्ण उदासीनता और लाचारी थी ।

साधक भी अपने इस शरीर का स रक्षण करने में ऐसे ही लाचारी और उदासीनता के भाव रखे । मोक्ष साधक स यम के पालन में इस मानव देह का साथ सहकार लेना आवश्यक समझकर इसका स रक्षण करे । वह यह माने, समझे कि अनादि काल से जीव अपने प्राप्त शरीर के स रक्षण और मोह में लीन रहता है । जिससे यह शरीर आत्मा के गुणों का नाश करने में, कर्मों से आच्छादि करवाने में मुख्य कारण बना है, यह आत्मा का अधिकतम अहित करने में निमित्त रहा हुआ है । फिर भी आत्मशा ति-मोक्षप्राप्ति में इसका सहाय लेना भी जरूरी है । अतः उम्रपर्यंत यह स यम साधना में सहायक बना रहे, बाधक न बने, उस लक्ष्य और विवेक से, इस शरीर का साथ निभाने के लिये कुछ स यम के समय का भोग देना आवश्यक है ऐसा समझ कर, साधक अ तर मन में इससे उदासीन एव सावधान रहता हुआ वर्तन करे कि तु इसकी सेवा में तल्लीन नहीं बने । इसे सजाने में आन द नहीं माने । ज्ञान आत्मा से इस शरीर को कर्मब ध में मददगार और दु:ख पर परावर्धक समझ कर सावधान रहे और इसके साथ एक ब धन में रहा हूँ अतः साधना से मोक्ष पहुँचने तक कुछ स विभाग रूप में, इसकी सार स भाल देखरेख करनी भी जरूरी पड़ गई है । इसलिये वह तो करना पड़ेगा, उम्र पर्यंत इसका साथ निभाना ही पड़ेगा, ऐसा समझ कर जरूरी समय और

जरूरी प्रवृत्ति इसके लिये विवेक एव उदासीनता से समझ पूर्वक करे पर तु उन शरीर सेवा सजावट की प्रवृत्तियों-वृत्तियों में कभी भी आन द नहीं माने। जैसे कि धन्य सेठ ने चोर को आहार देने में कोई प्रकार का आन द नहीं माना था।

स क्षेप में साधक शरीर की आहारादि से सार स भाल करते हुए भी अ तरमन में शरीर के प्रति अनुराग प्रेम आसक्ति नहीं रखे। इसे मूल में आत्मा के गुणों में बहुत बड़ा नुकशान करने वाला मानता हुआ इसके साथ वर्तन करे तथा एक दिन इसके स गाथ-स गति से सदा के लिये मुक्त होना है अर्थात् स लेखना-स थारा स्वीकार कर इस देह का पूर्ण रूप से त्याग करना है, ऐसा मानस निर तर बनाये रखे।

अध्ययन-३ : अ ड़े

प्रश्न-१ : यह "अ ड़े के दृष्टा त रूप" कथानक किस प्रकार है ?

उत्तर- च पानगरी में दो सार्थवाह पुत्र जिनदत्त पुत्र और सागरदत्त पुत्र रहते थे। दोनों में अनन्य मैत्री थी। प्रत्येक विशिष्ट प्रस ग यात्रा आमोद-प्रमोद में साथ रहने के कृत स कल्प वाले थे। यौवनवय के चलते एक दिन दोनों उस जमाने की प्रवृत्ति अनुसार आमोद-प्रमोद के लिये घर से रथ में निकल कर देवदत्ता गणिका के घर गये। उसे निम त्रित करके साथ लेकर उद्यान में भ्रमण करने गये। वहाँ स्नान, भोजन एव नृत्यगान आदि से निवृत्त होकर फिर बगीचे में पर्यटन करने निकले। पर्यटन करते हुए मालुयाकच्छ-झाड़ियों वाले सघन प्रदेश की तरफ आगे बढ़ रहे थे। उनकी हलचल सुनकर एक मयूरी झाड़ी में से निकल कर केकारव करते हुए एक वृक्ष पर जाकर बैठ गई। दोनों मित्रों ने मयूरी के उड़ने के स्थान पर जाकर देखा तो वहाँ पर दो अ ड़े दिखाई दिये।

सार्थवाह पुत्रों ने विचारणा कर दोनों अ ड़े उठा लिये और एक-एक दोनों अपने अपने घर ले गये। नौकर पुरुषों के द्वारा अपने-अपने घर पर कूकड़ी के अ ड़ों के साथ रखवा दिये। कूकड़ी अपने अ ड़ों के साथ इन अ ड़ों का भी पोषण करने लगी।

सागरदत्त पुत्र श का शील प्रकृति का था। वह ज्यादा शा ति और धैर्य नहीं रख सका। वह बार बार अ ड़े के पास जाता और विचार करता

कि यह अ ड़ा निपजेगा या नहीं। इस तरह श का क खा करता हुआ वह उस अ ड़े को उठाता, फिराता, कान के पास ले जाकर हिलाता, देखता। यों करने से वह अ ड़ा निर्जीव हो गया।

दूसरा मित्र जिनदत्त पुत्र श्रद्धा-धैर्य स पन्न था। उसने नौकर को सोंपकर फिर खुद उसका पूरा ध्यान रखता। श का-का क्षा उसने कुछ भी नहीं की। अ ड़े को वह दूर से ही देख लेता। यथासमय अ ड़े से बच्चा उत्पन्न हुआ। बड़ा होने लगा। उसे नाचना सिखाया गया और अनेक कलाओं में उसे प्रवीण करवाता रहा। कालान्तर से पूरे नगर में उसके मयूर की प्रसिद्धि होने लगी। वह जिनदत्त पुत्र उस मयूर से नगर में हजारों लाखों की बाजी जीतने लगा। वह अपने उस मयूर को और उसकी कला को देख-देख कर बहुत खुशखुशाल रहता और सागरदत्त यह सब देखकर मन ही मन बहुत दुःखी होता।

प्रश्न-२ : इस दृष्टा त से शास्त्रकार ने साधकों को क्या समझाया है ?

उत्तर- जो साधक महाव्रतों में, छः काया में श्रद्धावान रहकर साधना में प्रवृत्त होता है, उसे इस भव में मान-सम्मान की और परभव में मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अश्रद्धालु साधक इस भव में निंदा-गर्हा का तथा परभवों में अनेक प्रकार के स कटो, दुःखों, पीड़ाओं और व्यथाओं का पात्र बनता है।

इस तृतीय अध्ययन का मुख्य स्वर है- जिनप्रवचन में श का-का क्षा या विचिकित्सा न करना। **तमेव सच्च णीस क ज जिणेहिं पवेइय**। वीतराग और सर्वज्ञ ने जो तत्त्व प्रतिपादित किया है, वही सत्य है, उसमें श का के लिये कोई अवकाश नहीं है। कषाय और अज्ञान के कारण ही असत्य बोला जाता है, जिसमें ये दोनों दोष नहीं है उसके वचन असत्य हो ही नहीं सकते।

इस प्रकार की सुदृढ़ श्रद्धा के साथ मुक्ति साधना के पथ पर अग्रसर होने वाला साधक ही अपनी साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। उसकी श्रद्धा उसे अपूर्व शक्ति प्रदान करती है और उस श्रद्धा के बल पर वह सब प्रकार की विघ्नों-बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ अपने अभीष्ट लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ता जाता है। यही कारण है कि सम्यग्दर्शन का प्रथम अ ग या लक्षण **निःश कितता** कहा गया है।

इसके विपरीत जिसके अ तःकरण में अपने लक्ष्य अथवा लक्ष्य

प्राप्ति के साधनों में दृढ़ विश्वास नहीं होता, जिसका चित्त ड़ा वाड़ोल होता है, जिसकी मनोवृत्ति ढुलमुल होती है, प्रथम तो उसके आ तरिक बल उत्पन्न ही नहीं होता और यदि वह हो तो भी उसका पूरी तरह उपयोग वह नहीं कर सकता । इस प्रकार अधूरे बल और अधूरे मनोयोग से कार्य की पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती । लौकिक कार्य हो अथवा लोकोत्तर, सर्वत्र पूर्ण श्रद्धा, समग्र उत्साह और परिपूर्ण मनोयोग को उसमें लगा देना आवश्यक है । स पूर्ण सफलता प्राप्ति की यह अनिवार्य शर्त है ।

प्रस्तुत अध्ययन में यही तथ्य उदाहरण द्वारा और फिर उपस हार रूप में प्रस्तुत किया गया है । दो पात्रों के द्वारा श्रद्धा का सुफल और अश्रद्धा का दुष्परिणाम दिखलाया गया है ।

अध्ययन-४ : कूर्म

प्रश्न-१ : कछुए का दृष्टा त रूप कथानक किस प्रकार है ?

उत्तर- वाराणसी नगरी में ग गा नदी से उत्तर-पूर्व में एक विशाल तालाब था । जो निर्मल शीतल जल से परिपूर्ण एव अनेक जलज तुओं से युक्त तथा विविध जाति के कमलों से व्याप्त रहता था । उस तालाब का नाम "मृतग गातीरह्रद" प्रसिद्ध था । उसके नजीक में ही एक सघन झाड़ी वाला **मालुकाकच्छ** था । जिसमें दो पापी वृत्ति के सियाल रहते थे ।

एक बार स ध्या समय में दो कछुए तालाब से बाहर निकल कर आहार की खोज में इधर-उधर तालाब के आसपास चौतरफ घूमकर अपनी आजीविका कर रहे थे । ऐसे समय में दोनों सियाल झाड़ी से बाहर निकले और घूमते-घूमते दोनों कछुओं की तरफ आ पहुँचे । दोनों कछुओं ने सियालों को दूर से आते देखकर अपने चारों पाँवों को और मस्तक को स कोचित करके अपने शरीर की ढ़ाल के नीचे सुरक्षित करके स्थिर बैठ गये । सियालो ने उनको इधर-उधर सरकाया, ऊँचा-नीचा किया, नखों से छेदित-पीड़ित करने का प्रयत्न किया कि तु अपने शरीर की ढ़ाल में सुरक्षित कछुओं का वे कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सके । थके हुए उन सियालों ने चालाकी करी । दूर चले गये और छिपकर बैठ गये । वहाँ से वे कछुओं की तरफ निगाह करके इन्तजार करने लगे कि कब ये कछुए ढ़ाल में से अपने अ ग मस्तक हाथ पाँव बाहर निकाले और उसे पकड़ लें ।

दोनों कूर्मो में से एक च चल प्रकृति का था । वह अपने अ गों का देर तक गोपन नहीं कर सका । उसने एक पैर बाहर निकाला । उधर सियाल इसी की ताक में थे । जैसे ही उन्होंने एक पैर बाहर निकाला देखा कि शीघ्रता के साथ वे उस पर झपटे और उस पैर को खा गये । सियाल फिर एका त में चले गए । थोड़ी देर बाद कूर्म ने अपना दूसरा पैर बाहर निकाला और सियालों ने झपट्टा मार कर उसका दूसरा पैर भी खा लिया । इसी प्रकार थोड़ी-थोड़ी देर में कूर्म एक-एक पैर बाहर निकालता और सियाल उसे खा जाते । अ त में उस च चल कूर्म ने गर्दन बाहर निकाली और सियालों ने उसे भी खा कर उसे प्राणहीन कर दिया । इस प्रकार अपने अ गों का गोपन न कर सकने के कारण उस कूर्म के जीवन का करुण अ त हो गया ।

दूसरा कूर्म वैसा च चल नहीं था । उसने अपने अ गों पर निय त्रण रखा । ल बे समय तक उसने अ गों को गोपन करके रखा और जब सियाल चले गये, तब वह चारों पैरों को एक साथ बाहर निकाल कर शीघ्रतापूर्वक तालाब में सकुशल, सुरक्षित पहुँच गया ।

प्रश्न-२ : इस दृष्टा त से शास्त्रकार ने साधकों को क्या समझाया ?

उत्तर- (१) शास्त्रकार कहते हक्त कि जो साधु या साध्वी अणगार दीक्षा अ गीकार करके अपनी इन्द्रियों का गोपन नहीं करते, उनकी दशा प्रथम कूर्म जैसी होती है । वे इहभव-परभव में अनेक प्रकार के कष्ट पाते हक्त, स यम-जीवन से च्युत हो जाते हक्त और निंदा-गर्हा के पात्र बनते हक्त । इससे विपरीत, जो साधु या साध्वी इन्द्रियों का गोपन करते हक्त वे इसी भव में सबके व दनीय, पूजनीय, अर्चनीय होते हक्त और स सार अटवी को पार करके सिद्धिलाभ प्राप्त करते हक्त ।

(२) तात्पर्य यह है कि साधु हो अथवा साध्वी, उसे अपनी सभी इन्द्रियों पर निय त्रण रखना चाहिये, उनका गोपन करना चाहिये । इन्द्रिय गोपन का अर्थ है-इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त न होने देना । किन्तु सर्वत्र सर्वदा इन्द्रियों की प्रवृत्ति रोकना भी स भव नहीं है । सामने आई वस्तु इच्छा न होने पर भी दृष्टिगोचर हो ही जाती है, बोला हुआ शब्द श्रोत्र का विषय बन ही जाता है । साधु-साध्वी अपनी इन्द्रियों को ब द करके रख नहीं सकते । ऐसी स्थिति में इन्द्रिय द्वारा गृहीत विषय में रागद्वेष उत्पन्न नहीं होने देना ही इन्द्रिय गोपन इन्द्रिय दमन अथवा इन्द्रिय स यम कहलाता है । इस साधना के लिये मन को समभाव का अभ्यासी बनाने

का सदैव प्रयास करते रहना आवश्यक है । साधक अत्य त आवश्यक और प्राप्त शब्द, रूप, रस, ग ध, स्पर्श में रागद्वेष आसक्ति के परिणाम न करे । जैसा स योग मिला है उसमें तटस्थ समपरिणामी एव विरक्ति बनाये रखे । साथ ही अप्राप्त और स यम साधना में अनावश्यक अथवा आगम में वर्जित ऐसे शब्दों को सुनने की, रूपों-दृष्यों को देखने की इच्छा भी न करे तथा अप्राप्त खाद्य पदार्थों की, सुग धी पदार्थों की एव सुख शय्याओं आदि की आका क्षा भी नहीं करे । भगवदाज्ञानुसार एव स योग अनुसार प्राप्त सामग्री में स तुष्ट रहे और तत्स ब धी रागद्वेष से मुक्त रहे । यही वास्तविक इन्द्रिय गोपन है और इन्द्रिय गोपन करने वाला स यमी साधक ही च चलता रहित पूर्ण गुप्त कछुएँ की भाँति सुरक्षित रहकर अपने निज सुखमय स्थान रूप तालाब के समान मोक्ष स्थान को प्राप्त कर सकता है ।

अध्ययन-५ : शैलक

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का मुख्य विषय क्या है और किन-किन महान आत्माओं के जीवन को इसमें आलेखित किया गया है?

उत्तर- इस अध्ययन के नाम के अनुसार मुख्य पात्र **शैलक राजर्षि** है। उनके जीवन के उतार-चढ़ाव की अवस्थाओं का अर्थात् उनके जीवन की उत्थान से पतन की और पतन से पुनः उत्थान की अवस्थाएँ यहाँ वर्णित है । इसी से स ब धित वर्णन के क्रम में कृष्णवासुदेव, थावच्चापुत्र अणगार, शुकदेव सन्यासी, सेठ सुदर्शन एव शैलक राजर्षि के विनीत शिष्य प थक का वर्णन है ।

प्रश्न-२ : कृष्णवासुदेव की धार्मिकता एव धर्म दलाली का वर्णन यहाँ किस प्रकार है ?

उत्तर- द्वारिका नगरी में बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ । वासुदेवकृष्ण अपने विशाल परिवार के साथ प्रभु की उपासना करने और धर्मदेशना श्रवण करने पहुँचे । द्वारिका के नर-नारी भी गये । द्वारिका में थावच्चा नामक एक स पन्न गृहस्थ महिला थी । उसका इकलौता पुत्र थावच्चापुत्र के नाम से ही अभिहित होता था । वह भी भगवान की धर्म देशना श्रवण करने पहुँचा । धर्मदेशना सुनी और वैराग्य के र ग में र ग गया । माता ने बहुत समझाया, आजीजी की, किन्तु थावच्चापुत्र अपने निश्चय

पर अटल रहा । अ त में विवश होकर माता ने दीक्षा महोत्सव करने का प्रस्ताव किया, जिसे उसने मौनभाव से स्वीकार किया ।

दीक्षा महोत्सव के लिये माता थावच्चा छत्र, चामर आदि मा गने कृष्ण महाराज के पास गई तो उन्होंने स्वय अपनी ओर से महोत्सव मनाने का प्रस्ताव रखा। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने कृष्ण स्वय उसके घर पर गए । सोलह हजार राजाओं के राजा अर्द्ध भरत क्षेत्र के अधिपति कृष्ण सहज रूप से थावच्चापुत्र के घर जा पहुँचना उनकी असाधारण महत्ता और निरह कारिता एव धार्मिकता का द्योतक है। श्रीकृष्ण ने थावच्चापुत्र को कहा कि तुम दीक्षा मत लो । मेरी छत्रछाया में तुम सुखपूर्वक रहो, तुम्हें कोई भी दुःख कष्ट नहीं होगा । मक्त तुम्हारी सब बाधा पीड़ा स कटों से तुम्हारा निवारण करूँगा, केवल तुम्हारे ऊपर से निकलती हुई हवा को रोक नहीं सकता, उसके सिवाय कोई भी तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं पहुँचा सकेगा । अतः तुम यह दीक्षा का विचार छोड़कर मेरी बाहुछाया में मनुष्य स ब धी सुखभोग करते हुए रहो ।

थावच्चा पुत्र ने कहा कि हे देवानुप्रिय ! यदि आती हुई मेरी मृत्यु को रोकने में आप समर्थ हो एव आने वाले बुढ़ापे को आप निवारण करने में सक्षम हो सकते हो तो मैं आपकी छत्रछाया में सुखभोग करते हुए रह सकता हूँ । कृष्ण वासुदेव ने कहा कि हे थावच्चा पुत्र! ऐसा तो कोई देव भी नहीं कर सकता है अर्थात् मृत्यु और बुढ़ापे से तो देव भी रक्षा नहीं कर सकता । यह तो कर्म क्षय करने से ही स भव है । तब थावच्चापुत्र ने कहा कि यदि इन दोनों का(जरा और मृत्यु को) निवारण तो अपने कर्मों के क्षय से ही हो सकता है तो हे देवानुप्रिये ! मक्समज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति एव कषाय से स चित पूर्व कर्मों का क्षय करने के लिये भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

श्रीकृष्ण को थावच्चापुत्र की परीक्षा के पश्चात् जब विश्वास हो गया कि उसका वैराग्य आ तरिक है, सच्चा है तब उन्होंने द्वारका नगरी में आम घोषणा करवा दी कि-**"भगवान अरिष्टनेमि के निकट दीक्षित होने वालों के आश्रितजनों के पालन पोषण का स पूर्ण उत्तरदायित्व कृष्ण वासुदेव वहन करेंगे ।** थावच्चा पुत्र के साथ जो भी दीक्षित होना चाहे, निश्चि त होकर दीक्षा ग्रहण करे ।" घोषणा सुनकर एक हजार पुरुष थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित हुए ।

इस प्रकार ज्ञातासूत्र के इस अध्ययन से श्रीकृष्ण महाराज की अनुपम धार्मिकता एव धर्मदलाली-दीक्षा दलाली करने का आदर्श गुण प्रकट होता है कि वे स्वय चतुर गिणी सेना के साथ भगवान के दर्शन करने एव प्रवचन सुनने गये तथा थावच्चा गाथापत्नी के द्वारा छत्र-चामर दीक्षा महोत्सव के लिये मा गने पर उसे कह दिया कि तुम सुखपूर्वक आराम से रहो, मक्त स्वय तुम्हारे पुत्र का दीक्षा महोत्सव करूँगा । ऐसा कहकर वे अपनी चतुर गिणी सेना के ठाठ के साथ शीघ्र ही थावच्चा सेठाणी के घर पहुँच गये थे और दीक्षा नहीं लेने के अपने सुझाव को थावच्चापुत्र के सचोट जवाब से **नम्रता के साथ** बदल भी दिया एव उसकी दीक्षा में स मत हो गये ।

जो व्यक्ति स्वय धर्मिष्ठ नहीं होता है फिर केवल परीक्षा लेने का ढ़ोंग करता है वह तो अ त तक कुतर्क करता ही रहता है और दीक्षा लेने और देने वाले दोनों को भलाबुरा कहता रहता है । पर तु कृष्ण वासुदेव तो धर्मनिष्ठ और धर्मप्रेमी थे । दीक्षा लेने को और दीक्षा लेनेवाले को मन में कभी खराब नहीं समझते थे । अतः वड़ील का कर्तव्यपालन मात्र के लिये उन्होंने दीक्षा नहीं लेने का और मानुषिक सुखभोगने का थावच्चापुत्र को सुझाव दिया था ।

प्रश्न-३ : थावच्चापुत्र का जीवन वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नगरी में थावच्चा नामक गृहिणी सार्थवाह की पत्नि रहती थी उसके एक पुत्र था जो इसी के नाम से अर्थात् थावच्चा पुत्र इस नाम से पहिचाना जाता था । स भव है थावच्चापुत्र के पिता उसके बाल्यकाल से ही परलोक सिधार गये थे । क्यों कि इस अध्ययन में थावच्चा पुत्र के पालन पोषण, आठ वर्ष का होने पर कलाचार्य के पास भेजना, सेठों की ३२ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण आदि तथा दीक्षा की आज्ञा स ब धी समस्त वर्णन माता के नाम से ही किया गया है । कृष्णवासुदेव के पास भी छत्र-चामर मा गने माता के जाने का वर्णन है एव दीक्षा के समय स्वय कृष्ण ही उसके पिता के स्थान पर रहे । उन्होंने ही थावच्चापुत्र को आगे करके भगवान अरिष्टनेमि के पास ले जाकर दीक्षा दान का निवेदन किया था । दीक्षा महोत्सव राजसी ठाठ से कृष्ण ने किया । यहाँ दीक्षा का वर्णन, पच-मुष्ठि लोच आदि दीक्षा पाठ हजार पुरुषों का सभी स क्षिप्त में वर्णित है अर्थात् मेघकुमार के वर्णन अनुसार विस्तृत वर्णन समझ लेना चाहिये ।

अरिह त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर थावच्चापुत्र अणगार ने

स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर १४ पूर्वों का अर्थात् द्वादशा ग का अध्ययन किया । उपवास आदि अनेक तपस्याओं द्वारा आत्मा को स यम में भावित किया । तब अरिह त अरिष्टनेमि ने उसके साथ दीक्षित हजार साधुओं को उसके शिष्य रूप में प्रदान किया ।

उसके बाद किसी समय थावच्चापुत्र अणगार भगवान की आज्ञा लेकर स्वत त्र विचरण करने लगे । विचरण करते हुए थावच्चापुत्र अणगार ने शैलकपुर में ५०० म त्री सहित शैलक राजा को बारह व्रतधारी श्रमणोपासक बनाया । उसके बाद सोग धिका नगरी में सुदर्शन नामक नगरश्रेष्ठी को, जो पहले से शुकदेव स न्यासी के सा ख्यमत का अनुयायी था, उसे प्रतिबोध देकर बारह व्रतधारी श्रमणोपासक बनाया और उसी नगरी में फिर उसके गुरु शुकदेव स न्यासी के आने पर उसे भी प्रतिबुद्ध किया । शुकदेव स न्यासी अपने एक हजार शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र अणगार के पास अपनी शिखा का लोच करके दीक्षित हो गया । उसने भी १४ पूर्वों तक का अध्ययन किया । शुक अणगार के ज्ञान एव स यम से स पन्न होने पर उसके गुरु ने उसके साथ दीक्षित १००० श्रमणों को उसके शिष्य रूप में प्रदान किये ।

उसके बाद थावच्चा पुत्र अणगार अनेक वर्षों तक अपने १००० शिष्यों के साथ विचरण करते हुए पु ड़रीक पर्वत पर चढ़कर पादपोपगमन स थारा किया और एक महीने के स थारे से आयुष्य पूर्ण कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए ।

प्रश्न-४ : शुकदेव स न्यासी कौन था और उसने वीतराग धर्म किस प्रकार स्वीकार किया ?

उत्तर- शुक स न्यासी सा ख्य मत में प्रव्रजित, चारो वेदों का एव कापिलीय षष्टीत त्र शास्त्र में निपुण था । अहिंसादि पाँच यम तथा शौच, स तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-ध्यान ये पाँच नियम युक्त; शौचधर्म, दानधर्म और तीर्थस्थान की प्ररुपणा करने वाला था । भगवा र ग के कपड़े धारण करने वाला; त्रिद ड़, कम ड़ल, मोर पिच्छिका, छत्र, षड़नालिका-काष्ट का उपकरण, अ कुश-वृक्ष के पत्ते तोड़ ने का उपकरण, पवित्री-ता बे की अ गुठी, केसरिका-पमार्जन के लिये वस्त्र या उपकरण; इन ६ उपकरणों को धारण करने वाला था ।

एक बार वह अपने हजार शिष्यों के साथ सोग धिका नगरी में आया परिव्राजकों के मठ में ठहरा । धर्मसभा जुड़ी । सुदर्शन नगर श्रेष्ठी भी

सभा में पहुँचा । शुक स न्यासी ने प्रवचन में शुचि धर्म की प्ररूपणा करी कि सर्वत्र जलशुद्धि जलाभिषेक करते हुए प्राणी हमारे मत में बिना किसी रोक-टोक के स्वर्गगामी होता है ।

सुदर्शन श्रेष्ठी ने शुचिमूल धर्म स्वीकार किया । विचरण करते हुए वहाँ थावच्चापुत्र अणगार पधारे । उनकी धर्म सभा में सुदर्शन भी पहुँचा और पहुँचते ही व दना नमस्कार करके प्रश्न किया– आपके धर्म का मूल सिद्धा त क्या है ? थावच्चापुत्र ने कहा– हमारा विनयमूल धर्म है । वह विनयमूल धर्म दो प्रकार का है– (१) अगार **श्रावकधर्म**–अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षा व्रत, ११ उपासक पड़िमा आदि रूप है । एव (२) अणगार **श्रमण धर्म**– प च महाव्रत, १८ पाप त्याग, १० प्रत्याख्यान, ११ भिक्षुपड़िमा आदि रूप है । इस धर्म के आचरण से जीव अष्ट कर्मक्षय करके मुक्त हो जाते हक्त ।

फिर थावच्चापुत्र अणगार ने पूछा– तुम्हारा धर्म का मूल क्या है ? सुदर्शन ने शुचिमूलक धर्म का स्पष्टीकरण किया । तब थावच्चापुत्र ने सुदर्शन को समझाया कि कोई रुधिर भरे कपड़े को रुधिर में धोवे तो वह शुद्ध हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता । उसी तरह हे सुदर्शन ! पाप से स चित कर्म, हिंसा आदि १८ पाप के सेवन से कभी नष्ट नही हो सकते । अतः पाप सेवन करते अर्थात् पापों का त्याग किये बिना जलशुद्धि से आत्मा कभी पवित्र नहीं बन सकती । वह तो जलजीवों की हिंसा से ज्यादा भारी बनती है और स सार में परिभ्रमण करती है ।

सुदर्शन को थावच्चापुत्र अणगार की बात समझ में आ गई। फिर प्रवचन सुना और जिनमतानुयायी श्रमणोपासक बन गया । शुक स न्यासी को जब इस बात की जानकारी मिली तो वह विचरण करता शीघ्र उस नगरी में आया । मठ में ठहरकर फिर सुदर्शन के घर पहुँचा । सुदर्शन ने कोई आदर सन्मान नहीं दिया तो उसने पूछा– तुमने ऐसा विनय मूल धर्म किससे स्वीकार किया है ? तब सुदर्शन ने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अ जलि करके थावच्चापुत्र अणगार के पास विनय मूल धर्म स्वीकारने की जानकारी दी । तब शुक स न्यासी ने कहा चलो तुम्हारे गुरु यहीं विराजते है उनके पास चलें और मक्त उन्हें प्रश्न पूछूँगा । वे स तोषप्रद जवाब देंगे तो मक्त उन्हे व दन नमस्कार करूँगा अन्यथा उन प्रश्नो से मक्त उन्हें निरुत्तर करूँगा ।

दोनों थावच्चापुत्र अणगार के पास गये । शुक स न्यासी ने जाते

ही विनय व दन किये बिना बड़ी होशियारी से प्रश्न शुरु कर दिये विशेष । एक-एक प्रश्नों के उत्तर थावच्चापुत्र अणगार ने बहुत सु दर और स तोषकारी दिये । शुक स न्यासी झुक गया, व दन नमस्कार कर वीतराग धर्म सुना और वहीं अपने हजार शिष्यों के साथ दीक्षित हो गया ।

कालांतर से १४ पूर्वज्ञान का अध्ययन कर लेने पर वे शुक अणगार गुरु द्वारा प्रदत्त हजार शिष्यों के साथ विचरण करने लगे । थावच्चापुत्र अणगार पु ड़रीक पर्वत पर सिद्ध हो चुके थे । शुक अणगार हजार शिष्यों के साथ शैलकपुर पधारे । धर्म सभा में शैलक राजा सहित पर्षदा को उपदेश दिया । शैलक राजा पहले से थावच्चापुत्र अणगार के पास, श्रावक तो बन ही चुका था । इस बार उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और पुत्र 'म डुक' को राज्य देकर पाँचसो म त्रियों के साथ दीक्षित हो गया । शैलक राजर्षि ने सामायिक आदि ग्यारह अ गों का अध्ययन किया । एव विविध तप स यम से आत्मा को भावित करने लगे । तब शुक अणगार ने ५०० म त्री श्रमणों को शैलक को शिष्य रूप में प्रदान किये । एव स्वय अनेक वर्ष स यम पर्याय का पालन कर एक महीने के पादपोपगमन स थारे से पु ड़रीक पर्वत पर केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त करके अपने १००० शिष्यों के साथ सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए ।

प्रश्न–५ : शुक स न्यासी ने थावच्चापुत्र अणगार से क्या प्रश्न चर्चा करी थी ?

उत्तर– भगवती सूत्र शतक–१८ उद्देशक–१० में वर्णित सौमिल ब्राह्मण ने भगवान महावीर से जो प्रश्न किये थे और उत्तर से स तुष्ट होकर श्रमणोपासक बनकर आराधक हुआ था । वे ही प्रश्न यहाँ शुक स न्यासी ने थावच्चापुत्र अणगार से किये थे । दोनों जगह प्रश्न एव उत्तर समान है । अतः इन प्रश्नोत्तर चर्चा के लिये भगवतीसूत्र उत्तरार्ध प्रश्नोत्तरी भाग–४ में पृष्ट–८१ में प्रश्न–१६ देखे ।

विशेष– अ त में शुक स न्यासी ने आत्मा स ब धी प्रश्न विशेष किया–

प्रश्न– भगवन् आप एक हो ? दो हो ? अक्षय हो ? अव्यय हो ? अवस्थित हो ? अनेक परिणामभूत हो ?

उत्तर–हे शुक ! मक्त एक भी हूँ यावत् अनेक परिणामभूत भी हूँ । वह इस प्रकार समझो– (१) द्रव्य रूप से मक्त एक आत्म द्रव्यरूप हूँ । (२) ज्ञान-दर्शन दो गुण युक्त गुणी आत्म द्रव्य होने से में दो भी हूँ । (३–४) आत्म प्रदेश है उतने रहते है इस अपेक्षा मक्तअक्षय, अव्यय और अवस्थित भी हूँ ।

भूत और भावि अनेक भाव परिणाम युक्त भी मैं हूँ । पर्यायों की अपेक्षा अनेक भाव परिणाम रूप भी मक्त हूँ । त्रैकालिक उपयोग की अनेकता के कारण जीव अनेक परिणाम रूप भी है ।

प्रश्न–६ : शैलक राजर्षि का उत्थान, एव उत्थान से पतन तथा पतन से पुनः उत्थान इस अध्ययन में किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर– शैलक राजा थावच्चापुत्र अणगार के दर्शन पर्युपासना से प्रतिबोध पाकर श्रमणोपासक बना । फिर शुक अणगार के उपदेश से ५०० म त्रियों के साथ दीक्षित हुआ । उत्कृष्ट स यम तप का आराधन करते आहार-पानी की प्रतिकूलताओं से शरीर रोगाक्रा त बना । विचरण करते हुए शैलक नगर आये । सा सारिक पुत्र म डुक राजा ने शैलक राजर्षि का रुग्ण शरीर देखकर औषध उपचार के लिये निवेदन किया । उसे स्वीकार कर राजर्षि बगीचे में से विहार कर राजा की यानशाला में पधारे ।

कुशल राजवैद्यों द्वारा विधियुक्त चिकित्सा प्रार भ की गई । धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ होने लगा । औषध, पथ्य-परहेज, कुशल चिकित्सक और सहयोगी विनय सेवा भाव स पन्न विचक्षण शिष्य समुदाय इन सभी अनुकूल स योगों से शैलक राजर्षि पूर्ण स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त हुए । ल बे समय तक औषध एव पथ्य सेवन से राजर्षि उस खान-पान के आधीन हो गये । सारे अनुकूल स योग से स यम परिणाम शुस्त बन गये और सुखशील–सुखैषी बन गये । स यम के विधि-नियम, तप-ध्यान, प्रतिक्रमण आदि में भी उनकी रुचि शुस्त बन गई । औषध और पथ्यकारी आहार में आसक्त होकर खा-पीकर आराम से दवा के नशे में सोये रहने की आदत में पड़ गये । स्वस्थ, पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर भी दवा छोड़ने या विहार करने का नाम भी नहीं लेते । खुद ही गुरु थे, बाकी सभी शिष्य थे । अतः कोई उन पर हुकम जोर जबरी भी नहीं कर सकता था । नम्रता युक्त निवेदन का उन पर कोई असर भी नहीं पड़ता । आखिर म त्रणा करके शिष्य समुदाय ने वहाँ से विहार कर दिया एव गुरु की सेवा में उनके विनीत, सेवाभावी, कुशल, प्रधान शिष्य प थक मुनि ने रहना स्वीकार किया । दोनों गुरु-शिष्य का चातुर्मास वहीं शैलकपुर में म डुक राजा की यानशाला में रहा । चातुर्मास की पूर्ण जिम्मेदारी एव गुरु सेवा प थकमुनि ने विचक्षणता पूर्वक स भाली । गुरु शैलक तो पूर्ण प्रमादी, आसक्त एव स्वभाव से भी उग्र बनते गये । प थकमुनि अग्लान भाव से अर्थात् ऐसी स्थिति में गुरु के प्रति पूर्ण सन्मान

भाव रखते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे । यह समय शैलक राजर्षि का उत्थान के बाद पूर्ण पतन का था । स यम भावों में उनका कोई ध्यान ही नहीं था । खाना-पीना और ऐसो-आराम में वे लीन हो गये थे । फिर भी प थक मुनि को पूर्ण विश्वास था, भक्ति थी । गुरु का पूर्व विनय, सेवाभाव और सन्मान कायम रखा । शैलक राजर्षि को प्रतिक्रमण का भी ध्यान नहीं था । चौमासा पूरा होने चला, चौमासी पक्खी के प्रतिक्रमण का समय था । प थकमुनि ने आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण कराना शुरु किया । देवसिक प्रतिक्रमण पूर्ण कर चौमासी प्रतिक्रमण की आज्ञा ली । विनय सभर प थक मुनि ने "बड़ा पर्व दिन का प्रतिक्रमण है" ऐसा समझकर विनय भक्ति से गुरु का चरण स्पर्श कर चरण रज मस्तक पर चढ़ाई । इसमें गुरु को चौमासी का ध्यान दिलाने का भी लक्ष्य था ।

शैलक राजर्षि तो नींद में एव नशे में लीन थे । अचानक चरण स्पर्श से उनकी निद्रा-आराम में बाधी उत्पन्न हुई । आक्रोश भरे वचनों से ज्यों त्यों बोलने लगे । प थक मुनि ने शा ति एव नम्रता से उत्तर दिया– भ ते ! यह मैं आपका शिष्य प थक हूँ । मैने आज चौमासी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेकर आपका चरण रज लिया है । गुरुदेव ! अब आपको चौमासी प्रतिक्रमण करा रहा हूँ । कृपा कर आप भी ध्यान से करें(सुनें) ।

इन विनय, शा ति एव भक्ति भरे शब्दों से शैलक राजर्षि की आत्मा जागृत हो गई । उनके पतन से उत्थान का समय आ चुका था । प थक की सेवा सफल हुई । राजर्षि को भान हुआ कि मक्त आलस-प्रमाद में पड़ा हूँ । मुझे चोमासी पक्खी का भी कोई भान नहीं है । मक्तने राज्य वैभव का त्याग कर स यम लिया । उत्कृष्ट तप स यम का आराधन भी किया और औषध उपचार के निमित्त से यहाँ प्रमादी बनकर शिथिलाचारी बना हूँ । पूर्ण पश्चात्ताप के साथ राजर्षि ने भाव युक्त प्रतिक्रमण किया । स्वास्थ्य लाभ तो हो चुका था ।अब पुनः स यम लाभ भी हो गया और दूसरे दिन तो प थक मुनि को लेकर विहार भी कर दिया । विचरण करते सभी शिष्य भी चातुर्मास स पूर्ण कर आकर साथ में हो गये ।

विचरण करते यथा समय पाँच सो अणगार सहित शैलक राजर्षि ने पु ड़रीक पर्वत पर पादपोपगमन स थारा किया । एक महीने के स थारे से आयुष्य पूर्ण कर सभी केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर मोक्षगामी बने । यह शैलक राजर्षि का पतन से पूर्ण उत्थान हुआ ।

प्रश्न-७ : इस अध्ययन से क्या शिक्षा, प्रेरणा एव ज्ञातव्य मिलते हक्त ?

उत्तर- **(१)** "थावच्चा स्त्री" का कृष्ण वासुदेव के दरबार में जाना और कृष्ण का उसके घर आना एक महत्वशील घटना है । **(२)** स यम की वार्ता सुनकर उत्साहित होना उसके घर जाकर वैराग्य की परीक्षा करना एव सारे शहर में प्रेरणा करके एक हजार पुरुषों का दीक्षा महोत्सव करना इत्यादि आचरण तीन ख ड़ के स्वामी श्रीकृष्ण वासुदेव की अनन्य धर्मश्रद्धा एव विवेक को प्रकट करते हक्त । यह विवेक सभी के लिये आदर्शभूत है अर्थात् दीक्षा लेने वाले के प्रति क्या भाव एव व्यवहार रखना चाहिए, यह इस घटना से सीखना चाहिए ।

(३) सा ख्य मतानुयायी सुदर्शन ने जैन मुनि से चर्चा कर श्रावक धर्म स्वीकारा और उसके गुरु शुक स न्यासी ने चर्चा करके स यम अ गीकार किया । ऋजु और प्राज्ञ जीवों के इन उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि मान कषाय से अभिभूत होते हुए भी वे आत्माएँ दुराग्रही नहीं होती है । सत्य समझ में आते ही अपना सर्वस्व परिवर्तन कर देते हक्त । हमें भी स्वाभिमान के साथ सरल एव नम्र बनकर दुराग्रहों से दूर रहना चाहिए अर्थात् सत्य समझ में आ जाने के बाद उसे स्वीकार करने में हिचकिचाट नहीं करना चाहिए । चाहे वह कोई पर परा हो या सिद्धा त। **(४)** समय पर शिष्य भी गुरु का कर्तव्य कर देता है । प थक शिष्य की विनय भक्ति, सेवा, सत्यनिष्ठा ने शैलक राजर्षि का अधःपतन रोक दिया।

(५) स यम से गिरते हुए साधक का तिरस्कार न करते हुए उसकी योग्य स भाल करने से उसका उत्थान स भव हो सकता है । अतः गुरु हो या शिष्य, विवेक युक्त निर्णय सर्वत्र सभी को आवश्यक है । तिरस्कार वृत्ति हेय एव अनाचरणीय है । **(६)** अति वेग से गिरने वाला व्यक्ति भी कभी बच सकता है । अतः योग्य स भाल और सहानुभूति रखना भी कर्तव्य समझना चाहिये । **(७)** जीवन किसी भी ढ़र्रे में चल रहा हो तो भी पुनर्चिन्तन एव नया मोड़ देने की गु जाइस रखनी चाहिए । आत्मा को हठाग्रह और दुराग्रह में नहीं पहुँचाना चाहिये । **(८)** औषध सेवन भी स यम का एक खतरा है । इससे भी अस यम भाव एव प्रमाद भाव उत्पन्न हो सकता है । अतः साधक को औषध सेवन की रूचि से निवृत्त होकर तप स यम एव विवेक युक्त साधना करनी चाहिए । शैलक जैसे चरम शरीरी तपस्वी साधक भी औषध सेवन के निमित्त से स यम में शिथिल बन गये थे । **(९)** शैलक राजर्षि मध्यम

तीर्थंकर के शासन में हुए थे । उनके लिये मासकल्प आदि का नियम पालन आवश्यक नहीं था । इसी कारण ५००श्रमण वहाँ ठहरे थे । कथानक के आधार से अ तिम तीर्थंकर के शासन में नकल नहीं करनी चाहिए, सेवा में जितने श्रमण आवश्यक हो उनके अतिरिक्त छोटे बड़े किसी भी श्रमणों को अकारण कल्प मर्यादा से अधिक नहीं ठहरना चाहिए । **(१०)** शैलक ५०० से, शुक स न्यासी १००० से और थावच्चापुत्र १००० से दीक्षित हुए । आगमों का अध्ययन पूर्ण होने के बाद गुरु ने उन्हें साथ में दीक्षितों को शिष्य रूप में प्रदान किया था । दीक्षा के प्रथम दिन से वे साथ में दीक्षित स त उनके शिष्य नहीं कहलाते है, कि तु बाद में गुरु के देने पर ही उनके शिष्य कहलाते हक्त । तभी वे उनको साथ लेकर स्वत त्र विचरण करने लगते हक्त ।

प्रश्न-८ : दो प्रतिक्रमण के बारे में इस अध्ययन से क्या समझा जा सकता है ?

उत्तर- प थकमुनि ने देवसिक प्रतिक्रमण पूर्ण करके फिर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की आज्ञा ली, इस प्रकार उन्होंने उस दिन दोनों प्रतिक्रमण किये । मध्यम तीर्थंकरों के शासन में सप्रतिक्रमण धर्म नहीं कहा गया है । अतः वे नियमित देवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण नहीं करते थे । इसी कारण उन श्रमणों के पक्खी, चौमासी, स वत्सरी आदि पर्व दिनों में ही प्रतिक्रमण आवश्यक था । ऐसा यहाँ के वर्णन से अनुमान होता है । इसीलिये वे पहले देवसिक प्रतिक्रमण करके फिर उसके अन तर पक्खी, चौमासी या स वत्सरी प्रतिक्रमण करते रहे होंगे । ऐसा यहाँ के वर्णन से अनुमान द्वारा समझा जा सकता है । विधान रूप में यहाँ भी कोई कथन नहीं है ।

इस अनुमान से कोई अ तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में नकल करके मनमाने दो प्रतिक्रमण करने का आग्रह करे तो यह अयोग्य है । क्यों कि आज आगमों में श्रमणों के प्रतिक्रमण स ब धी जो भी विधान है उसमें देवसिक रात्रिक उभयकाल प्रतिक्रमण के सिवाय कोई अन्य विधान है ही नहीं । मध्यम तीर्थंकरों के शासन के कथानक वर्णन मात्र से नकल कर पर परा चलाना अ धानुकरण है, अयोग्य है । इसी से कोई वर्ष में एक बार दो प्रतिक्रमण करते है तो कोई दो बार और कोई चार बार । जब कि मध्यम तीर्थंकर के शासन में तो देवसिक प्रतिक्रमण आवश्यक नहीं होने से २४ पक्खी को और एक स वत्सरी को यों २५ दिन दो प्रतिक्रमण करते रहे होंगे ऐसा अनुमान है । बाकी इस कथा वर्णन के सिवाय श्रमणों के उभयकाल

प्रतिक्रमण का ही कथन शास्त्रों में है । आगमों में भगवान महावीर के श्रमणों के इन दो उभयकाल प्रतिक्रमण के सिवाय किसी भी तीसरे प्रतिक्रमण की कहीं ग ध मात्र भी नहीं है । क्यों कि दोनों समय कम्पल्सरी करना ही है तो अन्य कुछ तीसरा प्रतिक्रमण वहाँ खड़ा होता ही नहीं है । पर पराएँ बिना आगम आधार के भेड़चाल से, गुरु आज्ञा से कई चल जाती है । तो भी उसका दुराग्रह और खोटा प्ररूपण तो नहीं करना चाहिये । आगम आधार-प्रमाण बिना निरर्थक के वाद-विवाद बढ़ाकर समाज में नये-नये रागद्वेष के प्रस ग खड़े करना योग्य नहीं होता है ।

सार यह है कि दो प्रतिक्रमण करने की आज्ञा या विधान किसी भी शास्त्र में २४ वें तीर्थंकर के शासन के श्रमणों के लिये नहीं है । उनको तो उभय-काल प्रतिक्रमण की ही ध्रुव आज्ञा है । अन्य अड़ गों से समाज में बिखराव पैदा करना अज्ञान दशा एव हठाग्रह वृत्ति का सूचक है । व्रतधारी श्रमणों-पासक जो उभयकाल नियम से प्रतिक्रमण नहीं करते, उन्हें पर्व दिनों में उस दिन का एक पक्खी प्रतिक्रमण कर लेना भी पर्याप्त होता है । अन्य शासन के कथावर्णन से आगम आज्ञा बिना नकल करके उसे जरूरी नहीं बना देना चाहिये ।

अध्ययन-६ : तुम्बा

प्रश्न-१ : यहाँ तु बे का दृष्टा त किस प्रकार दर्शाया है ?

उत्तर- राजगृही नगरी में एक समय गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि जीव भारी कैसे होता है और हल्का कैसे होता है ? तथा भारी होकर नीचे कैसे जाता है और हल्का होकर ऊपर कैसे जाता है ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने तुम्बे का दृष्टा त दिया । सूखा तुम्बा स्वय हलका होता है पानी के ऊपर तैरता है । उस पर घास लपेट कर मिट्टी का लेप किया जाय । फिर उसे सुखाकर पुनः घास लपेट कर मिट्टी का लेप किया जाय । यों आठ पट सूख जाने पर उस तुम्बें को पानी में ड़ालने पर वह पानी में नीचे चला जाता है । फिर पानी में एक-एक लेप गलकर निकलते-निकलते एक दिन तु बा पुनः ऊँचा आकर पानी की सतह पर तैरने लगता है।

इसी प्रकार हे गौतम! जीव आठ कर्मों के ब धन बा धता-बा धता

भारी होकर नरक निगोद में चला जाता है और कभी मनुष्य भव में तप स यम से कर्म क्षय करता हुआ हल्का होकर एक दिन लोकाग्र में पहुँच जाता है; मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न-२ : इस दृष्टा त से साधकों को क्या समझाया गया है ?

उत्तर- इस स सार में आत्मा कर्मपटल के कारण भारी बनी हुई है और इसी से स सार में नरकादि गतियों में जन्म-मरण आदि अनेक दुःखों को प्राप्त करती है । साधक कर्मों के आने के कारण रूप जो अठारह पाप है उनका स पूर्ण त्यागी बनकर कर्म मुक्त होने के लिये साधना करता है । उसे १८ पापों का स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम ज्ञान-विज्ञान कर आत्मा में सदा उन पापों के स्थूल, सूक्ष्म स्वरूप को तरोताजा रखना चाहिये और निर तर अप्रमत्त होकर उन सभी पापों से बचने के लिये पूर्ण जागरूक रहना चाहिये । स्थूल पापों को समझना और छोड़ना साधक को कुछ सहज हो जाता है, यथा- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, कलह, क्रोध, माया, द्वेष, माया मृषा, अभ्याख्यान, मिथ्यादर्शनशल्य । कि तु राग-अनुराग, मान-अभिमान, दूसरों की निंदा-विकथा, चुगली करना, रति-अरति आदि का स्वरूप समझ पाना एव उनके नहीं करने का अभ्यास होना कुछ अधिक कठिन होता है । अतः साधक को इन दुस्त्याज्य पापों के नहीं करने का विशेष रूप से ध्यान रखना होता है । स क्षेप में इन सूक्ष्म-स्थूल सभी पापों के त्याग से अर्थात् स यम पालन से नये कर्म नहीं लगते है और १२ प्रकार के तपाचरण से पुराने कर्म लेप हटते जाते हक्त । जिससे एक दिन साधक, लेप मुक्त तुम्बे के समान समस्त भवभ्रमण रूप स सार से ऊपर उठकर मुक्तिगामी बन सकता है ।

सूक्ष्मतम पापों में पर निंदा, पर तिरस्कार, चाड़ी-चुगली आदि पापों को पीठ के मा स खाने की उपमा दी गई है । यथा- **पिट्ठी म स ण खाएज्जा** दूसरों का पराभव, तिरस्कार, गिराने की एव हल्का दिखाने की भावना भी मानव का असाध्य रोग रूप एक पाप है । सूयगड़ा ग में कहा है-

जो परिभवइ पर जण , स सारे परिवत्तइ मह ।
अदु इ खिणिया हु पाविया, इति स खाय मुणि ण मज्जइ ॥

अर्थ- पर निंदा-विकथा, तिरस्कार ये बहु पापकारी वृत्तिया है, इससे जीव महास सार में पर्यटन करता रहता है । यह जान कर मुनि कभी भी **अपनी थाप और पर उत्थाप** रूप अभिमानी वृत्ति नहीं करे ।

इस तरह इन समस्त पापों के स्वरूप स ब धी आगम रहस्यों को

समझकर इसका पूर्णतया त्याग करने वाला कर्म लेप से रहित-हल्का बन कर उर्ध्वगति करता है और लोकाग्र में पहुँच कर मोक्षगति प्राप्त करता है ।

इस अध्ययन के दृष्टा त का घोष है पापों को त्यागो, कर्म ब धन घटावो, आत्मा से कर्म लेप हटाकर ऊर्ध्वगति याने मुक्ति प्राप्त करो । जो कर्मलेप बढ़ायेंगे, पापाचरण (१८ पाप) बढ़ायेंगे, वे भारी कर्मा बनकर स सार की अधोगतियों में परिभ्रमण करते रहेंगे ।

अध्ययन–७ : रोहिणी

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का कथानक–दृष्टा त किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर– इसमें धन्ना सार्थवाह द्वारा उसकी चार पुत्र वधुओं की परीक्षा का विवरण दिया गया है ।

राजगृही नगरी में धन्ना सार्थवाह के चार पुत्र थे– धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित । एव चार पुत्रवधुएँ थी– उज्झिता, भोगवती रक्षिका और रोहिणी । एक बार धन्ना सार्थवाह को बहुओं की परीक्षा कर उनकी योग्यता अनुसार गृहकार्य व्यवस्था में नियोजित करने की विचारणा पैदा हुई । तदनुसार उसने ज्ञातीजनों एव मित्रों को निम त्रित कर भोजन करवा कर सभी के सामने एक-एक करके चारों बहुओं को बुलाकर पाँच-पाँच शालि के कण दिये और कहा कि इन्हें स भाल कर सुरक्षित रखना और जब मक्त वापिस माँगूँ तब ये पाँच शालि वापिस देना ।

चारों बहुओं की मति भिन्न-भिन्न थी । **पहली ने** सोचा– भ ड़ार में बहुत पड़े हक्त, ससुरजी जब माँगेंगे तब लाकर दे दूँगी । तो अभी इन्हें क्या स भालना, यों सोचकर उन पाँच शालि कण को फेंक दिया । **दूसरी ने** प्रसाद समझकर खा लिये । **तीसरी ने** ड़ब्बी में रखकर सार स भाल रखी । **चौथी ने** अपने पिता के घर भेजकर उनकी अलग खेती करके स चय करवाया ।

पाँच वर्ष बाद ससुरजी ने पुनः भोजन का समार भ रखकर भोजन से निवृत्त होने के बाद ज्ञातीजनों के सामने ही एक-एक बहु को बुलाया और पाँच शालिकण वापिस लाने को कहा और सत्य बोलने का आग्रह रखा ।

पहली ने फेंकने का सत्य कथन कर दिया । दूसरी ने खाने का तीसरी ने ड़ब्बी हाजिर करी और चौथी रोहिणी ने कहा कि अनेक गाड़ा-

गाड़ी भेजिये तब पाँच शालि आ सकेंगे । धन्ना के द्वारा उसका स्पष्टीकरण पूछा गया । उसने बीते हुए पाँच वर्षों में कृषि द्वारा वृद्धिगत करने का समाधान दिया । इस पर धन्ना सार्थवाह ने सभी के सामने **पहली** बहु को उपाल भ देकर झाड़ु–बुहारा, गृह सफाई का काम सोंपा । **दूसरी को** रसोईघर स ब धी व्यवस्था स भलाई । **तीसरी को** कोठार, भ ड़ार की सुरक्षा स भलाई । **चौथी रोहिणी** को गृह स्वामिनी बनाया और सभी को विसर्जित किया ।

प्रश्न–२ : इस दृष्टा त से साधकों को क्या सूचित किया गया है ?

उत्तर– मोक्ष की साधना में लीन श्रावक या साधु अपने ग्रहण किये व्रतों या महाव्रतों का सम्यक् पालन करे, उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि करे । ज्ञान एव तप से आत्मगुणों की समृद्धि बढ़ावे । चारों बहुओं की प्रवृत्तियों के आधार से शास्त्रकार ने निम्न प्रकार से धर्म शिक्षा के रूप में इस उदाहरण को घटित किया है–

(१) जो व्रती, व्रत ग्रहण करके उन्हें त्याग देते हक्त्वे पहली पुत्रवधु उज्झिता के समान इहभव परभव में दुःखी होते हक्त । सभी की अवहेलना के भाजन बक्तेहक्त। **(२)** जो साधु पाँच महाव्रतों को ग्रहण करके सा सारिक भोग उपभोग के लिये उनका उपयोग करते हक्त । वे भी निन्दा-पात्र बन कर भवभ्रमण करते हक्त। **(३)** जो साधु तीसरी पुत्रवधु रक्षिका के सदृश अ गीकृत पाँच महाव्रतों की भलीभाँति रक्षा करते है, वे प्रश सापात्र होते है और उनका भविष्य म गलमय होता है। **(४)** जो साधु चौथी पुत्र वधु रोहिणी के समान स्वीकृत स यम की उत्तरोत्तर वृद्धि करते है, निर्मल और निर्मलतर पालन करके स यम का विकास करते हक्त्वे परमानन्द के भागी होते हक्त

प्रश्न–३ : इस कथानक से परिवारिक या सामाजिकता के लिये क्या शिक्षा उपलक्षित होती है ?

उत्तर– यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन का उपस हार धर्मशिक्षा के रूप में किया गया है । धर्मशास्त्र का उद्देश्य मुख्यतः धर्मशिक्षा देना ही होता है तथापि उसे समझाने के लिए जिस कथानक की योजना की गई है, वह गार्हस्थिक–पारिवारिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । **"योग्य – योग्येन योजयेत्"** यह छोटी सी उक्ति अपने भीतर विशाल अर्थ समाये हुए है । प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता होती है । किन्तु उस योग्यता का सुपरिणाम तभी मिलता है जब उसे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य में नियुक्त किया जाए । योग्यता से प्रतिकूल कार्य में जोड़ देने पर योग्य से योग्य व्यक्ति भी अयोग्य सिद्ध

होता है । उच्चतम कोटी का प्रखरमति विद्वान भी बढ़ई सुथार के कार्य में अयोग्यतम बन जाता है । योग्यतानुकूल योजना करने वाला कोई विरला ही होता है । धन्य सार्थवाह उनहीं विरले योजकों में से एक था । अपने परिवार की सुव्यवस्था करने के लिये उसने जिस सूझ-बूझ से काम लिया वह सभी के लिये मार्गदर्शक रूप है । इस उदाहरण से लौकिक-लोकोत्तर सभी कार्यों को सफलता पूर्वक साथ सम्पन्न कर सकते हक्त इसलिये घर-परिवार हो या साधु-साध्वी स घ हो अथवा चतुर्विध स घ हो; हर समाज को सुचारु रूप से व्यवस्थित चलाने के लिये योग्यता के अनुसार ही पद एव कार्यभार सोंपने का आयोजन करना चाहिये । तभी स घ-समाज, शा ति और सफलतापूर्वक गतिमान होता है ।

अध्ययन-८ : मल्लि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का दृष्टा त किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर- इस अवसर्पिणी काल में क्रमशः २४ तीर्थंकर हुए हक्त । उनमें १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ भगवान हुए हक्त । उनका जीवन चरित्र इस अध्ययन में २ पूर्वभवों के साथ वर्णित है ।

पश्चिम महाविदेहक्षेत्र की २४वीं सलिलावती विजय में बलराजा का पुत्र महाबल था । बलराजा ने दीक्षा लेकर के आत्म साधना कर मुक्ति प्राप्त करी । फिर महाबल राजा बना । उसके छः बालमित्र राजा थे, वे साथ में खेले बड़े हुए थे । वे सातों आपस में नियमबद्ध थे कि कोइ भी विशेष कार्य करेंगे तो सभी साथ में रहेंगे । अतः महाबल राजा को वैराग्य पैदा होने पर सातों ने साथ में दीक्षा ली । उग्र तप भी सभी साथ में करते और अ त में स लेखना स थारा भी साथ में किया । सातों ने जय त नामक तीसरे अनुत्तर विमान में ३२ सागरोपम की स्थिति प्राप्त करी ।

देवलोक की स्थिति पूर्ण करके छहो मित्र भरतक्षेत्र में अलग-अलग राज्यों के राजा बने और सुखपूर्वक रहने लगे । महाबल देव भी बत्तीस सागर परिपूर्ण स्थिति पूर्ण कर अवधिज्ञान के साथ मिथिला नगरी में स्त्री पर्याय में उत्पन्न हुआ । माता-पिता ने उसका नाम मल्लिकुमारी रखा ।

पूर्वभव के अनुराग से छहो मित्र राजा निमित्त पाकर एक साथ मल्लिकुँवरी के साथ शादी करने आये । मल्लिकुँवरी ने उन छहों को पूर्व

भव का कथन करके प्रतिबोध दिया, तब उन्हें भी जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । अपने पूर्व भव का स्मरण, प्रत्यक्ष अनुभव करके वे सभी विरक्त हुए । एक वर्ष वर्षीदान देकर १०० वर्ष की वय में मल्ली अरह त ने ३०० स्त्रियों एव ३०० पुरुषों के साथ सिद्धों को नमस्कार करके सामायिक चारित्र अ गीकार किया । उसी समय उन्हें मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । मल्ली अरह त स्त्री तीर्थंकर होने से साध्वियाँ उनकी आभ्य तर पर्षदा रूप में थी एव श्रमण उनके बाह्य पर्षदा रूप में थे ।

दीक्षा के दिन ही शाम को मल्ली अरह त को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । देवों तथा ६४ इन्द्रों सहित उपस्थित पर्षदा ने धर्मोपदेश सुना, देवों ने केवलज्ञान महोत्सव किया और न दीश्वर द्वीप में जाकर अट्ठाई महोत्सव करके अपने देवलोक में गये । कु भ राजा प्रभावती राणी भी आ गये थे, उपदेश सुना और श्रावक व्रत अ गीकार किये । पूर्व मित्र वे छहों राजा भी पहुँच गये थे, उपदेश सुना और उसी दिन दीक्षित हुए । छहों ने १४ पूर्वों का ज्ञान हासिल किया । काल क्रमे छहों मुनि कर्मक्षय करके मुक्त हुए । मल्लीनाथ भगवान भी ५५००० वर्ष का आयु पूर्ण कर सम्मेत शिखर पर्वत पर एक महीने के स थारे से निर्वाण को प्राप्त हुए ।

प्रश्न-२ : सभी तीर्थंकर पुरुष रूप में होते है, यह लोक का सामान्य नियम है । तो मल्ली अरह त स्त्री तीर्थंकर क्यों हुए और इस विषय में दिगम्बर जैनों का म तव्य और उनका समाधान क्या है ?

उत्तर- लोक में कुछ स्वाभाविकताएँ अन तकाल से एक सरीखी चलती रहती है । फिर भी उसमें कभी कोई विशिष्ट घटना स योग से अपवाद (फरक)हो जाता है । इसी कारण इस अवसर्पिणी में १० घटनाएँ अनहोनी हो गई और स्वाभाविक लोक नियम से कुछ फरक हुआ है । इन्हें ही स्थानाग सूत्र में १० अच्छेरे के रूप में कहा गया है । जिसका वर्णन प्रश्नोत्तरी भाग दो में किया गया है । उसमें चोवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर से स ब धित ५ अच्छेरे हक्त और अन्य पाँच में यह मल्ली भगवती के स्त्री तीर्थंकर होने का अच्छेरा भी है यह कथन सामान्य ग्र थ का नहीं है कि तु ग्यारह अ गसूत्र में से दो शास्त्रों में है- (१) ठाणा ग सूत्र और (२) ज्ञाता सूत्र में । यहाँ ज्ञाता सूत्र में स पूर्ण दो भव सहित मल्लिकुँवरी के जन्म से लेकर निर्वाण तक का स्पष्ट वर्णन है । इसलिये आगम प्रमाण से समस्त श्वेताम्बर जैन १९ वें तीर्थंकर को स्त्री तीर्थंकर रूप में ही मानते-समझते हक्त ।

पूर्वभव में महाबल के जीव ने स यम तप का आचरण करते हुए साथी मुनियों से आगे के भव मे ऊँचा बनू, बड़ा बनूँ; इस भावना से कपट का सेवन करके साथियों के साथ धोखा करके स्वय ज्यादा तपस्या कर लेते थे । जब कि सभी का एक समान तप करने का आपस में स कल्प था । कुछ समय वह कपट निर तर चला था, जिसमें तल्लीनता होने से स्त्रीवेद का ब ध निकाचित पड़ गया था । तथापि स यम और तप तो उन सभी का उच्च उच्चत्तम ही जीवनभर रहा । महाबल मुनि में उच्च तप की तल्लीनता भी थी और तीर्थंकर गौत्र बाँधने के २० बोलों में अनेक बोलों की उत्कृष्ट रसायन भी थी । इसलिये उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म भी निकाचित ब ध कर लिया । ऐसी विशिष्ट स योजना हो जाने के कारण लोक आश्चर्यभूत घटना बन गई कि वे तीर्थंकर भी बने और स्त्री भी बने ।

दिगम्बर जैनों की ऐसी समझ पर परा चली आ रही है कि अ गशास्त्र विच्छेद(नष्ट)हो गये थे । गणधरकृत एक भी अ गशास्त्र किसी को याद नहीं रहा था। दिग बर मत चलाने वाले श्रमण को भी अ ग का ज्ञान नहीं रहा था । उसे थोड़ा सा पूर्वज्ञान याने बारहवें दृष्टिवाद अ ग का कुछ अ श याद था । जिससे उसने दिग बर जैन मान्य ग्र थ रचे थे । इसलिये वे आज तक अपने उन ग्र थों को मान्य करते है और श्वेता बर मान्य इन ग्यारह अग शास्त्रों को **श्वेता बर आचार्योंने पीछे से नये ही बनाये हक्त,** ऐसा वे मानते एव निरूपण करतेहक्त। अतः वे ठाणा ग सूत्र कथित १० अच्छेरे भी नहीं मानते तथा ज्ञातासूत्र के इस आठवें अध्ययन में आये मल्ली भगवती के विषय को भी नहीं स्वीकारते और मल्लीनाथ १९ वें तीर्थंकर पुरुष ही थे, ऐसा वे मानते हक्त । इस विषय में सामान्यतया हम उन्हें कुछ भी नहीं समझा सकते, वे भी समझ नहीं सकते, स्वीकार नहीं कर सकते । क्यों कि वे इन शास्त्रों को ही नहीं मानते तो फिर उन्हें किस आधार से समझाया जाय ?

वास्तव में उनकी चली आई समझ या पर परा भ्रमयुक्त, तर्क से अस गत और जानबूझकर किसी ने अपने खोटे दुराग्रह(अभिनिवेष) की लीपापोती के लिये चलाई हुई है । जिन जीवों के उस-उस प्रकार का मोह-अज्ञान कर्म उदय होता है, वे उन-उन खोटी समझ मान्यताओं को सही श्रद्धा करके चलते रहते है । तभी लोक में कितने ही अयोग्य, अशुद्ध, तर्कहीन, खोटे धर्म भी चलते है और उनके हजारों लाखों अनुयायी भी होते रहते हक्त ।

सही बात यह है कि तीर्थंकरों के शासन में क ठस्थ ज्ञान-दान, वाचना-प्रदान, स्वाध्यायमय जीवन सैकड़ों हजारों श्रमणों में चलता है । ग्यारह अ ग के अध्येता साधु और साध्वियाँ हजारों होती है । पूर्वों का ज्ञान केवल साधु ही करते है । साध्वियाँ पूर्वों का एव १२ वें दृष्टिवाद अ ग का अध्ययन करती-कराती नहीं है । तो दिग बर जैनों की कथन पर परा अनुसार "सारे ११ ही अ ग भगवान के शासन में एकदम इतने जल्दी नष्ट हो जाय, किसी भी साधु-साध्वी को ११ में से एक भी अ गशास्त्र याद नहीं रहा " यह बात एकदम खोटी कल्पित की गई हक्त । आज भी अनेकों साधु-साध्वीजी में अनेक शास्त्र क ठस्थ करने की पर परा चालू ही है । तो ड़ेढ़ हजार वर्ष पहले सभी साधु-साध्वी एकदम आगमज्ञान रहित कैसे हो गये ? क्या सभी साधु-साध्वी महाप्रमादी अज्ञानी हो गये थे ? इतना प्रमाद कैसे घुस गया था ? माना नहीं जा सकता । क्यों कि साधु-साध्वी सदा रात-दिन अपनी अपनी स्वाध्याय परियट्टना में लगे ही रहते थे और आज भी सेकड़ों साधु-साध्वी रात और दिन में स्वाध्याय पुनरावर्तन करते ही रहते है । तो दिगम्बर जैनों के कहने से सभी जैन साधु-साध्वी अ ग आगम ज्ञान रहित अज्ञानी होना कैसे माना जा सकता है !!

इसीलिये ऊपर कहा गया है कि यह उनका कथन और पर परा भ्रमयुक्त, तर्क अस गत एव दुराग्रह से जानबूझकर खोटा रटन चलाया हुआ है पर तु ऐसा होना किसी तरह स भव नहीं हो सकता ।

जो ऐसा माना जाय कि सभी साधु-साध्वी ज्ञान रहित, अ गशास्त्र रहित हो गये थे तो फिर क्या इन सभी दिग बर श्वेताम्बर का धर्म अज्ञानियों ने ही चलाया और अज्ञानियों ने ही नये शास्त्र और ग्र थ रच लिये ? ऐसी मूर्खता भरी बात को विचित्र कर्मोदय वाले लोग चला देते हक्त और ऐसे कर्मोदय वाले लोग उनको स्वीकार भी लेते हक्त ।

बुद्धिमान मानवों की पर परा स सार में जबतक चलती है तब तक ज्ञान भी चलता है । भगवती सूत्र अनुसार पाँचवें आरे के २१ हजार वर्ष तक ज्ञान चलेगा तो क ठस्थ पर परा वाले जिन शासन में भगवान के बाद ५००–७०० वर्ष तक में स पूर्ण अ ग आगम ज्ञान भूल जाने, नष्ट हो जाने की बातें चलाना, घड़ना यह अच्छे मानस की बात नहीं है ।

दिग बर जैनों का यह कहना भी अच्छा नहीं है कि "वर्तमान में श्वेता बर जैनों के जो ११ अ ग है वे तो पुराने नष्ट होने पर आचार्यों ने बना

लिये हक्त ।" ऐसा कहने का मतलब तो यह हुआ कि आगमज्ञान तो स पूर्ण नष्ट हो गया फिर अज्ञानी साधु रहे । उसमें अज्ञानी दिग बर आचार्यों ने नये ग्रथ बनाये और अज्ञानी श्वेता बर आचार्यों ने पुराने अ गशास्त्रों के नाम से नये शास्त्र बना लिये । तो भी इनके कथन अनुसार श्वेता बर जैनों को ११ अ गशास्त्र के नाम तो याद रह गये थे, उसके अ दर का ज्ञान वे भूल गये थे । ज्ञान भूलने वाले दोनों जैनों के आचार्यों ने ज्ञान बिना कैसे रचना की होगी ? बिना ज्ञान के गप्पे लगाने से क्या शास्त्र बन जाते हक्त ?

ऐसा कथन चलाने का मुख्य उद्देश्य यह समझना चाहिये कि श्वेता बर जैनों ने अपने वस्त्र की सिद्धि होवे ऐसे शास्त्र मनमाने बना लिये और दिग बर जैनों ने अपने नग्न रहने की और वस्त्र नहीं रखने की सिद्धि होवे ऐसे शास्त्र बना लिये और दोनों का अपना-अपना प थ अपने मनमाने बनाये शास्त्रों से चलने लगा ।

ऐसा सोचना मानना भी दिग बर जैनों के मान्य ग्र थों के लिये घटित होता है कि तु श्वेता बर मान्य ग्यारह अ गशास्त्रों के लिये ऐसा घटित नहीं होता है ।

श्वेता बर शास्त्रों में कहीं भी नग्न रहने से मुक्ति नहीं होती है, ऐसा नहीं लिखा है । कि तु अचेल रहने के धर्म की मुक्तक ठ से प्रश सा की गई है । जब कि दिग बर जैनों के ग्र थों में कहीं भी वस्त्र रखने की प्रश सा नही की गई है, उल्टा वस्त्र रखने की निंदा-ख ड़न किया गया है और यहाँ तक कह दिया है कि वस्त्र का एक तार भी जो पास में रह गया तो उसकी मुक्ति नहीं होती। फिर भी उन्ही के ग्र थों में गृहस्थलि ग सिद्धा और अन्यलि ग सिद्धा तथा स्त्रीलि ग सिद्धा भी मान्य किया है । तो क्या वे सिद्ध होने वाले गृहस्थ और अन्यलि गी या स्त्रियाँ सभी क्या नग्न होंगे ?

इस प्रकार दोनो ही जैनों के शास्त्र देखने से भी स्पष्ट होता है कि श्वेता बर जैनों के शास्त्रों में दिग बर होने का कहीं ख ड़न नहीं है । यदि दिग बर जैनों से अपने को अलग सत्य सिद्ध करने के लिये श्वेता बर जैनों ने नये शास्त्र बनाये होते तो उसमें दिग बर धर्म की निंदा ही मिलती, प्रश सा तो नहीं ज मिलती । कि तु ऐसा नहीं है । जब कि दिग बर जैनों के शास्त्रों में स्त्रीमुक्ति और वस्त्र रखने का ख ड़न ही मिलता है म ड़न नहीं मिलता । अतः स्पष्ट होता है कि श्वेता बर आगम रागद्वेष रहित उभय धर्म स्वीकारने वाले होने से वे दिग बर जैनों के विरोध में या उनसे अलग होने पर बनाये

गये हो ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता । कि तु दिग बरों के शास्त्र अपने दिग बरत्व की पुष्टी और स्त्रीमुक्ति के तथा वस्त्र के ख ड़न वाले होने से अपनी बात की शान के लिये नये बनाये हुए सिद्ध होते हक्त तथा अपने खोटे दुराग्रह की सुरक्षा के मानस से ११ अ ग को नष्ट होने की निरर्थक बात चलाना भी उनके लिये जरूरी हो गई है ।

इस तरह उभय पक्ष की बात को समझकर हमें अपनी आगम समझ को शुद्ध पवित्र रखना चाहिये । आगम को प्रमाणभूत नहीं मानने और भ्रमित प्रवाह में बहे जाने के स्वभाव वालों को और वैसे ही उदयकर्म वालों को समझाना हमारे लिये शक्य नहीं है एव आवश्यक भी नहीं है । अतः श्वेता बर आगमों की १० अच्छेरे की बात एव मल्ली भगवती के १९ वें स्त्री तीर्थंकर होने की बात में हमे कि चित् भी स देह नहीं करना चाहिये ।

दिग बर जैन स्त्री मुक्ति का सर्वथा निषेध करने के साथ-साथ स्त्री को साधुत्व, छट्ठा गुणस्थान भी होना नहीं स्वीकारते । स्त्री में स यम की सर्वथा अयोग्यता मानते रहे हक्त ऐसा उनके मान्य ग्र थों से स्पष्ट होता है । तथापि कुछ वर्षों से ये जैन अपनी मान्यता के एव अपने आगम ग्र थों के विरुद्ध साध्वियाँ की स ख्या बढ़ा रहे हक्त, चातुर्मास सूचि में इनके साधु-साध्वी की स ख्या श्वेता बर के समान ही प्रतिवर्ष छपती है । फिर भी पुराना ढ़ोल पीटने के लिये ये साध्वीयों को **माताजी** कहकर पुकारते हक्त । यह भी एक बिड़ बना है । आचारा गसूत्र एव दशवैकालिक आगम अनुसार साधु किसी को माताजी, पिताजी ऐसा स बोधन करके नहीं बुलाता है । तथापि साध्वी स ख्या में उनकी गिनती भी करवाते हक्तउसका विरोध नहीं करते हक्त प्राचीन दिग बरों में साधु ही होते थे, साध्वियाँ या माताजी नहीं होते थे ।

वास्तव में आगम अनुसार स्त्री, पुरुष एव नपु सक तीनों प्रकार के मनुष्य मोक्ष के और धर्म के तथा स यम के अधिकारी हक्त जितने गुणस्थान पुरुष को आ सकते है उतने ही अर्थात् १४ ही गुणस्थान स्त्री एव नपु सक को भी आ सकते हक्त इसमें कहीं भी श्वेता बर जैनागमों से विरोध नहीं आता है । मात्र नपु सक को हम सामान्य ज्ञानी, श्रुतव्यवहारी दीक्षा देकर अपने स घ में साथ में नहीं रख सकते, ऐसी आगम आज्ञा है । इसमें साधकों के ब्रह्मचर्य की समाधि सुरक्षा का हेतु आगमकारों का रहा हुआ है कि तु उन्हें योग्यतानुसार स्वत त्र साधना करना, आगम विहारी द्वारा दीक्षा देना एव स यम तथा मुक्ति मिलना इत्यादि की मनाई नहीं है ।

प्रश्न–३ : छ मित्रों के पूर्व भव में और इस भव में नाम क्या थे और इस भव में वे मल्लिकुँवरी के पास कैसे पहुँच गये ?

उत्तर– सातों मित्र पूर्व भव में महाविदेह क्षेत्र में राजा थे और इस भव में ६ मित्र भरतक्षेत्र में (भारत में ही) अलग-अलग देशों के राजा बने कि तु सातों में प्रमुख महबल राजा यहाँ राजा नहीं बनकर राजकुमारी बना । छहों राजा विवाहित हो चुके थे पर तु मल्ली राजकुमारी अविवाहित १०० वर्ष की वय में पहुँच चुकी थी ।

छहों मित्रों के पूर्व भव के नाम– (१) अचल (२) धरण (३) पूरण (४) वसु (५) वेश्रमण (६) अभिचन्द्र ।

इस भव के नाम– (१) प्रतिबुद्धि राजा (२) च द्रच्छाय राजा (३) रुक्मि राजा (४) श ख राजा (५) अदीनशत्रु राजा (६) जितशत्रु राजा ।

मल्लिकुँवरी के पास पहुँचने के निमित्त :–

(१) प्रतिबुद्धि राजा– अपनी राणी के नाग पूजा महोत्सव में बने पुष्पों के श्री दामका ड़ की प्रश सा करते हुए सुबद्धि प्रधान के द्वारा मल्लीकुँवरी के श्रेष्ठ श्री दामका ड़ की बात सुनकर उसके प्रति आकृष्ट हुआ ।

(२) च द्रच्छाय राजा– समुद्री यात्रा से वापिस आने पर अरणक श्रावक के द्वारा मल्लिकुँवरी के रूप की प्रश सा सुनकर उसकी तरफ आकृष्ट हुआ ।

(३) रुक्मि राजा– पुत्री के स्नान महोत्सव पर क चुकी पुरुष के द्वारा मल्लि कु वरी के स्नान महोत्सव की प्रश सा सुनकर उसकी तरफ आकृष्ट हुआ ।

(४) श ख राजा– मल्लीकुँवरी के देवनामी कु ड़ल को सुधार नहीं सकने से देश निकाले की सजा प्राप्त करके आये हुए सुनारों के पास से मल्ली कु वरी का वर्णन सुनकर आकृष्ट हुआ ।

(५) अदीनशत्रु राजा–अगुष्ठ विद्या वाले चित्रकार के द्वारा मल्लिकुँवरी का आबेहूब चित्र उसके भाई मल्लदिन्न कुमार की चित्रशाला में बिना पूछे चित्रित करने के कारण अ गुठा कटवा कर, देश निकाले की सजा प्राप्त कर, मिथिला से आये हुए चित्रकार के पास मल्लिकुँवरी का चित्रपट देख कर आकर्षित हुआ ।

(६) जितशत्रु राजा– मल्लिकुँवरी से धार्मिक चर्चा में परास्त बनी एव उनकी दासियों से अपमानित हुई चोक्खा परिव्राजिका के द्वारा मल्लिकुँवरी का वर्णन सुनकर आकृष्ट हुआ ।

इन छहों राजाओं ने मल्लिकुँवरी से शादी करने की मनोदशा से दूत भेजा । स योगवश छहों दूत अपने अपने देश से निकल कर मिथिला नगरी में एक साथ राजसभा में पहुँच गये । तो कु भ राजा को छहों की एक साथ मा ग पर गुस्सा आया । अनादर करके सभी को निकाल दिया । दूतों के अपमान से क्रुद्ध बने राजा युद्ध की चढ़ाई करके मिथिला नगरी के बाहर एक साथ पहुँचे । युद्ध में कु भराजा की हार हुई । नगरोध करके चि तित बैठे थे । तब मल्लीकुँवरी ने आश्वस्त करते हुए कहा कि अमुक विधि से प्रत्येक राजा को स ध्या समय मेरे पास अमुक जगह आने का निम त्रण भेज दीजियेगा । फिर में स भाल लूँगी । इस प्रकार छहों राजा अलग-अलग मार्गों से अलग-अलग भवनो में(जालगृह में) आकर बैठ गये । वहीं पर सभी का मल्लिकुँवरी से प्रत्यक्ष मिलन हुआ ।

इस प्रकार पूर्व भव की मित्रता आदि के अदृश्य स्नेह निमित्त से एव प्रत्यक्ष में मोहित भावों से आकृष्ट होकर सातों मित्रों का अनायास एक साथ मिलना हो गया ।

प्रश्न–४ : श्रावक को समुद्रों की यात्रा करके धन कमाने की क्या जरूरत ? वह तो अपने नगर में भी आजीविका चला सकता है ?

उत्तर– श्रावक आखिर तो स सारी प्राणी है । उसे अपना मौज-शौख, सुख-भोग, ऐस-आराम, व्यापार-फेक्ट्रियाँ, नेतागिरि आदि कोई भी प्रवृत्ति छोड़ना जरूरी(कम्पल्सरी) तो नहीं होता है । हर व्यक्ति की अपनी पुरानी चलती जो भी प्रवृत्ति-जीवन व्यवहार होता है उसे श्रावक बनते ही एक दिन में सबकुछ छोड़ देना शक्य नहीं होता है । ऐसे मानस की स्वय की तैयारी भी नहीं होती या परिवार साथी-सहयोगी आदि का भी स ब ध व्यवहार रखना होता है । श्रावक बनते ही खुद की सभी रुचियों का तत्काल त्याग जिनशासन में जरूरी नहीं होता है कि तु शिक्षा स स्कार निर तर ये मिलते रहते है कि स सार की रुचिएँ घटानी चाहिये । आर भ परिग्रह घटाना चाहिये । व्यापार वाणिज्य भी दालरोटी मिले इतना ही करने में स तोष रखकर बिन जरूरत का नहीं बढ़ाना चाहिये । बल्कि धीरे-धीरे बिनजरूरी का विचार करके घटाते रहना चाहिये ।

अतः श्रावक बनने के पहले से जो व्यापार प्रवृत्तिएँ, शौख होते हक्त वे भी कुछ समय चल सकते हक्त । कुछ इच्छाएँ, अस तोष, लाचारी हो तो नये भी ध धे फेक्ट्री, नेतागिरी, राज्य स चालन आदि बन सकते हक्त । वह कोई

साधु तो बना नहीं है । आदर्श और लक्ष्य तो श्रावक का त्यागप्रधान होना चाहिये । हमेशा मनोरथ और स स्कार भी परिग्रह और पाप व्यापार घटाने का एव नया नहीं करने का होना चाहिये । तथापि किसी किसी को जीवन की कुछ आका क्षाएँ होती है । जो श्रावक बनते ही नहीं छूटती हो तो श्रावक बनने के बाद भी वे प्रवृत्तिएँ वय के अनुसार बढ़ जाय तो उसका श्रावकपना सम्यग्दर्शन खराब है, ऐसा एका त तो नहीं कहा जा सकता । हाँ यदि ज्ञान स स्कार लक्ष्य का अभाव रहे और जीवन बेलगाम चले तो उसके श्रावकपन और समकित सभी के खतरे तो बने ही रहते है । इसलिये तो कहा गया है कि– **परमत्थ स थवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि ।**

अर्थ– धर्म तत्त्वों का ज्ञान स स्कार बढ़े वैसा सत्स ग-परिचय करते रहना चाहिये । ज्ञानीजनों के दर्शन का लाभ एव जिनवाणी श्रवण का लाभ लेते रहना चाहिये । ये सम्यक्त्व के सुरक्षा स्थान है । सम्यक्त्व को पुष्ट करने वाले आल बन तत्त्व है ।

आन द कामदेव आदि श्रावकों के पास अपार धन(खरबों अरबों का) एव पशुस ग्रह था । वे भी श्रावक बनने के १४ वर्ष बाद निवृत्त बने और समस्त आर भ-परिग्रह का त्याग कर साधु जैसा जीवन जीने लगे थे तथा उस तरह की साधना भी ६ वर्ष करी थी ।

अतः श्रावक अपने जीवन में कोई भी आर भ-परिग्रह धीरे-धीरे छोड़े, शीघ्र छोड़े, यह उसका ऐच्छिक विषय है । सावधान रहना, स स्कार बढ़ाना इत्यादि जरूरी है और कुछ अवधि के बाद आर भ-परिग्रह सीमित करने के मनोरथ को सफल भी कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–५ : च द्रच्छायराजा को मल्लिकुँवरी के प्रति मोहभाव अरणक श्रावक के निमित्त से कैसे उत्पन्न हुआ ?

उत्तर– अरणक श्रावक अ गदेश के च द्रच्छाय राजा की च पानगरी का निवासी था । वह समुद्री मार्ग से अपनी जहाज के द्वारा अन्यान्य देशों में व्यापार करने जाता था । नगरी में घोषणा करके अनेक लोगों को अपने साथ चलने की सूचना करवाता था और जो भी साथ चलते उनको अनेक प्रकार की सुविधा-सहयोग करता था ।

यथासमय शुभमुहूर्त तिथि योग में उसने नावा अथवा समुद्र की पुष्पार्पण विधि, बलिकर्म, च दन के छापे लगाना, धूप वगेरे करके, समुद्रगत वायु की पूजाविधि करके, ध्वजा फहराना, वादित्र वादन आदि लौकिक

एहिक विधि पूरी करने के बाद अपनी नौका यात्रा प्रार भ करी । कुछ दूर जाने पर देव स ब धी उपद्रव हुआ । पिशाच रूप देव ने अरणक श्रावक को धर्म एव त्याग व्रतों को छोड़ने का कहा और नहीं छोड़ने पर ऊपर ले जाकर नावा को समुद्र में फेंकने की धमकी दी । तलवार धारी राक्षस रूप को देख सभी यात्री ड़रने लगे। अपने-अपने ईष्ट की मनौतियाँ करने लगे । अरणक श्रावक सागारी स थारे का पच्चक्खाण कर मौन भाव से समाधि में लीन बन गया और मन ही मन देव को जवाब दे दिया कि मैं अपना धर्मव्रत नहीं छोड़ सकता, तुम्हें जो करना हो वह अपनी मरजी तुम जानो अर्थात् जो करना हो स्वच्छ दपणे करो । देव ने नावा को ऊपर ले जाकर भी २–३ बार वही धमकी दी कि तु मानव शक्ति के आगे देव हार गया । नावा को व्यवस्थित रख दी । क्षमा मा गकर श्रावक की स्तुति प्रश सा करके खुद के आने का स्पष्टीकरण भी किया कि इन्द्र सभा में शक्रेन्द्र ने तुम्हारी धर्म श्रद्धा की प्रश सा की थी । उस पर अविश्वास करके मक्त तुम्हें धर्म से विचलित करने आया था । प्रसन्न बना देव दो कु ड़लों की जोड़ी देकर (रखकर) चला गया। फिर श्रावक ने उपसर्ग समाप्त हुआ जानकर सागारी स थारा पूर्ण किया । फिर नावा से मिथिलानगरी पहुँच कर कु भ राजा को एक कु ड़ल जोड़ी भेंट करके व्यापार करने की स्वीकृति मा गी । कु भ राजा ने उनहीं के सामने मल्लिकुमारी को बुलाकर वे कु ड़ल पहना दिये । अपना व्यापार कर अरणक श्रावक अपनी नगरी च पा में वापिस आये और दूसरी कु ड़ल की जोड़ी अपने राजा को भेंट दे दी । तब उस च द्रच्छाय राजा ने पूछा कि तुम देश विदेश घूमते हो तो कोई आश्चर्यकारी विशिष्ट चीज देखी हो तो बताओ, सुनाओ । तब अरणक श्रावक ने मल्लि कुँवरी के रूप की अतिशय प्रश सा करी जिससे वह राजा मल्लिकुँवरी के प्रति मोहित बना ।

प्रश्न–६ : अरणक श्रावक ने मिथ्यात्व की प्रवृत्तिएँ पुष्पार्पण, धूप-दीप, बलिकर्म आदि क्यों किये ?

उत्तर– कुछ लौकिक प्रवृत्तिएँ सा सारिक प्रवाह रुचि से की जाती है । उन्हें सीधे मिथ्यात्व की प्रवृत्तिएँ कह देना योग्य नहीं है । वो गृहस्थ के जिताचार होते हक्त । अरणक श्रावक, जिसकी देवलोक की इन्द्रसभा में स्वय शक्रेन्द्र ने प्रश सा करी, उसे अनुपम दृढ़धर्मी-प्रियधर्मी सब देवों के सामने कहा । ऐसे श्रेष्ठ श्रावक ने अपनी लौकिक-सा सारिक प्रवृत्ति रूप में पुष्पार्पण से लेकर वादित्र वादन तक की प्रवृत्तिएँ की थी । उन प्रवृत्तियों को वह धार्मिक

आचार नहीं समझता था । अतः उन लौकिक रिवाज की प्रवृत्तियों को करने से वह भ्रष्ट श्रावक नहीं कहलाया और उन प्रवृत्तियों से उसकी धर्म श्रद्धा-समकित में भी कोई नुकशान नहीं हुआ था । क्यों कि उसकी धर्म तत्त्वों की एव आचरणों की समझ शुद्ध–सही थी । कुछ लौकिक रिवाज गत म गल स्वरूप प्रवृत्तिएँ विघ्ननाशक समझकर मानव अपने कुल पर परा से गृहस्थ के जिताचार रूप में करते रहते हक्त । रोग स ब धी औषध-उपचार एव प्रेतात्मा स ब धी परेशानियों के उपचार भी श्रावक एव स्थविरकल्पी साधु करे तो वे प्रायश्चित्त के भागी नहीं बनते हक्त श्रावक एव स्थविरकल्पी साधु को अपने आचार में विशेष परिस्थिति में वे आचरण कल्प्य होते हक्त श्रावक के तो आगारधर्म ही है, उसके लिये खोटी समझ मान्यता नहीं रखने के अतिरिक्त कोई भी प्रवृत्ति का एका तिक निषेध नहीं होता तथा सूत्रानुसार स्थविरकल्पी साधु भी औषध-उपचार या कोई झाड़ा-म तर आदि भी करवा सकता है, जिसका उसे कोई प्रायश्चित्त भी नहीं आता है ***–व्यवहार सूत्र ॥*** कोई जीव विराधना आदि हो तो ही उसका प्रायश्चित्त आता है कि तु औषध उपचार, सा प-बिच्छु का झाड़ाम तर करना मिथ्यात्व है ऐसा मान कर कोई उसे प्रायश्चित्त लेने का कहे तो वह आगम विरूद्ध कथन होता है ।

तात्पर्य यह है कि आदर्श श्रावक एव विशिष्ट साधक इन औषध उपचारों का त्याग करे तो वह अपनी दृढ़ता अनुसार कर सकता है और श्रावक भी आगे बढ़कर समस्त लौकिक रीतिरिवाज की प्रवृत्तियों का त्याग कर सकता है । कि तु जो जब तक ऐसा आदर्श त्याग नहीं कर सके तो उसे मिथ्यात्व के आक्षेप से मढ़ना आगमानुकूल नहीं कहा जा सकता ।

अतः दृढ़धर्मी-प्रियधर्मी दैविक शक्ति से भी नहीं ड़िगने वाले अरणक श्रावक ने अपनी सहज प्रवृत्ति रूप में नावा में चढ़ने के पहले पुष्पार्पण, धूप, पूजा वगैरह प्रवृत्तियाँ लौकिक आचार समझकर की थी । इसमें उसने कुछ भी अयोग्य या अपने धर्म विरूद्ध किया, ऐसा नहीं समझना चाहिये ।

जब तक श्रावक अपनी सामान्य स्टेज से आगे नहीं बढ़ पाता, लौकिक प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाता, तब तक वह अपनी समझ में उन प्रवृत्तियों को धर्म का बाना नहीं पहिनावे । लौकिक आचार ही कहे, माने इतनी सावधानी उसे अवश्य रखनी चाहिये । जीव को मिथ्यात्व तो खोटी समझ, खोटी मान्यता से आता है । लौकिक या कुल पर परा के आचरण मात्र से मिथ्यात्व नहीं हो जाता है । ऊँची आगे की स्टेज में पहुँच कर श्रावक

समस्त लौकिक और कुल पर पराओं का त्याग कर सकता है । यदि कोई जरूरी हो तो उसे वह पुत्र को सोंपकर आन द आदि श्रावकों की तरह पूर्ण निवृत्त हो सकता है । प्रवृत्तियों मात्र का त्याग बढ़ाना तो श्रेष्ठ ही है कि तु उसके लिये दुराग्रह या अति प्ररूपण करना उचित नहीं होता है ।

हमारे इस कथन को, निरुपण को कोई ढ़िलाई में बढ़ावा देना कहे या माने तो यह उसका अविवेक है । तब तो भगवान को श्रावक धर्म बताना भी ढ़िलाई को प्रोत्साहन देना हो जायेगा । भगवान को भी सभी को साधु बनने का एक ही उपदेश देना चाहिये । श्रावकपन तो ढ़िलाई का उपदेश है ऐसा कहना व्यक्ति की अपनी स्वच्छ द बुद्धि का कथन होगा । भगवान तो स्यादवादमय उभय मार्ग का निरूपण करते हक्त । एक सरल भी एक कठिन भी जिसे जो अनुकूल पड़े स्वीकारे ।

प्रश्न–७ : मल्लिकुँवरी ने शादी करने आये ६ राजाओं को किस तरह से प्रतिबोध देकर विरक्त बनाया ?

उत्तर– मल्लीकुमारी ने अवधिज्ञान के साथ जन्म लिया था । अवधिज्ञान के प्रयोग से उन्होंने अपने छहों साथियों की अवस्थिति जान ली थी । भविष्य में घटित होने वाली घटना भी उन्हें विदित हो गई थी । अतएव उसके प्रतिकार की तैयारी भी करली थी । तैयारी इस प्रकार की थी– मल्लि कुमारी ने हूबहू अपनी जैसी एक प्रतिमा का निर्माण करवाया । अ दर से वह पोली थी और उसके मस्तक में एक बड़ासा छिद्र था । उस प्रतिमा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह मल्ली नहीं, मल्ली की प्रतिमा है । मल्लिकुमारी जो भोजन-पान करती उसका एक पिंड़ मस्तक के छेद में से प्रतिमा में ड़ाल देती थी । वह भोजन-पानी प्रतिमा के भीतर जाकर सड़ता रहता और उसमें अत्य त दुर्गंध उत्पन्न होती । किन्तु ढ़क्कन होने से वह दुर्गंध वहीं की वहीं रहती थी । जहाँ प्रतिमा अवस्थित थी, उसके सामने मल्ली ने जालीदार गृहों का भी निर्माण करवाया था । उन गृहों में बैठ कर प्रतिमा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था, किन्तु उन गृहों में बैठने वाले एक दूसरे को नहीं देख सकते थे ।

मल्लिकुमारी का सफल उपाय :– जब कु भ राजा ने मल्लिकुँवरी के कहे अनुसार सूचना करवा दी, तब छहों राजा मल्लिकुमारी का वरण करने की लालसा से गर्भगृहों में आ पहुँचे । प्रभात होने पर सबने मल्ली की प्रतिमा को देखा और समझ लिया कि यही कुमारी मल्ली है । सब उसी की ओर

अनिमेष दृष्टि से देखने लगे । तब मल्लीकुमारी वहाँ पहुँची और प्रतिमा के मस्तक के छिद्र को उघाड़ दिया । छिद्र को उघाड़ते ही उसमें से जो दुर्गंध निकली वह असह्य हो गई । सभी राजा घबरा उठे । सबने अपनी अपनी नाक दबाई और मुँह बिगाड़ लिया । विषयासक्त राजाओं को प्रतिबोधित करने का यही उपयुक्त अवसर था । मल्लीकुमारी ने नाक, मुँह बिगाड़ने का कारण पूछा । सभी का एक ही उत्तर था असह्य दुर्गंध ।

तब राजकुमारी ने राजाओं से कहा– देवानुप्रियों ! इस प्रतिमा में भोजन पानी का एक-एक पि ड़ ड़ालने का ऐसा अनिष्ट एव अमनोज्ञ परिणाम हुआ तो इस औदारिक शरीर का परिणाम कितना अनिष्ट और अमनोज्ञ होगा ? यह शरीर तो मल, मूत्र, रुधिर आदि की थैली है । इसके प्रत्येक द्वार से ग दे पदार्थ झरते रहते हक्त । सड़ना-गलना इसका स्वभाव है । इस पर से चमड़ी की चादर हटा दी जाय तो यह शरीर कितना असु दर एव विभत्स प्रतीत होगा । वह चीलों कौवों आदि का भक्ष्य बन जाएगा । तो मल-मूत्र की इस थैली पर आप क्यों मोहित हो रहे हक्त ?

इस प्रकार स बोधित करके मल्लीकुमारी ने पूर्वजन्मों का वृतान्त उन्हें कह सुनाया । किस प्रकार वे सब साथ दीक्षित हुए थे, किस प्रकार उसने कपटाचरण किया था; किस प्रकार वे सब देवपर्याय में उत्पन्न हुए थे, इत्यादि वर्णन कह सुनाया ।

राजाओं को जाति स्मरण ज्ञान एव बोध :– मल्ली द्वारा पूर्वभवों का वृता त सुनते ही छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । वे सभी स बुद्ध हो गये । तब गर्भगृहों के द्वार उन्मुक्त कर दिए गए । उस समय वातावरण में अनुराग के स्थान पर विराग छा गया । उसी समय राजकुमारी ने दीक्षा अ गीकार करने का स कल्प किया । तीर्थंकरों की पर परा के अनुसार वार्षिक दान देने के पश्चात् मल्लीकुमारी ने प्रव्रज्या अ गीकार कर ली । जिस दिन दीक्षा अ गीकार की उसी दिन उन्हें केवलज्ञान-दर्शन की प्राप्ति हो गई । तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने भी दीक्षा अ गीकार कर ली । अ त में सभी ने मुक्ति प्राप्त की । भगवती मल्ली तीर्थंकर ने भी चैत्र शुक्ला चतुर्थी के दिन निर्वाण प्राप्त किया ।

ज्ञातव्य :– **(१)** कु भ राजा और प्रभावती राणी ने श्रावक व्रत स्वीकार किए । **(२)** छह राजाओं ने स यम अ गीकार किया और चौदह पूर्वी होकर अ त में मोक्ष गये । **(३)** मल्लीनाथ तीर्थंकर के २८ गणधर थे । **(४)** वे

उन्नीसवें तीर्थंकर थे, २५ धनुष के ऊँचे थे । १०० वर्ष घर में रहे, ५५ हजार वर्ष की स पूर्ण उम्र थी । **(५)** पूर्व भव में महाविदेह क्षेत्र में महाबल के भव में ८४ लाख वर्ष तक स यम का पालन किया था । कुल उम्र वहाँ ८४ लाख पूर्व की थी ।

(६) वहाँ तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था । तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन के **२० बोल** इस प्रकार है– (१) अरिह त (२) सिद्ध (३) जिन सिद्धा त (४) गुरु (५) स्थविर (६) बहुश्रुत (७) तपस्वी इन सात की भक्ति बहुमान गुण कीर्तन करने से (८) बार बार ज्ञान में उपयोग करना (९) दर्शन शुद्धि (१०) विनय (११) भावयुक्त प्रतिक्रमण (१२) निरतिचार स यम व्रतों का पालन (१३) अप्रमत्त जीवन (१४) तपस्या (१५) त्याग नियम या दान (१६) अपूर्व ज्ञान ग्रहण (१७) समाधि भाव प्रसन्न भाव में रहना या दूसरों को शाता उपजाना; (१८) सेवा करना (१९) श्रुत भक्ति (२०) जिनशासन की प्रभावना करना ।

इनमें से एक या अनेक बोल के सेवन में उत्कृष्ट रसायन, आत्म परिणाम होने पर तीर्थंकर नामकर्म का ब ध होता है । इस ब ध के बाद जीव तीसरे भव में अवश्य तीर्थंकर बनता है एव मोक्ष प्राप्त करता है ।

प्रश्न–८ : इस अध्ययन में अन्य और क्या विशेष शिक्षा ज्ञातव्य है ?

उत्तर– (१) धर्म में और तप में भी सरलता गुण का होना नीता त आवश्यक है । अति होशियारी या कपट भाव तनिक भी क्षम्य नहीं है । विशाल तप साधना काल में अल्पतम माया से महाबल के जीव को मिथ्यात्व की प्राप्ति और स्त्रीत्व का ब ध हो गया था । तीर्थंकर बन जाने पर भी जिसका फल अवश्य भावी रहा । **(२)** मित्रों के साथ कभी भी अविश्वास धोखा नहीं करना चाहिए । यदि साथ में स यम लेने की वार्ता कर चुके हो तो भी समय आने पर नहीं मुकरना चाहिए । यथा– महाबल के ६ मित्र राजा होते हुए भी उसके साथ दीक्षित हुए एव आत्मकल्याण साधा । **(३)** मन एव इच्छा पर काबू नहीं हो तो व्यक्ति अपने प्राप्त पूर्ण सुखों में भी अस तुष्ट हो जाता है और अप्राप्त की लालसा में गोते खाता है । यथा– छहों राजा राज्य ऋद्धि राणियों के परिवार से स पन्न थे फिर भी मल्लिकुमारी का वर्णन सुनकर उनमें अनुरक्त हुए और युद्ध करने चले; यह अस तोष वृत्ति है । ज्ञानी होने का फल यह है कि अपने प्राप्त सामग्री में स तोष मानते हुए क्रमशः उसके त्याग भावना की वृद्धि करना चाहिए ।

(४) मोह का नशा यदि अधिक चढ़ा हो तो वह प्रेम और उपदेश से एक बार नहीं मिट सकता किन्तु एक बार मन के प्रतिकूल भय कर परिस्थिति आने पर और फिर कुशल उपदेष्टा का स योग मिले तो परिवर्तित हो सकता है । यथा– तेतलिपुत्र प्रधान का दृष्टा त आगे चौदहवें अध्ययन में है । इसी आशय से छहों राजा को एक साथ प्रतिबोध देने के लिये अर्थात् उनके महामोह नशे को शा त करने के लिये अवधिज्ञान से जानकर मल्लिकुमारी ने उचित उपाय निकाल लिया था तदनुसार ही जालगृह और अपने आकृति की पूतली बनाई और कुछ समय अपने भोजन का एक कवल जितना भाग उसमें ड़ाला । प्रस ग उपस्थित होने पर ढ़क्कन को उघाड़ कर दुस्सह दुर्गंध से आकुल व्याकुल बने हुए राजाओं को बोध और ज्ञान देकर साथ ही पूर्व भव बताकर विरक्त बनाया एव भोग से योग की तरफ अग्रसर किया ।

(५) मल्लिकुमारी ने झूठा कवल पुतली में नहीं ड़ाला किन्तु एक कवल जितना शुद्ध आहार ही पुतली में ड़ाला था । ब द होने से पूरा सूख नहीं पाने से उसमें दुर्गंध पैदा हुई थी किन्तु समुर्च्छिम मनुष्य या त्रस जीवों आदि की उत्पत्ति नहीं होवे ऐसे ज्ञान और विवेक से प्रवृत्ति की थी केवल दुर्गंध होने मात्र से ही उनका प्रयोजन था ।

विशाल भवन, जालगृह एव पुतली आदि के आर भजन्य निर्माण प्रवृत्ति के साथ आहार के दुर्गंध की प्रवृत्ति के आर भ का कोई स्वत त्र अधिक महत्त्व नहीं रह जाता है अर्थात् भवन निर्माण के हेतुभूत पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि के विशाल आर भ के सामने आहार के दुर्गन्धित होने का आर भ नगण्य समझना चाहिये । वह अपेक्षाकृत इतना अधिक महत्त्व देने जैसा नहीं है ।

(६) परीक्षा की घड़ियें जब आती है तब बहुत ग भीर और सहनशील बनना चाहिए । उस समय भ्रमित लोकनिंदा, उलाहना और कष्टों की उपेक्षा करना आवश्यक हो जाता है । यथा अरणक श्रावक ने जब धर्म परीक्षार्थ देव उपद्रव आया हुआ जान लिया तब उसने उक्त गुण को धारण कर निर्भय और दृढ़ मनोबल के साथ काम लिया । तभी मानव की शा ति और धैर्य के आगे दानव की विकराल शक्ति विफल हुई और देव नत मस्तक हो गया । (७) परिग्रह की मर्यादा वाला श्रावक अचानक प्राप्त स पत्ति अपने पास नहीं रखता है यथा– अरणक श्रावक ने देव से प्राप्त कु ड़ल की जोड़ी दोनों राजाओं को भेंट स्वरूप द दी । (८) स पन्न श्रावक अपने आसपास में रहने वाले सामान्य

परिस्थिति वाले जन समुदाय को व्यापार में अनेक प्रकार से सहयोग करे तो यह उनकी एक प्रकार की अनुक पा और सहवर्ती लोगों के साथ सहानुभूति का व्यवहार होता है । यह श्रावक का व्यवहारिक आदर्श जीवन है । ऐसे व्यवहार से धर्म और धर्मीजन प्रश सित होते हक्त जीवों के प्रति उपकार होता है । अपने कार्य में अन्य का भी काम हो जाता है । यह व्यवहारिक श्रावक जीवन की स्टेज है । व्यवहारिक जीवन से आगे बढ़कर निवृत साधना वाला श्रावक फिर स्वय भी इन प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है । उसका लक्ष्य आत्मसाधना का प्रमुख हो जाता है । उसके लिये सामाजिक और व्यवहारिक जिम्मेदारियाँ तथा कर्तव्य गौण हो जाते हक्त । यथा– उपासकदशा सूत्र वर्णित आन द आदि दसों श्रावकों का अ तिम छः वर्ष का साधनामय जीवन । **सार यह** है कि अरणक श्रावक के जीवन से धर्म में दृढ़ता, सहवर्तियों को सहयोग एव परिग्रह की सीमा में सतर्क रहना, मन को लोभान्वित नहीं करना इत्यादि शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिये ।

(९) अपनी कला में कोई कितना भी निपुण हो किन्तु उसके प्रवृत्ति में विवेक बुद्धि न हो तो उसे लाभ और यश की जगह दुःख और तिरस्कार की प्राप्ति होती है, यथा–मिथिलानगरी का दक्ष चित्रकार । उसके पास श्रेष्ठ कला थी किन्तु विवेक बुद्धि के अभाव में उसे द ड़ित होना पड़ा । अतः हर ज्ञान-कला के साथ विवेक सीखना भी आवश्यक होता है ।

मुनियों को भी सामुहिक जीवन में विवेक की बहुत आवश्यकता है किस परिस्थिति में कितने विवेक से उत्सर्ग मार्ग पर चलना चाहिए और किस तुफानी परिस्थिति में कितने विवेक के साथ अपवाद मार्ग पर चलना आवश्यक हो जाता है, यह विवेक ज्ञान अवश्य सीखना एव सीखाना चाहिए । हर परिस्थिति में एका त उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना यह गच्छमुक्त या विशिष्ट साधनारत साधकों के लिए उचित है किन्तु गच्छगत सामुहिक जीवन वाले स्थविर कल्पी साधुओं का सामाजिक और व्यवहारिक जीवन होता हक्त । उन्हें परिस्थितिक उचित विवेक के साथ ही व्यवहार करना श्रेष्ठ एव शोभाजनक होता है ।

जिस प्रकार श्रावक की गृहस्थ जीवन युक्त साधना और निवृत्ति साधना यों दो विभाग है उसी प्रकार मुनि जीवन के भी गच्छगत और गच्छमुक्त या सामान्य साधक और विशिष्ट साधक अथवा स्थविरकल्पी और जिनकल्पी ऐसे साधना के दो विभाग है । एक में व्यवहार और विवेक

आवश्यक है तो दूसरे विभाग में व्यवहार और विवेक गौण हो जाता है क्योंकि वे निवृत्त साधक कहे जाते हक्त ।

(१०) शुचि मूलक धर्म में पानी के जीवों का आर भ करके उसे धर्म और मुक्ति मार्ग माना जाता है । यह भ्रामक एव अशुद्ध सिद्धा त है । इसीलिए ऐसे सिद्धा त को खून से खून की शुद्धि करने की वृत्ति की उपमा दी गई है ।

अतः प्रत्येक धर्मार्थी मुमुक्षु प्राणी को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि छः काया के जीवों की किसी भी प्रकार से किसी भी उद्देश्य से की गई हिंसा या पाप प्रवृत्ति कभी भी मोक्षदायक शुद्ध पवित्र धर्म का बाना नहीं ले सकती है । अतः अपनी आत्मा में यह घोष ग ुजायमान रखना चाहिए कि–

सब जीव रक्षा वही परीक्षा, धर्म उसको जानिए ।
जहाँ होत हिंसा नहीं है स शय, अधर्म वही पहिचानिए ॥

इसी कारण से शुचि धर्मी चोक्खा परिव्राजिका मल्लिकुमारी से पराजित और निरुत्तर हो गई थी । अफसोस यह है कि वीतराग धर्म में भी हिंसा धर्म(मूर्ति पूजा) प्रकट हो गया है यह खून से खून की शुद्धि करना ही है । **(११)** यदि किसी के जीवन को सुधारने की भावना हो तो उसके प्रति अपने हृदय में कि चित भी तिरस्कार की भावना या घृणा भावना नहीं होनी चाहिए एव परिपूर्ण आत्मीयता होनी चाहिए । साथ ही अपने सामर्थ्य का ज्ञान भी होना चाहिए । उसके बाद विवेक पूर्वक किया गया प्रयत्न अस भव से कार्य को भी स भव और सफल बना सकता है । यथा– मल्लिकुमारी का विवाह की इच्छा वाले छः राजाओं को एक साथ प्रतिबोध देकर सन्मार्ग में लगा देना । इस प्रकार आगम अध्ययन के साथ साथ उस पर चारित्र निर्माण का तुलनात्मक चि तन किया जाय; जीवन में उतारा जाय, तो विशेष लाभ हासिल किया जा सकता है । **(१२)** मल्लिनाथ भगवान की निर्माण तिथी का वर्णन करते हुए सूत्र में कहा गया है कि ग्रीष्म ऋतु का पहला महिना, दूसरा पक्ष, चैत्र सुदी चतुर्थी के दिन ५०० साधु और ५०० साध्वियों के साथ भगवान मोक्ष पधारे । यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि महीने का प्रथम पक्ष वदी कहा दूसरा पक्ष सुदी कहा । इससे यह सिद्ध होता है कि जैन सिद्धा त के अनुसार अमा त महिने नहीं होते किन्तु महीना पूर्णिमा त होता है । ऋतु भी पूर्णिमा त होती है । अतः वर्तमान प्रचलित अमा त मान्यता जैन आगम सम्मत नहीं है, यह सुस्पष्ट है ।

अध्ययन–९ : माक दीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में दृष्टा त रूप कथानक किस प्रकार है ?

उत्तर– च पानगरी में माक दीय सार्थवाह के जिनपाल और जिनरक्षित दो पुत्र थे । दोनों ग्यारह बार व्यापारार्थ लवण समुद्र की सफल यात्रा कर चुके थे । अब बारहवीं बार भी दोनों ने आपस में विचार-निर्णय करके पिता से निवेदन किया । पिता ने मना कर दिया कि अपने पास अखूट धन है । समुद्र यात्रा खतरे से युक्त होती है । यों भी बारहवीं यात्रा तो उपसर्ग वाली ही होती है । फिर भी माता-पिता की इच्छा बिना अपनी जिद्द से अनुमति लेकर चले ।

कुछ दूर जाने पर समुद्र में आ धी-तूफान गाज-बीज प्रार भ हुए । नावा ऊँची नीची उछलने लगी । आखिर एक समुद्रगत पहाड़ी से टकरा कर छिन्न-भिन्न हो गई । दोनों भाई को स योगवश लकड़ी का पाटिया मिल गया उसके सहारे दोनों समुद्र के किनारे पहुँच गये । वह प्रदेश रत्नद्वीप था । वहाँ रत्ना देवी का प्रासाद था । उसने अवधिज्ञान से दोनों भाईयों को देखा और तुर त न गी तलवार हाथ में लेकर आकाशमार्ग से वहाँ पहुँची और बोली कि तुम यदि जीवित रहना चाहते हो तो दोनों मेरे साथ विपुल भोग भोगते हुए आन दपूर्वक रहो । अगर मेरी बात नहीं मानोगे तो इस तलवार से तुम्हारा मस्तक काट कर फेंक दिया जायेगा ।

दोनों भाईओं को उसका प्रस्ताव स्वीकारना पड़ा । एक बार शक्रेन्द्र की आज्ञा से लवणाधिपति **सुस्थित देव** ने रत्नादेवी को बुलाकर लवण समुद्र की सफाई का कार्य सोंप दिया । देवी दोनों भाई को सूचना देकर गई कि तुम तीन दिशाओं के उपवन में कहीं भी विचरण करना कि तु चौथी दक्षिण दिशा में जाने में विषधर सर्प का भय बता दिया ।

दोनों भाई तीनों दिशाओं में घूमकर समय व्यतीत करने लगे । निषिद्ध दिशा में भी देखने जानने की जिज्ञासा हुई । वहाँ जाने पर एक व्यक्ति शूली पर लगाया हुआ जीवित था । चौतरफ प चेन्द्रिय कलेवर सड़ रहे थे । दुर्गंध आ रही थी । दोनों भाई हिंमत करके शूली के पास जाकर उस व्यक्ति से पूछताछ की । छोटी सी गलती में उस व्यक्ति को उसी देवी ने यह सजा दी थी । दोनों भाई अपने भविष्य की कल्पना करके धबराये । उपाय

पूछने पर सूली पर रहे व्यक्ति ने बताया कि पूर्व दिशा के वनख ड़ में शैलक यक्ष रहता है । वह अष्टमी आदि तिथियों के दिन जोर से घोषणा करता है कि– किसे तारूँ, किसे उबारूँ ? यथासमय दोनों भाई वहाँ पहुँचे । यक्ष की आवाज सुनी और अपने को तारने पालने की प्रार्थना करी । शैलक यक्ष ने स्वीकार करते हुए एक शर्त रखी कि मैं अश्वरूप करके तुम्हें पीठ पर ले जाउँगा । किन्तु देवी अत्यन्त पापिणी है, वह आकर तुम्हें ललचायेगी । तब तुम कोई भी उसके प्रलोभन में आ गये तो मक्त ज्ञान से जानकर तत्काल तुम्हें मेरी पीठ पर से नीचे खिसका दूँगा, समुद्र में गिरा दूँगा ।

शर्त म जूर करके दोनों पीठ पर बैठ गये । यक्ष च पानगरी तरफ जाने लगा । पीछे से देवी ने दोनों भाई को भवन में नहीं पाया तो ज्ञान में उपयोग लगाकर शैलक यक्ष के साथ जाते देखा । वैक्रिय शक्ति से वह अतिशीघ्र उनके पास पहुँच गई। विलाप, हास्य, श्रृगार, करुण वाणी आदि भाँति-भाँति से उनको रिझाने लगी । जिनपाल स्थिर चित्त रहा । जिनरक्षित का मन ड़िग गया । यक्ष ने उसे पीठ पर से सरका दिया । निर्दय देवी ने उसके तलवार से टुकड़े टुकड़े करके फेंक दिये ।

जिनपाल को यक्ष ने उसके घर पहुँचा दिया। वह परिवार से मिला। माता-पिता की शिक्षा नहीं मानने का पश्चात्ताप करने लगा । बहुत समय बाद उसने भगवान महावीर स्वामी के पास स यम ग्रहण किया। आराधना कर प्रथम देवलोक में गया ।

प्रश्न–२ : इस दृष्टा त से शास्त्रकार का उद्देश्य किस प्रकार की शिक्षा देने का है ?

उत्तर– ब्रह्मचर्य की नव वाड़ में कहा गया है कि "ब्रह्मचारी साधक पूर्व के भोगे हुए भोगों को याद करे नहीं, उसमें पुनः ललचावे नहीं । इसके लिये जिनरक्ख और रयणादेवी का दृष्टा त ।" वह कथन ज्ञातासूत्र के इसी दृष्टा त का सूचक है । **(१)** जो निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथ आचार्य-उपाध्याय के समीप प्रव्रजित होकर, फिर से मनुष्य स ब धी कामभोगों का आश्रय लेता है, अभिलाषा करता है, या दृष्ट अथवा अदृष्ट शब्दादि के भोग की इच्छा करता है, वह मनुष्य इसी भव में अनेक साधुओं, अनेक साध्वियों, अनेक श्रावकों और अनेक श्राविकाओं द्वारा निंदनीय होता है; इस भव में अनेक कष्टों को प्राप्त करता है और अन त स सार में परिभ्रमण करता है । उनकी दशा जिनरक्षित जैसी होती है ।

(२) जो निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी स यम लेने के बाद मन एव इन्द्रियों को पूर्ण सावधानी के साथ केन्द्रित रखते हक्त, जिनाज्ञा में रखते हक्त एव अ तिम श्वास तक दृढ़ता पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा में सत्य रत रहते हक्त उनका स यम जीवन एव मानव जीवन धन्य बन जाता है। भवपर पराजन्य विभिन्न दुःखों से वे छूट जाते हक्त जिस प्रकार जिनपाल रत्नादेवी के अनुकूल प्रतिकूल सभी उपसर्गों में पूर्ण उपेक्षा रखते हुए अपने लक्ष्य में निश्चल रहा । अपने मन को उस रत्ना देवी से पूर्ण उपेक्षित रखा तो सुरक्षित जीवन के साथ घर पहुँच गया एव अ त में भगवान महावीर स्वामी के समीप स यम ग्रहण कर मनुष्य जन्म सार्थक किया । एक भव प्रथम देवलोक का पूर्ण कर महाविदेह से मोक्ष जायेगा ।

(३) देवी ने जिनपालित और जिनरक्षित को पहले कठोर वचनों से और फिर कोमल, लुभावने वचनों से अपने अनुकूल करने का यत्न किया । कठोर वचन प्रतिकूल उपसर्ग के और कोमल वचन अनुकूल उपसर्ग के द्योतक है । कथानक से स्पष्ट है कि मनुष्य प्रतिकूल उपसर्गों को तो प्रायः सरलता से सहन कर लेता है किन्तु अनुकूल उपसर्गों को सहन करना अत्यन्त दुष्कर है । जिनपालित की भाँति दृढ़मनस्क साधक दोनों प्रकार के उपसर्गों के उपस्थित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अचल-अटल रहते हक्त । किन्तु अल्पसत्व साधक अनुकूल उपसर्गों के आने पर जिनरक्षित की तरह भ्रष्ट हो जाता है । अतएव साधक को अनुकूल उपसर्गों को दुस्सह समझ कर उनसे विशेष सतर्क रहना चाहिए ।

(४) आप्तजनों ने स क्षिप्त सूत्र में साधना का मूलभूत रहस्य प्रकट करते हुए महत्त्वपूर्ण सूचना दी है– **एगे जिए जिया प च** अर्थात् एक मन पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो पाँचों इन्द्रियों पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है । किन्तु मन पर विजय प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं । मन बड़ा ही साहसिक, च चल और हठीला होता है । उसे जिस और जाने से रोकने का प्रयास किया जाता है, उसी और वह हठात् जाता है । ऐसी स्थिति में उसे वशीभूत करना बहुत कठिन है । तीव्रतर स कल्प हो, उस स कल्प को बार बार दोहराते रहा जाए, निर तर सावधान रहा जाए, अभ्यास और वैराग्यवृत्ति का आसेवन किया जाए, धर्मशिक्षा को सदैव जागृत रखा जाय तो उसे वश में किया जा सकता है । शास्त्रों में साधक के लिये अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का, क्रियाकलापों का जो वर्णन किया गया है, उनका प्रधान उद्देश्य मन को वशीभूत करना ही है ।

(५) इन्द्रियाँ मन की दासी है, जब मन पर आत्मा का अधिकार हो जाता है तो इन्द्रियाँ अनायास ही काबू में आ जाती है ।

अध्ययन-१० : च द्र

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में च द्र के दृष्टा त से क्या समझाया है ?

उत्तर- प्रस्तुत अध्ययन में कोई कथा प्रस ग वर्णित नहीं है, केवल उदाहरण से जीवों के विकास और ह्रास का अथवा उत्थान और पतन का बोध कराया गया है । एक बार गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया- "भ ते ! जीव किस कारण से वृद्धि अथवा हानि को प्राप्त होते है ?"

भगवान ने सामान्यजनों को भी हृदय गम हो सके, ऐसी पद्धति अपना कर **चन्द्र** का उदाहरण देकर इस प्रश्न का उत्तर दिया और कहा कि- गौतम ! जैसे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा, पूर्णिमा के च द्रमा की अपेक्षा कान्ति, दीप्ति, प्रभा और म ड़ल की दृष्टि से हीन होता है, फिर द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों में हीनतर-हीनतम ही होता चला जाता है । पक्ष के अ त में अमावस्या के दिन पूर्ण रूप से विलीन हो जाता है ।

इसी प्रकार जो अणगार आचार्य या उपाध्याय के निकट गृहत्याग कर अकि चन अणगार बनता है, वह यदि क्षमा, मार्दव, आर्जव, ब्रह्मचर्य आदि मुनिधर्मों से हीन होता है और फिर हीनतर-हीनतम ही होता चला जाता है, यों क्रमशः पतन की ओर ही बढ़ता जाता है तब अ त में वह अमावस्या के च द्र समान पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है अर्थात् स यम रहित बन जाता है ।

विकास अथवा वृद्धि का कारण ठीक इससे विपरीत होता है । जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का च द्र, अमावस्या के च द्र की अपेक्षा वर्ण, कान्ति प्रभा, सोम्यता, स्निग्धता आदि की दृष्टि से अधिक होता है और फिर द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों में अनुक्रम से बढ़ता जाता है । पूर्णिमा के दिन अपनी समग्र कलाओं से उद्भासित हो जाता है, म ड़ल से भी परिपूर्णता प्राप्त कर लेता है ।

इसी प्रकार जो साधु प्रव्रज्या अ गीकार करके क्षमा, शा ति, स तोष, सरलता, लघुता, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का क्रम से विकास करता जाता है, वह अ त में पूर्णिमा के च द्रमा की भाँति स पूर्ण प्रकाशमय बन जाता है, उसकी अन त आत्मज्योति, ज्ञानज्योति प्रकट हो जाती है ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन के फलितार्थ रूप और भी शिक्षा तत्त्व क्या स्पष्ट होते है ?

उत्तर- (१) मानवजीवन का उत्थान-पतन गुणों और अवगुणों के कारण होता है । प्रार भ में कोई अवगुण अत्य त अल्पमात्रा में उत्पन्न होता है । मनुष्य उस और लक्ष्य नहीं देता या उसकी उपेक्षा करता है तो वह अवगुण बढ़ता-बढ़ता अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है और जीवन ज्योति को नष्ट करके उसके भविष्य को घोर अ धकार से परिपूर्ण बना देता है । इसके विपरीत, यदि सद्गुणों की धीरे-धीरे निर तर वृद्धि करने का मनुष्य प्रयास करता है तो अ त में वह गुणों में पूर्णता प्राप्त कर लेता है । अतएव किसी भी अवगुण को उसके उत्पन्न होते ही, वृद्धि पाने से पूर्व ही कुचल देना चाहिए और सद्गुणों के विकास के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए । (२) इस अध्ययन से एक बात और लक्षित होती है । दीक्षा अ गीकार करते ही मुनि शुक्लपक्ष की द्वितीया का च द्रमा बनता है । पूर्णिमा का च द्र बनने के लिये उसे निर तर साधुगुणों का विकास करते रहना चाहिये । (३) आध्यात्मिक गुणों के विकास में निमित्त कारण अ तर ग बहिर ग आदि अनेक प्रकार के होते हक्त गुणों के विकास के लिये सद्गुरु का समागम बहिर ग निमित्त कारण है तो चारित्रावरण कर्म का क्षयोपशम एव अप्रमादवृत्ति अ तर ग निमित्त कारण है । दोनों प्रकार के निमित्त कारणों के स योग में आत्मगुणों के विकास में पूर्ण सफलता मिलती है ।

अध्ययन-११ : दाव द्रव वृक्ष

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में दावद्रव वृक्षों के दृष्टा त से क्या विश्लेषण किया गया है?

उत्तर- समुद्र के किनारे सु दर मनोहर दावद्रव नामक वृक्ष होते हक्त(१) वे जब द्वीप की वायु चलती है तो बहुत से खिले रहते हक्त, थोड़े मुरझाते हक्त । (२) जब समुद्र की हवा चलती है तो बहुत से मुरझा जाते है थोड़े खिले रहते हक्त। (३) जब कोई भी वायु नहीं चलती है तो सभी मुरझा जाते हक्त । (४) जब दोनों ओर की वायु चलती है तब सभी खिल जाते हक्त, सुशोभित हो जाते हक्त जिस प्रकार उन दावद्रव वृक्षों के चार विभाग बनते हक्तइसी प्रकार सहनशीलता की अपेक्षा साधुओं के भी चार प्रकार बनते हक्त-

(१) स्वतीर्थिक साधु-साध्वी आदि के प्रतिकूल वचन आदि को सम्यक् सहन करने वाले किन्तु अन्यतीर्थिक या उनके गृहस्थों के प्रतिकूल वचनों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करने वाले। (२) अन्यतीर्थिक के दुर्वचनों को सम्यक् सहन करने वाले किन्तु स्वतीर्थिकों के दुर्वचन सहन नहीं कर सकने वाले। (३) किसी के भी दुर्वचनों को सहन नहीं करने वाले। (४) सभी के दुर्वचनों को सम्यक् सहन करने वाले।

१. प्रथम विभाग वाले देश विराधक है।
२. द्वितीय विभाग वाले देश आराधक है।
३. तृतीय विभाग वाले सर्व विराधक है।
४. चतुर्थ विभाग वाले सर्व आराधक है।

१. सर्व विराधक सबसे निम्न दर्जे के श्रमण है।
२. इससे देश आराधक श्रेष्ठ है।
३. इससे देश विराधक श्रेष्ठ है।
४. सर्व आराधक सबसे श्रेष्ठ है।

दृष्टा त देने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि साधना के लिए उद्यत सभी साधकों को चौथे विभाग वाले दावद्रवों के समान बनकर सर्व आराधक होना चाहिये।

प्रश्न-२ : वृक्षगत उपमा को उपमित कर साधक को क्या प्रेरणा शिक्षा दी गई है?

उत्तर- (१) इस अध्ययन में कथित दावद्रव वृक्षों के समान साधु है। द्वीप की वायु के समान स्वपक्षी साधु आदि के वचन, समुद्री वायु के समान अन्यतीर्थिकों के वचन और पुष्प-फल आदि के समान मोक्षमार्ग की आराधना समझना चाहिये। (२) जैसे द्वीप की वायु के स सर्ग से वृक्षों की समृद्धि बताई, उसी प्रकार साधर्मी के दुर्वचन सहने से मोक्षमार्ग की आराधना और अन्यतीर्थिक के दुर्वचन न सहने से विराधना समझनी चाहिए। अन्यतीर्थिकों के दुर्वचन न सहन करने से मोक्षमार्ग की अल्प विराधना होती है। (३) जिसप्रकार समुद्री वायु से पुष्प आदि की थोड़ी समृद्धि और बहुत असमृद्धि बताई, उसी प्रकार परतीर्थिकों के दुर्वचन सहन करने से और स्वपक्ष के सहन न करने से थोड़ी आराधना और बहुत विराधना होती है। (४) दोनों के दुर्वचन सहन न करके क्रोध आदि करने से सर्वथा विराधना और सहन करने से सर्वथा आराधना होती है। अतएव साधु को सभी दुर्वचन क्षमाभाव से सहन करने चाहिए।

(५) स तजनों को मुक्तिपथ में अग्रसर होने और सफलता प्राप्त करने के लिए सहनशील होना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में विशेष रूप से दुर्वचनों को सहन करने की प्रेरणा की गई है और निरुपण किया है कि जो साधु दुर्वचन सहन करता है वही मुक्तिमार्ग का या भगवान की आज्ञा का आराधक हो सकता है। (६) दुर्वचन-सहन को इतना जो महत्व दिया गया है, वह निर्हेतुक नहीं है। कोई निंदा करे, विद्यमान या अविद्यमान दोषों को दुष्ट भाव से प्रकट करे, जाति-कुल आदि को हीन बतलाकर अपमानित करे अथवा अन्य प्रकार से कटुक, अयोग्य या असभ्य वचनों का प्रयोग करे तो साधु का कर्तव्य यह है कि ऐसे वचनों को सुनकर अपने चित्त में तनिक भी क्षोभ उत्पन्न न होने दे, दुर्वचन कहने वाले के प्रति लेशमात्र भी द्वेष न हो प्रत्युत करुणभाव उत्पन्न हो। तात्पर्य यह है कि दुर्वचन सुनकर भी जिसका चित्त कलुषित नहीं होता, वही वास्तव में सहनशील कहलाता है और वही आराधक होता है। इस प्रकार भलीभाँति दुर्वचन सहन करके आराधक बनने के लिए क्षमा, सहिष्णुता, विवेक, उदारता आदि अनेक गुणों की भी आवश्यकता होती है। अर्थात् एक गुण को पूर्ण प्राप्त करने में अनेक गुण उसके साथ स्वतः सिद्ध हो जाते हक्त। इसीलिये दुर्वचन सहन को इतना महत्त्व देकर उसके लिये स्वत त्र एक अध्ययन की स योजना की गई है।

अध्ययन-१२ : उदक ज्ञात

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का दृष्टा त-कथानक वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस में पानी के शुभ-अशुभ पुद्गलों के परिवर्तित होने की अवस्था का दृष्टा त, प्रधान ने राजा को सन्मार्ग पर लगाने के लिये, क्रियान्वित विधि से प्रस्तुत किया है। राजा और प्रधान का घटना क्रम इस प्रकार है-

च पा नगरी में जितशत्रु राजा का प्रधान **सुबुद्धि** था। एक समय राजा, प्रधान और अनेक प्रतिष्ठित जन एक स्थान पर भोजन कर रहे थे। भोजन अत्य त स्वादिष्ट होने की राजा ने खूब प्रश सा की। अन्य लोगों ने भी उसी स्वर में भोजन को सराहा। सुबुद्धि प्रधान जिनमत का ज्ञाता एव श्रमणोपासक भी था। वह मौन रहा। राजा ने आग्रह दृष्टि से अमात्य तरफ देखकर भोजन की प्रश सा की। प्रधान को बोलना जरूरी हो गया। वह बोला कि- राजन्! मुझे इसमें कुछ भी विस्मय नहीं है। पुद्गलों के परिणमन के अनेक

प्रकार होते हक्त । शुभ प्रतीत होने वाले पुद्गल निमित्त पाकर अशुभ रूप में और अशुभ पुद्गल शुभ रूप में परिणत होते रहते हक्त । अतः इस प्रकार के पुद्गल परिणमन में मुझे कुछ आश्चर्यकारक नहीं लगता । राजा को उसका कथन भाया तो नहीं कि तु वह चुप रहा ।

पुनः कभी राजा, प्रधान आदि नगर के बाहर अशुचि युक्त दुर्गंधित जल वाली खाई के पास से निकल रहे थे । सभी ने वस्त्र से नाक, मुँह ढ़के, दुर्गंध से घबराने लगे । राजा ने पानी की अमनोज्ञता का कथन किया । अन्य लोगों ने भी दुहराया कि तु प्रधान तटस्थ रहा । राजा के द्वारा पूछने के जैसा हाव-भाव करने पर प्रधान ने वही पुद्गल का उत्तर दुहराया । इस बार राजा से न रहा गया । उसने कहा– सुबुद्धि ! तुम किसी दुराग्रह के शिकार बन रहे हो । तुम दूसरों को ही नहीं खुद को भी भ्रम में ड़ाल रहे हो । सुबुद्धि ने सुनकर मौन रखी और मन में विचार किया कि राजा को किसी उपाय से सन्मार्ग पर लाना चाहिये । इस प्रकार विचार करके उसने उसी खाई का पानी म गवाया और विशिष्ट विधि से ४९ दिनों में उसे अत्य त शुद्ध और स्वादिष्ट बनाया । यह स्वादिष्ट पानी जब राजा के यहाँ भेजा गया और उसने पीया तो उस पर वह मुग्ध हो गया । पानी वाले सेवक से पूछने पर उसने कहा– यह पानी अमात्य जी के यहाँ से आया है । अमात्य ने निवेदन किया– स्वामिन् ! यह वही खाई का पानी है, जो आपको अत्य त अमनोज्ञ प्रतीत हुआ था ।

राजा ने स्वय प्रयोग करके देखा । सुबुद्धि का कथन सत्य सिद्ध हुआ । तब राजा ने सुबुद्धि से पूछा– सुबुद्धि ! तुम्हारी बात वास्तव में सत्य है पर यह तो बताओ कि यह सत्य, तथ्य यथार्थ तत्त्व तुमने कैसे जाना ? तुम्हें किसने बतलाया ? सुबुद्धि ने उत्तर दिया– स्वामिन् ! इस सत्य का परिज्ञान मुझे जिन भगवान के वचनों से हुआ है । वीतराग वाणी से ही मैं इस सत्य तत्त्व को उपलब्ध कर सका हूँ। राजा ने जिनवाणी श्रवण करने की अभिलाषा प्रकट की । सुबुद्धि ने उसे चातुर्याम धर्म का स्वरूप समझाया । राजा भी श्रमणोपासक बन गया ।

एक बार स्थविर मुनियों का च पा में पदार्पण हुआ । धर्मोपदेश श्रवण कर सुबुद्धि अमात्य ने प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से अनुमति मा गी । राजा ने कुछ समय रुक जाने के लिये और फिर साथ ही दीक्षा अ गीकार करने के लिये कहा । सुबुद्धि ने उसके कथन को मान लिया । बारह वर्ष बाद दोनों

स यम अ गीकार करके अ त में जन्म, जरा, मरण की व्यथाओं से सदा-सदा के लिये मुक्त हो गये ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन के दृष्टा त से क्या-क्या तात्पर्य प्राप्त होते हक्त?

उत्तर– (१) प्रस्तुत अध्ययन में कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष किसी भी वस्तु का केवल बाह्य दृष्टि से विचार नहीं करता, किन्तु आ तरिक दृष्टि से भी अवलोकन करता है । उसकी दृष्टि तत्त्वस्पर्शी होती है । तत्त्वस्पर्शी दृष्टि से वस्तु का निरीक्षण करने के कारण उसकी आत्मा में रागद्वेष के आविर्भाव की स भावना प्रायः नहीं रहती । इससे विपरीत बहिरात्मा मिथ्या दृष्टि जीव वस्तु के बाह्यरूप का ही विचार करता है । वह उसकी गहराई में नहीं उतरता है, इस कारण पदार्थों में इष्ट अनिष्ट, मनोज्ञ अमनोज्ञ आदि विकल्प करता है और अपने ही इन मानसिक विकल्पों द्वारा रागद्वेष के वशीभूत होकर कर्मब ध का भागी होता है। इस उपदेश को यहाँ अत्य त सरल कथानक की शैली में प्रकट किया गया है ।

(२) सुबुद्धि प्रधान सम्यग्दृष्टि, तत्त्व का ज्ञाता और श्रावक था, अतः सामान्य जनों की दृष्टि से उसकी दृष्टि भिन्न थी । सम्यग्दृष्टि के योग्य निर्भीकता भी उसमें थी । सम्यग्दृष्टि आत्मा किसी वस्तु के उपभोग से न तो चकित (विस्मित)होता है और न पीड़ा दुःख या द्वेष का अनुभव करता है । वह यथार्थ वस्तु स्वरूप को जान कर अपने स्वभाव में स्थिर रहता है । सम्यग्दृष्टि जीव की यह व्यवहारिक कसौटी है । जो उसका आदर्श गुण है ।

(३) श्रावकपन किसी कुल में जन्म लेने से ही नहीं आ जाता है । यह जातिगत विशेषता भी नहीं है । प्रस्तुत सूत्र स्पष्ट निर्देश करता है कि श्रावक होने के लिये सर्वप्रथम वीतराग प्ररूपित तत्वस्वरूप पर श्रद्धा होनी चाहिए।

(४) मनुष्य जब श्रावकपद को अ गीकार करता है, श्रावकवृत्ति स्वीकार कर लेता है, तब उसके आ तरिक जीवन में पूरी तरह परिवर्तन होने पर बाह्य व्यवहार में भी स्वतः परिवर्तन आ जाता है । उसका रहन-सहन, खान-पान आदि समस्त व्यवहार बदल जाते हक्त । श्रावक मानो उसी शरीर में रहता हुआ नूतन जीवन प्राप्त कर लेता है । उसे समग्र जगत वास्तविक स्वरूप में दृष्टिगोचर होने लगता है । उसकी प्रवृत्ति भी तदनुकूल हो जाती है । यह इस अध्ययन के सुबुद्धि म त्री के जीवन से ज्ञात होता है ।

(५) इस सूत्र से राजा और उसके म त्री के बीच किस प्रकार का स ब ध प्राचीन काल में होता था अथवा होना चाहिए, यह भी विदित होता है ।

अध्ययन-१३ : न द मणियार

प्रश्न-१ : इस अध्ययन के कथानक में क्या कहा गया है ?

उत्तर- व्यक्ति को धर्म प्राप्त कर लेने के बाद भी स त-समागम और जिनवाणी का ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये। स त-समागम के बिना अल्पज्ञानी साधक कभी कहीं भी, किन्हीं भी विचारों में भटक सकते हक्त और अपनी मौलिकता खो बैठते हक्त। इस तथ्य की पुष्टी हेतु यहाँ न द मणियार श्रावक की जीवन घटना दर्शाई गई है ।

राजगृही नगरी में न दमणियार भगवान महावीर स्वामी का व्रतधारी श्रावक था। कालान्तर से उसकी अन्य लोगो से स गति विचारणा होने के कारण रुचि में परिवर्तन होने लगा। वह स त-समागम से भी व चित होने लगा। एक बार गर्मी के समय उसने पौषधशाला में अष्टमभक्त पौषध युक्त तपश्चर्या की। भूख-प्यास से वह पीड़ा पाने लगा। पौषध मर्यादा के अयोग्य बावड़ी-बगीचा आदि बनवाने की भावना उत्पन्न हुई ।

दूसरे दिन पौषध समाप्त करके वह राजा के पास पहुँचा। राजा की अनुमति प्राप्त कर उसने एक सुन्दर बावड़ी बनवाई, बगीचे लगवाए और चित्रशाला, भोजनशाला, चिकित्साशाला तथा अल कारशाला का निर्माण करवाया। बहुस ख्यक जन इनका उपयोग करने लगे और न द मणियार की प्रश सा करने लगे। अपनी प्रश सा एव कीर्ति सुनकर न द बहुत हर्षित होने लगा। बावड़ी के प्रति उसके हृदय में गहरी आसक्ति हो गई ।

एक बार न द के शरीर में एक साथ सोलह रोग उत्पन्न हो गए। उसने एक भी रोग मिटा देने पर चिकित्सकों को यथेष्ट पुरस्कार देने की घोषणा करवाई। अनेकानेक चिकित्सक आए, भाँति-भाँति की चिकित्सा पद्धतियों का उन्होंने प्रयोग किया, मगर कोई भी सफल नहीं हो सका ।

अ त में न द मणियार बावड़ी में आसक्ति के कारण आर्तध्यान से ग्रस्त होकर उसी बावड़ी में मेंड़क की योनि में उत्पन्न हुआ। वहाँ लोगों के मुख से बार बार न द मणियार की प्रश सा सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तब उसने अपने पूर्वभव के मिथ्यात्व के लिये पश्चात्ताप करके आत्मसाक्षी से पुनः श्रावक के व्रत अ गीकार किए ।

एक बार पुनः भगवान महावीर का राजगृह में समवसरण हुआ ।

उसे भी भगवान के आगमन का वृत्तात विदित हुआ। भक्तिभाव से प्रेरित होकर वह भगवान की उपासना के लिये रवाना हुआ। पर तु रास्ते में ही राजा श्रेणिक की सेना के एक घोड़े के पाँव के नीचे आकर कुचल गया। जीवन का अ त सन्निकट देखकर उसने अ तिम समय की विशिष्ट आराधना की और मृत्यु के पश्चात् देवपर्याय में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही अवधि ज्ञान से जानकर वह भगवान के दर्शन करने आया ।

देवगति का आयुष्य पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यभव प्राप्त कर, चारित्र अ गीकार करके मुक्ति प्राप्त करेगा ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन में मुख्य शिक्षा एव ज्ञातव्य क्या निहित है ?

उत्तर- **(१)** इस अध्ययन में निरूपित उदाहरण से पाठकों को जो बोध दिया गया है, उसमें दो बातें प्रधान हक्त १. सदगुरु के समागम से आत्मगुणों की वृद्धि होती है। अतः सद्गुरु और सदज्ञान का समागम करते रहना चाहिये। २. आसक्ति अधःपतन का कारण है, अतः सदा विरक्त भाव को जीवन के प्रत्येक क्षण में उपस्थित रखना चाहिये। **(२)** गृद्धि, आसक्ति, मोह या राग, इसे किसी भी शब्द से कहा जाय, वह आत्मा को मलीन बनाने का एव आत्मा के अधःपतन का एक प्रधान कारण है। न द मणियार ने पुष्करिणी बनवाई, यश-कीर्ति सुनकर हर्षित होने लगा, अ तिम समय में भी वह न द मणियार पुष्करिणी में आसक्त रहा। इसी आसक्ति भाव ने उसे ऊपर चड़ने के बदले नीचे गिरा दिया। वह उसी पुष्करिणी में मेंड़क पर्याय में उत्पन्न हुआ। **(३)** इस अध्ययन से तिर्यंच भव में भी श्रावक व्रत स्वय धारण करने एव आजीवन स थारा भी स्वय धारण करने का आदर्श उपस्थित किया गया है। **(४)** श्रावक के व्रतों में पापों का स्थूल त्याग होता है और उसके स थारे में पापों का सर्वथा त्याग होता है। फिर भी स थारे में वह साधु नहीं कहा जाता, किन्तु श्रावक ही कहा जाता है। बाह्य विधि, वेश व्यवस्था एव भावों में साधु और श्रावक के अ तर होता है। अतः स थारे में पापों का साधु के समान सर्वथा पच्चक्खाण होते हुए भी श्रावक, श्रावक ही कहलाता है, वह साधु नहीं कहा जा सकता ।

(५) सम्यक्त्व के चार श्रद्धान का महत्त्व इस अध्ययन में बताया गया है। वे इस प्रकार हक्त- **१.** जिन भाषित तत्त्वों के ज्ञान की वृद्धि करना। **२.** तत्त्व ज्ञाता साधु या श्रावक की स गति करते रहना। **३.** अन्य धर्मियों की स गति का त्याग। **४.** सम्यक्त्व से भृष्ट हो जाने वालों का परिचय वर्जन। इन

चारों बोलों से विपरीत स योग या आचरण होने से न द मणियार श्रावक धर्म से च्युत हो गया था ।

इस प्रकार अध्ययन–१२ और १३ इन दोनों में एक श्रेष्ठ श्रावक का और एक पतित श्रावक का वर्णन दृष्टा त रूप से दिया गया है । सुबुद्धि प्रधान श्रावक उसी भव से मोक्षगामी हुआ । और न द मणियार श्रावक आगामी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा ।

आज के जमाने में कई धार्मिक स्थानकवासी परिवार स त समागम के अभाव में अथवा अन्य श्रद्धा भ्रष्ट जैन का नाम धराने वालों के भाषा लालित्य के चक्कर में आकर, अपने शुद्ध वीतराग स्याद्वाद मार्ग से तथा द्रव्य-भाव रूप उभयात्मक आत्मसाधना के सत्य मार्ग से चलायमान होकर दादा-भगवान, श्रीमद्रायच द्र, कानजीस्वामी आदि प थ एव अन्य धर्म के स्वामीनारायण, शुचिधर्म, दानधर्म आदि एका तिक मार्ग में भटक जाते हक्त । सदा-सदा के लिये सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप प्रधान वीतराग मार्ग के आचरण से अलग हटकर भी अपने को परमधर्मी, परम वीतरागी बन जाने के स तोष का द भ धरते हैं । उनकी दशा इस अध्ययन वर्णित न द मणियार जैसी हो जाती है । आखिर एक दिन पुनः शुद्ध वीतराग धर्म में आये बिना उन क्हान, दादा, श्रीमद् के अनुयायी अर्थात् भगवान महावीर के अननुयायीपन से, व्रत नियम अणुव्रत महाव्रत की उपेक्षा धर्म से उनका कल्याण स भव नहीं रहता है और बेचारे जैनधर्म के नाम से या कल्याण मार्ग के भ्रम से सदा सदा के लिये सच्चे स्याद्वाद रूप मोक्षधर्म से व चित रह जाते हक्त ऐसे लोग उदय कर्माधीन होने से दया के पात्र है ।

अध्ययन–१४ : तेतली

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कथानक वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– इस कथानक में तेतलीपुत्र प्रधान और सुनार की पुत्री पोटिला मुख्य पात्र है, साथ ही राजा कनकध्वज और राणी पद्मावती का भी जीवन अ कित किया है ।

तेतलीपुत्र प्रधान– प्रकृत अध्ययन का कथानक बहुत रोचक तो है ही, शिक्षाप्रधान भी है । पिछले तेरहवें अध्ययन में बतलाया गया है कि सद्गुरु का समागम आदि निमित्त प्राप्त न हो तो जो सद्गुण विद्यमान हक्त

उनका भी ह्रास और अ ततः विनाश हो जाता है । ठीक इससे विपरीत इस अध्ययन में प्रतिपादित किया गया है कि सन्निमित्त मिलने पर अविद्यमान सद्गुण भी उत्पन्न और विकसित हो जाता है । अतएव गुणाभिलाषी पुरुष को ऐसे निमित्त जुटाने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये । जिससे आत्मिक सद्गुणों का ह्रास न होने पाए, प्रत्युत प्राप्त गुणों का विकास हो और अप्राप्त गुणों की प्राप्ति होती रहे । व्यक्तित्व के निर्माण में स त-समागम आदि निमित्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हक्त, इस तथ्य को कदापि विस्मृत नहीं करना चाहिये । प्रस्तुत अध्ययन में मनोरम कथानक द्वारा यही तथ्य प्रकाशित किया गया है । कथानक का सार इस प्रकार है–

तेतलिपुत्र नगर के राजा कनकरथ के अमात्य का नाम तेतलिपुत्र था । मूषिकारदारक तेतलिपुत्र नगर का निवासी स्वर्णकार था। एक बार तेतलिपुत्र अमात्य ने उसकी पुत्री पोटिला को क्रीड़ा करते देखा और वह उस पर अनुरक्त हो गया । पत्नी के रूप में उसकी मा ग की । शुभ मुहूर्त में दोनों का विवाह हो गया ।

पोटिला पत्नि से घृणा– कुछ समय तक दोनों का दाम्पत्य जीवन सुख पूर्वक चलता रहा । दोनों में परस्पर गहरा अनुराग था । किन्तु कालान्तर में स्नेह का सूत्र टूट गया । स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि तेतलिपुत्र को पोटिला के नाम से भी घृणा हो गई । पोटिला उस कारण उदास और खिन्न रहने लगी । उसकी निर तर की खिन्नता देख एक दिन तेतलीपुत्र ने उससे कहा– तुम चि तित मत रहो, मेरी भोजनशाला में प्रभूत अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवा कर श्रमणों, माहणों, अतिथियों एव भिखारियों को दान देकर अपना काल यापन करो । पोटिला यही करने लगी । उसका समय उसी कार्य में व्यतीत होने लगा ।

स योगवशात् एक बार तेतलीपुत्र नगर में सुव्रता नामक आर्या का आगमन हुआ । उनकी कुछ आर्यिकाएँ यथासमय गोचरी के लिए निकली और तेतलीपुत्र के घर पहुँची । पोटिला ने उन्हें आहार-पानी का दान दिया और साध्वियों से निवेदन किया– मक्त तेतलीपुत्र को पहले इष्ट थी, अब अनिष्ट हो गई हूँ । आप बहुत भ्रमण करती हक्त और राजा-र क आदि सभी प्रकार के लोगों के घरों में प्रवेश करती हक्त । आपका अनुभव बहुत व्यापक है । कोई कामण चूर्ण या वशीकरण म त्र बतलाईये जिससे में तेतलीपुत्र को पुनः अपनी ओर आकृष्ट कर सकूँ ।

मगर साध्वियों का ऐसी बातों से क्या सरोकार । पोटिला का कथन सुनते ही उन्होंने हाथों से अपने कान ढ़ँक लिये और कहा–"हे देवानुप्रिये ! हम ब्रह्मचारिणी साध्वियाँ है, हमारे लिए ऐसी बात सुनना भी निषिद्ध है, चाहो तो सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म सुन सकती हो ।"

पोटिला ने वहीं पर धर्मोपदेश सुना और श्राविकाधर्म अ गीकार कर लिया । इससे उसे नूतन जीवन मिला । उसके स ताप का कुछ शमन हुआ । उसे ऐसी शा ति की अनुभूति होने लगी जैसी पहले कभी नहीं हुई थी । उसके अ तरात्मा में धर्म के प्रति रस उत्पन्न हो गया । कुछ समय बाद उसने स यम अ गीकार करने का स कल्प कर लिया ।

पोटिला की दीक्षा– तेतलीपुत्र के पास जाकर उसने अपनी अभिलाषा व्यक्त की और अनुमति मा गी तो तेतलीपुत्र ने कहा– "तुम स यम स्वीकार करोगी तो आगामी भव में अवश्य किसी देवलोक में उत्पन्न होवोगी । वहाँ से आकर यदि मुझे प्रतिबोध देना स्वीकार करो तो मक्त अनुमति देता हूँ, अन्यथा नहीं ।" पोटिला ने तेतलीपुत्र की शर्त स्वीकार कर ली और वह दीक्षित हो गई । स यम-पालन कर आयुष्य पूर्ण होने पर वह देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुई ।

कनकध्वज का जीवन– तेतलीपुत्र का राजा राज्य में अत्य त गृद्ध और सत्ता लोलुप था । कोई मेरा पुत्र वयस्क होकर मेरा राज्य न हथिया ले, इस भय से प्रेरित होकर वह अपने प्रत्येक पुत्र को जन्मते ही विकला ग कर दिया करता था । उसकी ऐसी लोलुपता और क्रूरता देख रानी पद्मावती को गहरी चि ता और व्यथा हुई । वह जब गर्भवती थी तब उसने अमात्य तेतलीपुत्र को गुप्त रूप से अ तःपुर में बुलवाया और होने वाले पुत्र की सुरक्षा के लिये म त्रणा की । निश्चित्त हो गया कि यदि होने वाली स तान पुत्र हो तो राजा को उसका पता न लगने पाए और तेतलीपुत्र के घर पर गुप्त रूप में उसका पालन-पोषण किया जाय ।

स योगवश जिस समय रानी पद्मावती ने पुत्र का प्रसव किया, उसी समय तेतलीपुत्र की पत्नि ने मृत कन्या को जन्म दिया । पूर्वकृत निश्चय के अनुसार तेतलिपुत्र ने पुत्र और पुत्री की अदला बदली कर दी । मृत पुत्री को पद्मावती के पास और राजकुमार को अपनी पत्नी के पास ले आया । पत्नी को सब रहस्य बतला दिया । कुमार सुरक्षित वृद्धिगत होने लगा ।

कनकरथ राजा की जब मृत्यु हुई तो उसके उत्तराधिकारी की चर्चा

चली । तेतलिपुत्र ने समग्र रहस्य प्रकट कर दिया और कनकध्वज राजकुमार को राजसि हासन पर आसीन कर दिया ।

रानी पद्मावती का मनोरथ सफल हुआ । उसने कनकध्वज राजा को आदेश दिया– तेतलिपुत्र के प्रति सदैव विनम्र रहना, उसका सत्कार-सन्मान करना, राजसि हासन, वैभव, यहाँ तक कि तुम्हारा जीवन इन्हीं की बदौलत है । कनकध्वज ने माता के आदेश को शिरोधार्य किया और वह अमात्य का बहुत आदर करने लगा ।

पोटिला देव द्वारा प्रधान को प्रतिबोध– उधर पोटिल देव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेतलिपुत्र को प्रतिबुद्ध करने के अनेक उपाय किए, मगर राजा द्वारा अत्यधिक सम्मानित होने के कारण उसे प्रतिबोध नहीं हुआ । तब देव ने अ तिम उपाय किया । राजा आदि को उससे विरुद्ध कर दिया । एक दिन जब वह राजसभा में गया तो राजा ने बात भी नहीं की, विमुख होकर बैठ गया, सत्कार-सन्मान करने की तो बात ही दूर ।

तेतलिपुत्र यह अभिनव व्यवहार देखकर भयभीत होकर वापिस घर लौट आया । मार्ग में तथा घर में आने पर परिवारिकजनों ने उसे कुछ भी आदर नहीं दिया । सारी परिस्थिति बदली देख तेतलिपुत्र ने आत्मघात करने का निश्चय किया । आत्मघात के लगभग सभी उपाय आजमा लिये, मगर दैवी माया के कारण कोई भी कारगर न हुआ ।

जब तेतलिपुत्र आत्महत्या करने में भी असफल हुआ, पूर्ण रूप से निराश हो गया तब पोटिला के रूप में देव प्रकट हुआ । उसने अत्य त सारपूर्ण शब्दों में उसे प्रतिबोध दिया । उसी समय तेतलिपुत्र को शुभ अध्यवसाय के प्रभाव से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसे विदित हो गया कि पूर्व जन्म में वह महाविदेह में महापद्म नामक राजा था । स यम अ गीकार करके वह यथाकाल शरीरत्याग कर महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न हुआ था । तत्पश्चात् यहाँ जन्मा ।

तेतलिपुत्र ने मानों नूतन जगत में प्रवेश किया । थोड़ी देर पहले जिसके चहूँ और घोर अ धकार व्याप्त था, अब अलोकिक प्रकाश की उज्जवल रश्मिया भासित होने लगी । वह स्वय दीक्षित हुआ और चि तन करते करते उसे जातिस्मरण से १४ पूर्वों का ज्ञान भी उपस्थित हो गया । भावों की श्रेणि क्रमशः विशुद्ध होती गई और वहीं केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया । आकाश में देव दु दुभी बजी । कनकध्वज राजा आया । उसने क्षमा

मा गी । उपदेश सुना एव श्रावक व्रत अ गीकार किए । तेतलिपुत्र अणगार अनेक वर्ष केवली पर्याय में रहकर सिद्ध हुआ ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन में से शिक्षा एव ज्ञातव्य क्या उद्‌भूत होते हक्त?

उत्तर- (१) प्रतिज्ञाबद्ध देव धर्म क्रिया में सहायक बन सकता है । (२) मनोनुकूल वातावरण की अपेक्षा प्रतिकूल परिस्थिति में रहे व्यक्ति को बोध शीघ्र लगता है । (३) पति पत्नी का प्रेम भी क्षणिक होता है वह कर्मों का उदय पाकर कभी भी पलट सकता है । अतः सदा सतर्क-सावधान रहना चाहिये । एक दिन तेतलीपुत्र प्रधान पोटिला पर अनुरक्त होकर शादी करता है और वही एक समय उसे छिटका कर दानशाला में बिठा देता है । यह कर्मों की एव स सार की विचित्रता है । मानव को ऐसे स सार चक्र से बचकर धर्म एव ज्ञान में आत्मा की सुरक्षा कर लेनी चाहिये । (४) विपत्तिकाल में भी सुखी एव प्रसन्न रहने का उपाय निकाल लेना चाहिये । यथा- पोटिला का दानशाला में रहना । (५) कभी गोचरी के प्रस ग में भी उचित विवेक के साथ स क्षिप्त उपदेश दिया जा सकता है, यथा- पोटिला ने उपदेश सुनकर श्रावक व्रत स्वीकार किये । (६) दुःख से घबराकर आत्मघात करना महान कायरता है, अज्ञान दशा है । ऐसे समय में धर्म का स्मरण कर स यम तप स्वीकार कर लेना चाहिए अर्थात् दुःख में तो धर्म को अवश्य याद करना ही चाहिये ।

अध्ययन-१५ : नन्दीफल

प्रश्न-१ : न दीफल का दृष्टा त कथानक एव ज्ञातव्य शिक्षाएँ क्या हक्त?

उत्तर- प्रस्तुत अध्ययन का मूल स्वर अन्य अध्ययनों की भाँति साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले साधकों को स सार में रमणीय प्रतीत होने वाले एव मन को लुभाने वाले इन्द्रिय विषयों से सावधान रहने की सूचना देना ही है । यही वह मूल स्वर है जो प्रस्तुत आगम में प्रार भ से लेकर अ त तक गू जता सुनाई देता है । किन्तु उस स्वर को सुबोध एव सुगम बनाने के लिये जिन उदाहरणों की योजना की गई है, वे विभिन्न प्रकार के हक्त ऐसे ही उदाहरणों में से **न दीफल** भी एक उदाहरण है ।

च पा नगरी का निवासी धन्य सार्थवाह एक बड़ा व्यापारी था । उसने एक बार विक्रय के लिए माल लेकर अहिच्छत्रा नगरी जाने का विचार

किया । प्राचीन काल में वणिक वर्ग के अ तर्गत एक वर्ग सार्थवाहों का था । सार्थवाह वह बड़ा व्यापारी होता था । जो अपने साथ अन्य अनेक लोगों को ले जाता था और उन्हें कुशलपूर्वक, उनके ग तव्य स्थानों तक पहुँचा देता था ।

धन्य सार्थवाह अपने सेवकों के द्वारा च पा की गली-गली में यह घोषणा करवाता है कि- धन्य सार्थवाह अहिच्छत्रा नगरी जा रहा है, जिसे साथ चलना हो, चले । जिसके पास जिस साधन का अभाव होगा, वह उनकी पूर्ति करेगा तथा सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करेगा । यह भी एक बहुत बड़ी सेवा थी, जिसे सार्थवाह वणिक स्वेच्छापूर्वक करते थे ।

धन्य श्रेष्ठी का सार्थ च पा नगरी से रवाना हो गया । चलते-चलते और बीच-बीच में विरा ति लेते-लेते सार्थ एक बहुत बड़ी अटवी के निकट पहुँचा । अटवी बड़ी विकट थी; उसमें लोगों का आवागमन नहीं जैसा था । उसके मध्यभाग में एक जाति के विषैले वृक्ष थे, जिनके फल, पत्ते, छाल आदि छूने, चखने, सू घने और देखने में अत्य त मनोहर लगते थे । किन्तु वे सब, यहाँ तक कि उनकी छाया भी प्राणहरण करने वाली थी । अनुभवी धन्य सार्थवाह उन न दीफल(तात्कालिक आन द प्रदान करने वाले फल युक्त) वृक्षों से परिचित था । अतएव समस्त सार्थ को उसने पहले ही चेतावनी दे दी कि- "सार्थ का कोई भी व्यक्ति न दीफल वृक्षों की छाया के निकट भी न फटकें ।" इस प्रकार उसने अपने उत्तरदायित्व का पूरी तरह निर्वाह किया ।

धन्य सार्थवाह की चेतावनी पर कुछ लोगों ने अमल किया कुछ ऐसे भी निकले जो उन वृक्षों के वर्ण, ग ध, रस और स्पर्श के प्रलोभन को रोक न सके । जो उनसे बचे रहे वे सकुशल यथेष्ट स्थान पर पहुँच कर सुख के भागी बने । जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपने मन पर निय त्रण न रख सके, उन्हें मृत्यु का शिकार होना पड़ा ।

तात्पर्य यह है कि यह स सार भयानक अटवी है । इसमें इन्द्रियों के विविध विषय न दीफल के सदृश है । इन्द्रिय विषय भोगते समय क्षण भर सुखद प्रतीत होते हक्त किन्तु उनके भोग का परिणाम अत्य त शोचनीय होता है । दीर्घ काल पर्यंत विविध प्रकार की व्यथाएँ सहन करनी पड़ती है । अतएव साधक के लिये यही श्रेयस्कर है कि वह विषय-भोगों से बचे, उनकी छाया से भी दूर रहे ।

शिक्षा एव ज्ञातव्य :- (१) बुजुर्ग अनुभवी व्यक्तियों की चेतावनी, हित सलाह की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । (२) अज्ञातफल आदि नहीं खाने चाहिये । (३) इच्छाओं पर निय त्रण रखने का अभ्यास होना चाहिये । (४) खाने स ब धी आसक्ति की तीव्रता मनुष्य के शरीर स्वास्थ्य, स यम एव जीवन का भी खातमा कर देती है, अतः खाने स ब धी पूर्ण विवेक का ज्ञान होना आवश्यक है । (५) उत्तराध्ययन सूत्र में कि पाक फल का दृष्टा त देकर भुक्त भोगों का परिणाम असु दर बताया है । वह भी जहरीला फल है । यहाँ इस अध्ययन में न दीफल को एव वृक्षों की छाया को भी जहरीला बताया है ।

अध्ययन-१६ : द्रौपदी

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में द्रौपदी के कितने और कौन-कौन से भवों का वर्णन है ?

उत्तर- इस अध्ययन में द्रौपदी के जीव का नागश्री ब्राह्मणी के भव से वर्णन प्रार भ होकर मोक्ष जाने तक पूर्ण होता है, वे भव इस प्रकार है- (१) नागश्री ब्राह्मणी (२) छट्ठी नरक में (३) सभी नरकों में दो-दो भव (४) बीच में तिर्यंच के भव (५) फिर लाखों(अस ख्य)तिर्यंच भव किये । फिर (६) सुकुमालिका स्त्री (७) फिर दूसरे देवलोक में अपरिग्रहीता देवी (८) उसके बाद द्रौपदी (९) फिर पाँचवें देवलोक में देव (१०) महाविदेह से मुक्ति प्राप्त करेगी ।

प्रश्न-२ : अज्ञानी भोले जीवों को कर्मब ध कम होते हक्त, क्या यह कथन ठीक है ?

उत्तर- पुरुषार्थ नहीं करने की रुचि वाले कुछ लोग ऐसा कह देते हक्त कि- **जाणे सो ताणे** । पर तु एका त ऐसा नहीं है । मूल प्रकृति किसी की खराब होती है, वह ज्ञान को पचा नहीं पाता है और बात-बात में ज्ञान के दुरुपयोग से दूसरों के दोष देखता-बोलता रहता है; निंदा क्लेश करता रहता है, वह उसका व्यक्तिगत स्वभाव का दोष होता है । मूल में वह ज्ञान का अपात्र होने से अपनी आत्मा में ज्ञान के निमित्त से रागद्वेष करता रहता है । वास्तविक ज्ञानपरिणत जीव शा त, ग भीर, समपरिणामी, क्लेश निंदा से विरत, परम उदार भावों से जगत को ज्ञाता दृष्टाभाव से देखने वाले होते हक्त । वे मन में किसी के प्रति ऊँचे नीचे परिणाम नहीं करके तटस्थ, उदार एव अनुक पा

भाव से ओत-प्रोत रहते हक्त । इसके विपरीत अज्ञानी भोले मूर्ख व्यक्ति अपनी उस अज्ञानता से निरर्थक ही कर्मों के ढ़ेर इकट्ठे कर लेता है । जिसका उसे अतीव दारुण दुष्फल भोगना पड़ता है । उसका भविष्य दीर्घकाल के लिये अ धकारमय बन जाता है । इसी तथ्य को इस अध्ययन में नागश्री ब्राह्मणी के वर्णन से प्रदर्शित किया गया है । द्रौपदी की भव कथा वहीं से प्रार भ होती है ।

नागश्री ब्राह्मणी :- च पानगरी में सोम, सोमदत्त और सोमभूति तीन ब्राह्मण सगे भाई आन दपूर्वक अलग-अलग रहते थे । कि तु भोजन एक-एक घर में बारी-बारी से एक साथ बैठकर करते थे । तीनों भाईयों की पत्नियों के नाम- नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री था ।

एक बार भोजन की बारी नागश्री के घर थी । उसने तुम्बे(दूधी)का शाक चखे बिना बनाया । शाक सुस्वादु बने उसके लिये मसाले भी बहुत अच्छी तरह ड़ाले । कि तु बाद में चखने पर कड़वा जेर सरीखा लगा । उसे काम में देर हो रही थी । अतः कड़वे शाक को एक तरफ रखकर दूसरा शाक बना लिया । भोजन का समय होने वाला ही था कि अचानक मासखमण के तपस्वी मुनि पारणे के लिये गोचरी में घूमते हुए उसके घर में प्रविष्ट हुए । नागश्री ने साधु को देखा अत्य त खुश हुई कि अरे कड़वा शाक फेंकने कहाँ जाउँगी । यह सहज उकरड़ी घर में आ गई है । उसने शाक का बर्तन उठाया और सारा शाक मुनि के पात्र में उड़ेल दिया ।

मुनि लेकर उपाश्रय में चले गये । गुरु धर्मघोष आचार्य ने तपस्वी धर्मरुचि अणगार को थोड़े ही समय में शीघ्र आते देखा । मुनि ने आहार गुरु को बताया । दिखने में सु दर तो था ही कि तु गुरु को श का हो जाने से चख लिया । पता लग गया कि यह तो कड़वा जहर शाक है । गुरु ने खाने का मना कर दिया । तपस्वी मुनि उसे लेकर परठने गये । ज गल में थोड़ा सा अ श परठकर देखा । मसालों की ग ध से सेकड़ों कीड़ियाँ आने लगी और जहर से मरने लगी । मुनि ने जीवों की हिंसा से दयार्द्र भाव होकर वह सारा शाक पेट में ड़ाल दिया । क्यों कि जीवों की रक्षा योग्य सबसे अधिक प्रासुक स्थान वही था । बाहर कहीं भी ड़ालने से लाखों जीवों की हिंसा होने वाली थी । पीते ही जहर का परिणमन हुआ, प्राणा त वेदना होने लगी । मुनि ने स थारा पच्चक्खकर समाधि मरण प्राप्त किया ।

नागश्री की अज्ञानता, भोलापन, मूर्खता एव बाहर फेंकने जाने के

प्रमाद का परिणाम एक तपस्वी मुनि की हत्या रूप हुआ । बहुत देर तक तपस्वी मुनि के आहार परठकर वापिस नहीं आने से गुरु ने स तों को भेजा । वापिस आकर स तों ने उनके रजोहरण पात्र स भलाते हुए, काल करने की खबर दी । गुरु ने पूर्वज्ञान में उपयोग लगाकर जान लिया कि नागश्री ब्राह्मणी ने कड़वे तुम्बे का शाक वोहराया है और जीव दया के हेतु से तपस्वी मुनि स्वय पीकर काल करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हुए हक्त ।

ज गल में जहर के परिणमन युक्त शरीर को देखकर धर्म की हीलना होगी, ऐसी स्थिति के निवारण के लिये गुरु ने शिष्यों को आदेश देकर नगर में जगह-जगह इस बात को जाहिर करवाया ।

तीनों ब्राह्मणों को मालुम हुआ तो नागश्री को ताड़ना तर्जना करके घर से निकाल दिया । वह भिखारिन बन गई । एव अ त समय में १६ रोगों से ग्रस्त बन कर दु:खी होकर हाय-त्राय करके मरकर छट्ठी नरक में गई । उसके बाद भी एक-एक नरक में दो-दो बार जन्म मरण करके फिर तिर्यंच गति के लाखों(अस ख्य) भव करतेहुए दु:खमय जन्म लेती, दु:खमय जीवन व्यतीत करती एव दु:ख के साथ मरती । ***इस प्रकार अज्ञान एव मूर्खता भी जीव के लिये हितकारी नहीं है ।*** धर्म और नीति का ज्ञान विवेक होता तो नागश्री वह जहर युक्त आहार मुनि को नहीं देती, बाद में कभी भी फेंक सकती । कि तु मूर्खता और उतावल के फल स्वरूप उसे स कटमय भवभ्रमण से दु:ख उठाना पड़ा । इसलिये ज्ञान और विवेकमय जीवन बनाना ही श्रेष्ठ होता है ।

प्रश्न-३ : द्रौपदी के पाँच पति एक साथ पाँचों पाँड़व सगे भाई बने, तो यह किस भव के कौन से कर्म का फल उसे मिला ?

उत्तर- ल बेजन्म-मरण के बाद नागश्री ब्राह्मणी को मनुष्य का भव मिला । एक सेठ के घर पुत्री के रूप में जन्म लिया । मानो अब उसकी आजीवन जेल की सजा खतम होने से पुन: सुखी अवस्था में पहुँची । माता-पिता ने उसका नाम **सुकुमालिका** रखा । वह दिखने में सुरूप थी । योग्य वय में किसी योग्य वर के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ । सुकुमालिका के शरीर की आ तरिक योग्यता अभी भी कुछ पाप कर्म के परिशेष वाली थी । पति एक दिन भी उसके शरीर का स्पर्श सहन नहीं कर सका । उसे छोड़कर भाग गया । क्यों कि उसके शरीर का स्पर्श तलवार की धार के समान तीक्ष्ण और अग्नि के समान उष्ण लगा ।

पिता ने आश्वासन दिया और समय पर पुनर्विवाह किया गया । एक दीन-हीन भिखारी को सब सुख साहिबी में रखा गया कि तु वह भी सुकुमालिका के स्पर्श को सहन नहीं कर सका, छोड़कर भाग गया ।

फिर पिता की सलाह से सुकुमालिका अपनी दानशाला में दान देती हुई जीवन व्यतीत करनेलगी । दानशाला में कभी जैन साध्वियों का आगमन हुआ । भिक्षा वहराने के बाद उसने अपने दु:ख की बात कह कर वशीकरण य त्र-म त्र की याचना करी । साध्वियों ने उसे समझाया और कहा कि हमे ऐसी बात सुनना भी नहीं कल्पता है । हम ब्रह्मचारिणी हक्तय त्र-मत्र से हमारा क्या वास्ता है ? फिर उसे धर्म का उपदेश दिया । उसने श्रावक व्रत अ गीकार किये । पुन: कभी उन्हीं साध्वियों का वहाँ पदार्पण हुआ । उपदेश सुना एव पिता की आज्ञा लेकर स यम अ गीकार किया । सुकुमालिका साध्वी बनकर विविध तप से अपने कर्मक्षय करने लगी ।

एक बार उसे नगरी के बाहर उद्यान के समीप आतापना लेते हुए बेले-बेले पारणा करने का विचार हुआ । गुरुणी से आज्ञा मा गी । गुरुणी ने मना किया, कहा कि हमें साध्वियों को उपाश्रय में ही आतापना लेना कल्पता है, गाँव के बाहर नहीं । उसे गुरुणी की बात अच्छी नहीं लगी और स्वछ दपने नगर के बाहर उद्यान के समीप आतापना लेने लगी और निर तर बेले-बेले की तपस्या भी करने लगी ।

एक समय उस नगरी के स्वच्छ द और स्वत त्र बने युवकों में से पाँच युवक देवदत्ता गणिका को लेकर उद्यान में पहुँचे और आमोद-प्रमोद, वनक्रीड़ा करते हुए एक जगह विश्राम के लिये बैठे । तब वहाँ उन पाँच में से एक ने वेश्या को अपनी गोद में बिठाया, दूसरे ने पीछे छत्र धारण किया, तीसरा उसे फूलों से सजाने लगा, चौथा उसके पाँव में र ग लगाने लगा और पाँचवाँ उस पर चामर ढ़ोलने लगा । आतापना लेती खड़ी सुकुमालिका साध्वी की दृष्टि उन पर पड़ी । उसे अपना पूर्व जीवन स्मृति में आया । सुखभोग की लालसा पुन: उत्पन्न हुई । उसने स कल्प किया कि मेरी तप करणी का फल हो तो मक्त भी इस स्त्री के समान होऊँ । इस प्रकार का निदान किया । यह निदान, लाख रूपये की स पत्ति से कोई १०० रूपये की वस्तु मा गे तो मिले ही वैसी बात थी । सुकुमालिका की तपस्या विशिष्ट थी उसका वह स कल्प तुच्छ था । अत: उसने वैसे स योग के कर्मब ध कर लिये । धीरे-धीरे वह स यम में शिथिलाचारिणी हो गई ।

साध्वियों और गुरुणी की टोका-टोकी से स्वतः निकलकर अकेली रहकर स यम तप का पालन करने लगी । अ त में १५ दिन के स थारे से काल करके वह दूसरे देवलोक में अपरिग्रहीता देवी के रूप में उत्पन्न हुई । वहाँ ९ पल्योपम का आयुष्य पूर्ण कर उसने क पिल नगर में द्रुपद राजा के घर जन्म लिया । उसका नाम माता-पिता ने द्रौपदी रखा । यौवन वय में उस निदान के कारण स्वय वर में उसने पाँचों पाँड़वों का वरण किया । इस प्रकार नागश्री ब्राह्मणी के जीव ने स पूर्ण अज्ञान-पापकर्मों को भुगत कर तप स यम के आचरण से निदान अनुसार पाँच पति प्राप्त किये ।

प्रश्न–४ : दानशाला में जैन श्रमण गोचरी जा सकते हक्त ?

उत्तर– दानशाला में जहाँ घर वाले एव कर्मचारी भोजन करते हों और उस दानशाला का आहार गरीबों-भिखारियों के सिवाय मेहमानों आदि के भी काम आता हो तो वहाँ जैन श्रमण योग्य समय में अर्थात् भीड़ भड़क्का न हो तो विवेक के साथ गोचरी जा सकते हक्त ।

प्रश्न–५ : विराधक साधु की उत्कृष्ट गत प्रथम देवलोक तक है, सुकुमालिका साध्वी दूसरे देवलोक में क्यों गई ?

उत्तर– सुकुमालिका साध्वी शिथिलाचारिणी बन गई थी । वह कल्पविरुद्ध अकेली रहने लगी थी फिर भी अन्य स यम विधियों के पालन में, स्वाध्याय ध्यान में एव तप में वह तल्लीन रहती थी । इसलिये उसमें आगम अनुसार बकुश निय ठा और स यम का गुणस्थान रहा था । अतः वह उत्तरगुण की विराधिका होते हुए भी स यम के घर में गुणस्थान में काल करके दूसरे देवलोक में गई थी ।अन्यथा जो विराधक साधु की गत प्रथम देवलोक तक की उत्कृष्ट हो सकती है, उसमें स यम का गुणस्थान और निय ठा अवस्था नहीं रहती है । सुकुमालिका साध्वी ने गुरुणी से स्वच्छ द होकर भी श्रद्धा प्ररूपणा एव तप साधना में अप्रमत्त रहने के कारण बकुश निय ठे की गति प्राप्त करी थी । बकुश निय ठा वाला श्रमण भगवती सूत्र श॰ २५, उद्देशक–६ अनुसार जघन्य प्रथम देवलोक, उत्कृष्ट १२वें देवलोक तक जा सकता है । तात्पर्य यह है कि शिथिलाचारी एव एकल विहारी होते हुए भी किसी में साधुपना रह सकता है । एका त उसे असाधु कहने वाले लोग विद्वान कहलाकर भी विवेक बुद्धि से विहीन और उत्सूत्र प्ररूपक होते हक्त ।

प्रश्न–६ : द्रौपदी के स्वय वर में द्रुपद राजा ने राजा तथा राजकुमारों को निम त्रण कहाँ-कहाँ, किनको भेजा था ?

उत्तर– प्रथम दूत– द्वारिका में दशदशार्ह, कृष्णवासुदेव आदि को निम त्रण देने भेजा था । **दूसरा दूत–** हस्तिनापुर में पाँडुराजा, पाँचों पुत्र, दुर्योधन आदि १०० भाई, गांगेय, विदुर, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, शकुनि, शिख ड़ी, अश्वत्थामा आदि को निम त्रण देने भेजा था । स्वय वर में किसी को दर्शक रूप में भी निम त्रण सन्मानार्थ होता है । **तीसरा दूत–** च पा नगरी में अ गराज कर्ण, न दीराज(मद्रराज) **शल्य** को निम त्रण देने भेजा । **चौथा दूत–** शूक्तिमती नगरी में–दमघोष राजा के पुत्र ५०० भाईयों से युक्त शिशुपाल राजा को निम त्रण देने भेजा था । **पाँचवाँ दूत–** हस्तीशीर्षनगर में– दमदत्त राजा को; **छट्ठा दूत–** मथुरा नगरी में **धर** राजा को, निम त्रण देने भेजा था । **सातवाँ दूत–** राजगृहनगर में– जरास ध के पुत्र सहदेव को निम त्रण देने भेजा था । (इस समय जरास घ राजा नहीं था क्यों कि आगे कृष्ण का वासुदेव विशेषण के साथ एव रिद्धि के साथ कथन किया गया है ।) **आठवाँ दूत–** कोड़िन्य नगर में– भीष्मक के पुत्र रुक्मि राजा को निम त्रण देने भेजा । **नौवाँ दूत–** विराटनगर में १०० भाईयों सहित कीचक राजा को निम त्रण देने भेजा था । **दशवाँ दूत–** अन्य विविध ग्रामों नगरों में अनेक राजाओं को निम त्रण देने भेजा था ।

इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण वासुदेव द्वारा जरास घ का वध हो चुका था । कालकुमार भी उसका बड़ा पुत्र नहीं था तभी सहदेव राजा को निम त्रण दिया गया । पाँडुराजा स्वय राज्य कर रहे थे । कौरव सौ भाई थे उनका पिता को निम त्रण नहीं था । **विदुर** पाँडु का छोटा भाई भी था । उसने अबतक दीक्षा नहीं ली थी । स्वय वर म ड़प में सभी राजा राज कुमार अपने नामा कित आसन पर बैठ चुके थे, द्रौपदी के आने की इन्तजार कर रहे थे । **तब द्रुपद राजा स्वय कृष्णवासुदेव के ऊपर श्वेत चामर वींजते हुए खड़े रहे ।** इससे स्पष्ट होता है कि कृष्ण वासुदेव ही सभी राजाओं के शिरमौर मुकुटमणि समान त्रिख ड़ाधिपति राजा थे, प्रति वासुदेव जरास घ उस समय नहीं था । इस वर्णन से अनुप्रेक्षा कर जैन महाभारत का स पादन करने वाले विद्वानों या स तों को इन आगम तत्त्वों का ध्यान रखकर निरूपण करना चाहिये । कई विद्वान महाभारत युद्ध के बाद जरास घ का युद्ध कृष्ण के साथ बताते हक्त वह उपयुक्त नहीं है ।

प्रश्न–६ : द्रौपदी ने स्वय वर में जाने के पहले जिनपड़िमा की अर्चना करी थी ?

उत्तर– प्रस्तुत पाठ में कोई भी तीर्थंकर के नाम बिना जिनपड़िमा शब्द है वह पाठ इस प्रकार है– **ण्हाया** *जाव* **सुद्धप्पावेसाइ म गलाइ वत्थाइ पवरपरिहिया जिणपड़िमाण अच्चण करेइ, करेत्ता जेणेव अ तेउरे तेणेव उवागच्छइ ।** तएण त दोवइ रायवरकण्ण अ तेउरियाओ सव्वाल कार विभूसिय करेइ ।

द्रौपदी पूर्व भव में भोगों का निदान किये हुए होने से अभी तक प्रथम गुणस्थानवर्ती थी । स्नान करके अ त:पुर में आने के पहले मार्ग में उसने कामदेव की पूजा की । तीर्थंकर के नाम बिना केवल **जिन** शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ **कामदेव** भी होता है, स्वय वर का एव पति के निर्णय का प्रस ग होने से एव प्रथम गुणस्थान वाली होने से तथा तीर्थंकर का नाम नहीं होने से यहाँ जिनपड़िमा शब्द से कामदेव का कथन ही योग्य होता है । कोषग्र थों में **"जिन"** शब्द के अनेक अर्थ कहे गये हक्त–

यथा– अर्हन्नपि जिनश्चैव, जिनः सामान्य केवली ।
क दर्पोपि जिनश्चैव, जिनो नारायणो हरि॥ ***हेमियनाममाला कोष.***

इस श्लोक में तीर्थंकर को, सामान्य केवलि को, क दर्प–कामदेव को तथा नारायण हरि को भी जिन कहा जाना बताया है । सा सारिक प्रस ग होने से तथा तीर्थंकर का नाम नहीं होने से यहाँ कामदेव की प्रतिमा के पूजन का प्रास गिक अर्थ को छोड़ कर बिना नाम के तीर्थंकर की मूर्ति की पूजा का कथन समझना अयोग्य है । पूर्वाचार्य विजयगच्छीय गुणसागर सूरीश्वरजी ने **ढ़ालसागर** नामक काव्य के छट्ठे ख ड़ में कहा है कि–

करी पूजा काम देव की, भाखे द्रौपदी नार ।
देव दया करी मुझने, भलो देजो भरतार ॥

इस काव्य में भी द्रौपदी के लिये कवि ने कामदेव की प्रतिमा पूजन का ही प्रास गिक कथन किया है । अत: निदानकृत प्रभाव से युक्त प्रथम गुणस्थान वर्ती द्रौपदी के नाम से कोई बुद्धिमान तीर्थंकरों के शासन में आर भ-समार भ से परिपूर्ण मूर्तिपूजा की सिद्धि करे तो यह उनका बेतुका प्रयास ही कहलायेगा । जब कि द्रौपदी उस समय कोई श्राविका या साध्वी नहीं थी, धर्मिष्ठ भी नहीं थी । आगमों में श्रावकों के विस्तृत वर्णन वाले उपासक दशा ग सूत्र में उनके धनधान्य आदि समृद्धि के वर्णन में एक भी म दिर मूर्ति का उनके घर में होने का कथन नहीं है । उन श्रावकों की ल बी-चौड़ी दिनचर्या जीवनी में कहीं भी कभी मूर्ति के दर्शन पूजा का कथन नहीं है । अत: ऐसे

अप्रास गिक स्थल से मूर्तिपूजा का अर्थ खींचकर स तोष मानना अपने आप में कमजोरी सिद्ध करना होता है ।

प्रश्न–७ : नारद जी द्रौपदी पर क्यों नाराज हो गये थे और नाराजी में उन्होंने क्या करामात की थी ?

उत्तर– पाँच पति के प्राप्त होने का निदान द्रौपदी का पूर्ण हो चुका था । पाँडुराजा एव पाँड़वों-कौरवों का समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था । कुछ समय बाद नारद ऋषि को पाँडुराजा और हस्तिनापुर की याद आ गई । क्षेमकुशल पूछने वे आकाशमार्ग से पाँडुराजा के राजभवन में महेल में उतरे । पाँडुराजा ने, पाँचों पाँड़वों ने एव कु ती ने आसन से उठकर नारद जी का सन्मान किया । व दन नमस्कार कर उन्हें आसन निम त्रण किया । परस्पर कुशल क्षेम पृच्छा आदि वार्तालाप हुआ । इस समय द्रौपदी ने नारद का कोई भी समुचित आदर विनय व दन किया नहीं । वह चुपचाप देखती सुनती रही । नारद को यह द्रौपदी का व्यवहार चुभ गया ।

नारद गुणवान, विद्याधारी, लब्धिधारी, ब्रह्मचारी पुरुष थे । साथ ही रुष्ट तुष्ट होने वाले थे तथा किसी का भला बुरा करने में भी वे नहीं अटकते थे । द्रौपदी नारद को अच्छी तरह नहीं पहिचानती थी । इसलिये उसने विनय व्यवहार करने में उपेक्षा की । नारदजी उस पर नाराज होकर मन में गा ठ बाँधकर चले गये । घर-आ गन में आये कोई भी स सारिक व्यक्ति या साधु-स न्यासी का उचित समादर या विनय करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है । वहाँ अन्य दृष्टि या धर्मदृष्टि गौण हो जाती है । छोटे बड़े का भेद भी गौण हो जाता है । कहावत है कि **घर आया और माँ जाया समान स्वीकारा जाता है ।** द्रौपदी को इस बात का विवेक नहीं रहा । उसके परिणाम से वह नारद के कोप का भाजन बनी । नारद जी ने अपना गुस्सा निकालने का उपाय सोच लिया ।

वे घातकीख ड़ द्वीप के दक्षिण भरत में पद्मनाभ राजा के पास गये । द्रौपदी के रूप आदि की प्रश सा करके उसे ललचाया और चल दिये । पद्मनाभ ने दैवी सहाय से द्रौपदी का अपहरण करवा कर म गवाया । देव ने मना किया, समझाया, फिर भी पद्मनाभ राजा ने अपना आग्रह रखा । तो देव ने द्रौपदी को उठाकर राजा की अमरक का राजधानी के बाहर बगीचे में लाकर रखकर राजा से सदा-सदा के लिये विदा लेकर चला गया ।

द्रौपदी के पूर्वभवों के स स्कार और निदान भाव अब पूर्ण बदल

चुके थे । वह पतिव्रता नारी थी । पद्मनाभ ने अपनी शादी करने की मा ग द्रौपदी के समक्ष रखी । अज्ञात क्षेत्र में अपने को असहाय पाकर उसने युक्ति पूर्वक ६ महीने की मुद्दत विचारने के लिये मा ग ली । राजा ने भी धैर्य रख कर उसकी बात मान ली ।

पाँडुराजा ने द्रौपदी की बहुत खोज करवाई कि तु कोई पता नहीं लगा । तब कृष्ण वासुदेव के पास कु ती को भेजा । कृष्ण ने सामने आकर कु ती भूआ को सम्मान पूर्वक राजभवन में ले गया । यथासमय आने का कारण पूछा । कु ती ने द्रौपदी के अपहरण की बात कही और बताया कि कहीं भी पता नहीं लगने पर आपके पास निवेदन हेतु आई हूँ । कृष्ण ने आश्वासन देकर कहा कि मत्तकहीं से भी खोज लगाकर हाथोहाथ लाउँगा । इस प्रकार कु ती को आश्वस्त किया । कु ती वापिस हस्तिनापुर आ गई । कृष्ण ने अपने राज्य में अनेक दिशाओं में खोजने के लिये कर्मचारी भेजे एव नगरी में घोषणा भी करवाई । द्रौपदी ज बूद्वीप के भरत क्षेत्र में नहीं कि तु लवण समुद्र पार करके घातकीख ड़ द्वीप के भरतक्षेत्र में थी, वहाँ कोई मानव सहज रूप से जा नहीं सकता था । अतः कहीं किसी को कुछ भी द्रौपदी का पता नहीं लगा ।

अचानक एक समय कृष्णवासुदेव अ तःपुर में राणियों के साथ बैठे थे कि कच्छुल नारद वहाँ उतरे और कृष्ण को कुशल क्षेम पूछा । तब कृष्ण ने पूछा कि आपने भ्रमण करते कहीं द्रौपदी को देखा है ? बहुत समय से उसका अपहरण हो गया है । नारद ने सोचने जैसा देखाव करते हुए कहा– हाँ, एक बार में पद्मनाभ राजा के यहाँ अन्य भरत में अमरक का गया था, तब उसके कु वारे अ तःपुर में द्रौपदी जैसी स्त्री को देखा था । उसके हावभाव से कृष्ण समझ गये और तुर त कह दिया कि हे देवानुप्रिय ! यह सब कर्तव्य आपने ही किया है ऐसा लगता है अर्थात् यह तुम्हारा ही काम है । कृष्ण के ऐसा कहते ही मानो मौन स्वीकृति देते हुए नारद प्रसन्न चित्त से आकाश में उड़ गये ।

कृष्ण वासुदेव ने अमरक का राजधानी में स्वय जाने का निर्णय किया । पाँड़वों को भी समुद्र तट पर बुला लिया । लवणाधिपति सुस्थित देव का अष्टम भक्त अर्थात् तेले की तपस्या युक्त पोषधशाला में रहकर स्मरण किया । देव उपस्थित हुआ । स पूर्ण बात प्रगट करी और समुद्र में जाने का मार्ग मा गा । देव ने तथास्तु कर दिया । इस प्रकार देव सहाय से पाँचों

पाँड़व सहित कृष्ण अपने अपने रथ सहित अमरक का नगरी में पहुँचे । युद्ध हुआ । पहले पाँड़व गये । हार खाई । फिर कृष्ण गये । श खनाद करके विजय प्राप्त की । द्रौपदी के कहने से पद्मनाभ ने नम्रता पूर्वक द्रौपदी को लाकर सोंप दिया । कृष्ण ने ६ महीने के अ दर ही पद्मनाभ से द्रौपदी का पिंड़ छुड़ाया । इस प्रकार द्रौपदी के कारण सभी परिवार के लोग नारदजी के क्रोध के भाजन बन कर हैरान हुए ।

प्रश्न–८ : अमरक का के राजा पद्मनाभ का फिर क्या हुआ ?

उत्तर– कृष्ण वासुदेव के सामने तो गीले कपड़ों से आकर माफी मा गकर द्रौपदी को सोंपने से कृष्ण ने उसे माफ करके छोड़ दिया । कि तु उस समय उस भरत क्षेत्र का तीन ख ड़ का अधिपति कृष्ण के समान ही वासुदेव राजा **कपिल** च पानगरी में मुनिसुव्रत तीर्थंकर की सेवा में धर्मोपदेश सुन रहा था । वहीं उसने कृष्ण वासुदेव के श खनाद की आवाज सुनी । उसने सोचा मेरे जैसी श खध्वनि करने वाला यहाँ दूसरा वासुदेव कौन जन्मा है ?

मुनि सुव्रत तीर्थंकर ने उसके मनोगत विचारों को जानकर स्वतः उसे स बोधन करके कृष्ण वासुदेव के आने की सारी हकीगत स्पष्ट करी । तब उत्तम पुरुष वासुदेव को मिलने की भावना से कपिल वासुदेव ने तीर्थंकर को व दन नमस्कार करके शीघ्र वहाँ से प्रयाण किया । वह लवण समुद्र के तट पर आया तबतक कृष्ण वासुदेव समुद्र में बहुत दूर जा चुके थे । कपिल वासुदेव ने कृष्ण के रथ की ध्वजा मात्र देखी और दोनों का श ख ध्वनि से मिलाप हुआ । फिर कपिल वासुदेव अमरक का राजधानी में पद्मनाभ राजा के पास पहुँचा और पूछा कि यह सब नगरी तहस-नहस क्यों हो रही है ? पद्मनाभ ने सत्य बात छिपाते हुए अपनी सेखी लगाई कि आपका राज्य छीनने को आये कृष्ण को मक्तने वापिस भगा दिया । तब वासुदेव कपिल बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे देश निकाला देकर उसके पुत्र को राजा बनाया । पद्मरथ अपने कर्मों को भुगतता हुआ मरकर दुर्गति का भागी बना । इस प्रकार यहाँ दो वासुदेव का श ख से मिलन रूप आश्चर्य भी घटित हुआ । दस अच्छेरों में इसकी भी गिनती है । दूसरे भरतक्षेत्र में मुनि सुव्रतनाम के बावीसवें तीर्थंकर होने का भी यहाँ से ज्ञात होता है । उस समय अपने भरतक्षेत्र में अरिष्ट नेमिनाथ बावीसवें तीर्थंकर विचरण कर रहे थे ।

प्रश्न–९ : कृष्ण वासुदेव भी कभी पाँड़वों पर क्रुद्ध हो गये थे और उन्हें देशनिकाला दे दिया था ?

उत्तर– कृष्णवासुदेव और पाँड़व आपस में निकटतम भाई-भाई थे अर्थात् पाँचों पाँड़व कृष्ण की भूआ के पुत्र थे । कु ती समुद्र विजयजी आदि दसों दशार्ह की सगी बहिन थी । अतः प्रार भ से ही कृष्ण एव पाँड़वों में घनिष्ट मित्रता थी । अमरक का से द्रौपदी को लेकर सभी वापिस आ रहे थे । समुद्र पार कर पाँड़वों को आगे चलने का कहकर कृष्णजी लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव के पास आभार प्रदर्शित करने मिलने गये ।

पाँचों पाँड़व ग गा नदी के किनारे आये । नौका की शोध करी और नौका से ग गानदी पार करी । भवितव्यतावश उन्हें मजाक सूझी और कृष्ण के बल की परीक्षार्थ नावा को वापिस नहीं भेजी, छिपाकर रख दी । कृष्ण को कोई साधन नहीं मिलने से वे एक हाथ से रथ को लेकर एक हाथ से तैर कर नदी पार करने लगे । बीच में थक जाने पर ग गा देवी ने विश्राम के लिये स्थान दिया । विश्राम कर पुनः तैर कर ग गानदी पार करी । पाँड़वों से मिले, पूछा– तुम नदी पार करके किस तरह पहुँचे । मक्त तो बीच में ही थक गया था । सही बात पाँड़वों ने कह दी । कृष्ण बुरी तरह थक कर आये थे और बलपरीक्षा की बात सुनकर बहुत क्रोधित हुए ।

कृष्ण ने कहा कि दो लाख योजन का समुद्र पार कर पद्मनाभ को हराकर द्रौपदी को लेकर आये तब तुमने मेरा बल नहीं देखा तो अब देख लो, कहकर क्रोध में लाल बने कृष्ण ने पाँचों के रथ का चूरेचूरा कर दिया और पाँचों को अपने राज्य से देश निकाले की कड़क सजा दे दी । पाँचों पाँड़व बहुत लज्जित हुए, दुःखी हुए । कृष्ण द्वारिका चले गये । पाँड़व हस्तिनापुर आये । पिता पाँडुराजा से कहा– हमें कृष्ण ने देश निकाले की सजा दी है । पाँडु के पूछने पर सारी हकीकत कही । पाँडुराजा ने उन्हे ठपका दिया और कहा कि यह तुमने बहुत बुरा किया है ।

पाँडुराजा ने कृष्ण को मनाने, प्रसन्न करने हेतु कु ती को द्वारिका भेजा । कु ती ने कहा कि पूरे अर्धभरत क्षेत्र में तुम्हारा राज्य है, वे कहां जायेंगे । कृष्ण ने कहा– मेरे वचन में फेर बदल नहीं होगा, वे दक्षिणी समुद्र किनारे जाकर पाँडुमथुरा नवी बसाकर मेरे अदृष्ट सेवक बनकर रहें । ऐसा कहकर कु ती को विदा किया । कु ती के आने पर पाँडुराजा ने समाचार पूछे और पाँड़वों को बुलाकर कृष्ण का स देश-आदेश सुना दिया ।

पाँचों पाँड़व अपने दलबल के साथ वहाँ से चल दिये और समुद्र तट पर जाकर पाँडुमथुरा बसाकर सुखपूर्वक रहने लगे । इस प्रकार होनहार

के वश द्रौपदी से नारद और पाँड़वों से कृष्ण कोपित हुए । पाँडुराजा एव कुती ने अपने जीते ही पाँचों पुत्रो को हस्तिनापुर से विदाई दे दी । वे उनके साथ नहीं गये । यथासमय पाँडुराजा ने दीक्षा लेकर आत्मसाधना करी ।

प्रश्न–१० : पाँचों पाँड़वों ने अपना आत्मकल्याण किस प्रकार किया ?

उत्तर– पाँडु मथुरा में रहते हुए द्रौपदी ने पुत्र को जन्म दिया उसका नाम पाँडुसेन रखा गया । कालान्तर से वहाँ धर्मघोष आचार्य विचरण करते हुए पधारे । पाँड़वों ने धर्मोपदेश सुना, दीक्षा लेने को तत्पर हुए, द्रौपदी भी दीक्षा में सहमत हुई । पाँडुसेन को राज्य सोंप कर यथासमय छहों ने दीक्षा ली । पाँचों पाँड़वों ने १४ पूर्वों तक का ज्ञान हासिल किया । तप स यम से आत्मा को भावित करते हुए गुरु आज्ञा से स्वत त्र विचरण करने लगे ।

द्रौपदी ने ग्यारह अ गों का अध्ययन किया और स यम की आराधना करके पाँचवें देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुई । पाँचों पाँड़व विचरण करते-करते एक बार अर्हंत अरिष्टनेमि के दर्शन करने के स कल्प से मास-खमण के पारणे करते हुए जाने लगे । कि तु मार्ग में ही उन्होंने भगवान के मोक्ष जाने के समाचार सुने । उसी दिन मासखमण का पारणा था । आहार लेकर पहुँचे ही थे । तब भगवान के मोक्ष जाने के समाचार मिलने पर आहार को परठ कर पाँचों ने शत्रुजय पर्वत पर चढ़कर स थारा किया । एक महीने का स थारा चला । सर्व कर्मक्षय कर पाँचों मोक्षगामी बने ।

प्रश्न–११ : कृष्ण वासुदेव ने पहले काल किया या पाँड़वों ने ?

उत्तर– अ तगड़ सूत्र के वर्णन अनुसार द्वारिका नगरी के विनाश के बाद कृष्ण और बलराम पाँड़वों के पास पा डुमथुरा जाने को निकले थे । उसी बीच में कौस ब वन में कृष्णवासुदेव के काल करने के बाद ही पाँड़वों ने दीक्षा ली थी ऐसा सूत्र से स्पष्ट होता है ।

प्रश्न–१२ : कौरवों पाँड़वों की लड़ाई का, जुगार खेलने एव १२ वर्ष के वनवास आदि का कोई वर्णन यहाँ नहीं है ?

उत्तर– यहाँ के वर्णन अनुसार तो पाँडुराजा के राज्यकाल में ही पाँचों पाँड़व कृष्ण की आज्ञा से हस्तिनापुर छोड़कर चले गये थे और पाडु मथुरा में रहते हुए ही उन्होंने दीक्षा ली थी । इस प्रकार के आगम वर्णन से तो महाभारत के युद्ध होने के उपलब्ध कथा की कोई शक्यता नहीं लगती है क्यों कि पाँडुराजा स्वय हस्तिनापुर का राज्य स भाल रहे थे तभी पाँड़वों को देश निकाला कृष्ण ने दे दिया था ।

प्रश्न-१३ : इस अध्ययन में सारभूत शिक्षा तत्त्व क्या उभर आते हक्त?

उत्तर- (१) धर्म और धर्मात्माओं के साथ किया गया अल्पतम खिलवाड़ व्यक्ति को भवोभव दुखदाई हो जाता है । जैसे नागश्री ने मुनि को जहर का दान देकर दुःख ही दुःख प्राप्त किया । (२) **पाप छिपाया ना छिपे** यह हमेशा दुष्कृत्य करते समय स्मरण में रखना चाहिये । वह कई गुना बढ़कर प्रगट हो जाता है । नागश्री का जहर बहराना गुप्त था फिर भी वह प्रकट हो गया । (३) कर्मों का विपाक महा भयानक होता है । नागश्री उसी भव में भिखारण बनी, अ त में सौलह रोगों की व्यथा भुगती और नरक में गई । (४) मुनि जीवन की साधनाएँ जिनशासन में विविध प्रकार की होती है। गच्छ और गुरु के साथ में रहते हुए भी मुनि बहुत बड़ी तपस्या के पारणा लाने में एव परठने में स्वत त्र और स्वावल बी रह सकता है । यथा- धर्मरुचि अणगार के गुरु उन्हें मासखमण की तपस्या में भी पारणा लाने एव जहर का आहार परठने जाने की अनुमति दे देते हक्त, दूसरे साधु को भेजने का प्रस्ताव भी नहीं रखते हक्त ।

(५) परठने की गुरु आज्ञा होते हुए भी धर्मरुचि ने उस जहर को स्वय पी लिया, यह भी समय पर किया गया खुद का विवेक समझना । विवेक का महत्व विनय और आज्ञा से भी बढ़कर समझना, यह भगवदाज्ञा की आराधना में है विराधना में नहीं । (६) साधु को किसी का गुप्त अवगुण नहीं खोलना चाहिए । फिर भी धर्म पर स भावित आक्षेप आपत्ति से बचने हेतु धर्मरुचि अणगार के गुरु को नागश्री का नाम प्रकट करना आवश्यक हो गया । अन्यथा यह बदनामी होती कि साधुओं ने जहर दे दिया । क्यों कि ज गल में पड़े मुनि के मृत शरीर में जहर का परिणमन स्पष्ट दिख रहा था । यह भी धर्मघोष आचार्य का विवेक व्यवहार था कि उन्होंने साधुओं से जगह-जगह घोषणा करवाई कि नागश्री के दिये गये जहरी शाक के खाने से मुनि की मृत्यु हुई । धर्मघोष आचार्य चौदह पूर्व ज्ञान के धारक आगम विहारी थे । (७) परस्त्री सेवन का त्याग धार्मिक जीवन के लिये एव व्यवहारिक जीवन के लिये भी अत्य त आवश्यक समझना चाहिये । परस्त्री ल पट पुरुषों का परभव तो बिगड़ता ही है किन्तु कई व्यक्ति इस भव में भी महान दुःखी और निन्दित हो जाते है, यथा- द्रौपदी पर ललचाने वाला अमरक का राजा **पद्मरथ** । शास्त्र में भी कहा है- **कामे य पत्थेमाणा अकामा ज ति दुग्गइ** । अर्थात् इन्हें इच्छित भोग मिल भी

नहीं पाते, तो भी विचारों की मलिनता से ही ये दुर्गति के भागी बनते हक्त अतः मर्यादित व्रतधारी जीवन अर्थात् स्वदार स तोष व्रत अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये । (८) कथानक के सभी प्रस ग उपादेय नहीं होते हक्त उसमें कई प्रस ग केवल ज्ञातव्य होते हक्त एव कुछ ही उपादेय-धारण करने योग्य होते हक्त और कोई त्याग करने योग्य बातें होती है एव कई आदर्श शिक्षाएँ होती है । अतः ऐसी कथाओं में से विवेकपूर्वक क्षीरनीर बुद्धि से आदर्श ग्रहण करने चाहिये । (९) भाषाप्रयोग का भी परिणाम पर असर पड़ता है, अतः इसमें विवेक रखना चाहिये । यथा- पद्मरथ से युद्ध करने जाते समय पाँड़वों के शब्द उच्चारण और कृष्ण के शब्द उच्चारण । यथा- या तो हम रहेंगे या पद्मरथ(पाँड़व), मक्त जीतकर आऊँगा(कृष्ण),

(१०) बड़े पुरुषों से कभी भी हँसी ठट्ठा या कुतुहल वृत्ति का व्यवहार नहीं करना चाहिये । अन्यथा अति प्रेम भी टूटने का कारण बन जाता है, यथा- पाँड़वों ने कृष्ण की शक्ति देखने का भोलापन किया । जिसका परिणाम यह हुआ कि अपमानित होकर पूरे परिवार को एव देश को छोड़कर समुद्र के किनारे जाकर आजीवन रहना पड़ा । माता-पिता ने भी पाँड़वों का साथ नहीं किया अपितु पाँचों को जाने का आदेश दे दिया । जीवन भर के लिए हस्तिनापुर भी उनका छूट गया । (११) उत्तम पुरुष वास्तव में वे होते हक्त जो अपना पिछला जीवन भी सुधार लेते हक्त । कहा भी है- **"पाछल खेती निपजे, तो भी दारिद्र दूर ॥"** पाँचों पाँड़वों ने पुत्र को राज्य भार स भला कर स यम ग्रहण कर आत्म कल्याण साध लिया । सारी ही उम्र स सार की आसक्ति में नहीं बिताई ।

(१२) तीर्थंकर की मौजुदगी में भी स्थविरों के पास दीक्षा ली जाती है । यथा- पाँचों पाँड़वों ने धर्मघोष आचार्य के पास दीक्षा ली । तब अरिष्टनेमिनाथ भगवान विचरण कर रहे थे ।

अध्ययन-१७ : आकीर्ण अश्व

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का दृष्टा त रूप कथानक किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- हस्तीशीर्ष नगर के कुछ नौका वणिक-"जलयान द्वारा समुद्र के रास्ते विदेश जाकर व्यापार करने वाले व्यापारी," व्यापार के लिये निकले ।

वे लवण समुद्र में जा रहे थे कि अचानक तूफान आ गया। नौका आ धी के थपेड़ों से ड़गमगाने लगी । चलित विचलित होने लगी । इधर-उधर चक्कर खाने लगी । निर्यामक की बुद्धि भी चक्कर खाने लगी । उसे दिशा का भान नहीं रहा नौका किधर जा रही है, किस और जाना है, यह भी भूल गया । वणिकों के भी होश-हवास ठिकाने नहीं रहे । वे देवी-देवताओं की मनौती मानने लगे ।

गनीमत रही कि तूफान थोड़ी देर में शा त हो गया । निर्यामक की स ज्ञा जागृत हुई । दिशा का बोध हो आया । नौका कालिक द्वीप के किनारे जा लगी । कालिक द्वीप में पहुँचने पर वणिकों ने देखा– यहाँ चा दी, सोने, हीरों, रत्नों की प्रचुर खाने हक्त । उन्होंने वहाँ उत्तम जाति के विविध वर्णों वाले अश्व भी देखे । मगर वणिकों को अश्वों से कोई प्रयोजन नहीं था, अतएव वे चा दी, सोना, हीरा आदि भर कर वापिस अपने नगर हस्तिशीर्ष लौट आए ।

तत्कालीन पर परा के अनुसार वणिक, बहुमूल्य उपहार लेकर राजा कनककेतु के समक्ष गए । राजा ने उनसे पूछा– देवानुप्रियो ! आप लोग अनेक नगरों में भ्रमण करते हक्त, समुद्रयात्रा भी करते हैं तो इस बीच कुछ अद्भुत अनोखी वस्तु देखने में आई है ? वणिकों ने कालिक द्वीप के अश्वों का उल्लेख किया, उनकी सु दरता का वर्णन कह सुनाया । तब राजाने वणिकों को अश्व ले आने का आदेश दिया ।

वणिक राजा के सेवकों के साथ पुनः कालिक द्वीप गए । किन्तु उन्होंने पहले ही देखा कि यहाँ के अश्व मनुष्य की ग ध पाकर दूर भाग गए थे । वे सहज ही पकड़ में आने वाले नहीं थे । अतएव वे पाँचों इन्द्रियों को लुभाने वाली सामग्री लेकर चले । कालिकद्वीप पहुँच कर उन्होंने वह सामग्री अलग-अलग स्थानों में बिखेर दी । जो घोड़े इन्द्रियों को वश में न रख सके और उस सामग्री के प्रलोभन में आ गए, वे ब धन में फँस गए, पकड़े गए और हस्तिशीर्ष नगर में ले आए गए । वहाँ प्रशिक्षित होने में उन्हें चाबुकों की मार खानी पड़ी तथा वध-ब धन के अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़े । उनकी स्वाधीनता का सुख नष्ट हो गया, पराधीनता में जीवन यापन करना पड़ा ।

कुछ अश्व ऐसे भी थे जो वणिकों द्वारा बिखेरी गई लुभावनी सामग्री के जाल में नहीं फँसे थे । वे उस सामग्री से विमुख होकर दूर चले गए ।

उनकी स्वाधीनता नष्ट नहीं हुई । पराधीनता के कष्टों से बचे रहे । उन्हें न चाबुक आदि की मार सहनी पड़ी और न सवारी का काम करना पड़ा । वे स्वेच्छापूर्वक कालिक द्वीप में ही सुख से रहे ।

प्रश्न–२ : इस दृष्टा त को देकर शास्त्रकार ने साधकों को किस प्रकार की शिक्षाएँ दी है ?

उत्तर– (१) प्रस्तुत अध्ययन का नाम आकीर्णज्ञात है । आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति का अश्व । अश्वों के उदाहरण द्वारा यह प्रतिपादन किया गया है कि जो साधक इन्द्रियों के वशवर्ती होकर, अनुकूल विषयों को प्राप्त करके उनमें लुब्ध बन जाते हक्त, वे अपनी रागवृत्ति की उत्कृष्टता के कारण दीर्घ काल तक भवभ्रमण करते हक्त । जन्म,जरा,मरण की वेदनाओं के अतिरिक्त भी उन्हें अनेक प्रकार की व्यथाएँ सहन करनी पड़ती है । इसके विपरीत, प्रलोभन जनक विषयों में जो आसक्त नहीं होते, जो इन्द्रिय विषयों से विमुख रहते हक्त, वे अपने वीतरागभाव के कारण सा सारिक यातनाओं से बच जाते हक्त । यही नहीं, वे सहज-स्वाभाविक असीम आत्मान द को प्राप्त कर लेते हक्त । **(२)** कथानक के समाप्त होने पर बीस गाथाओं में शिक्षा वचन कहे गये हक्त जिसका सारा श यह है–

१. कानों को सुख कर लगाने वाले, हृदय हारी मधुर वीणा, बाँसुरी, श्रेष्ठ मनोहर वाद्य, ताली आदि के शब्दों में इन्द्रियों के वशवर्ती जीव आन द मानते हक्त । आत्मार्थी साधक को इसमें आन द नहीं मानना चाहिये । मनोज्ञ या अमनोज्ञ कैसे भी शब्द सुनाई दे इसमें रुष्ट भी नहीं होना एव तुष्ट भी नहीं होना किन्तु दोनों अवस्था में समभाव और उपेक्षा भाव धारण करना चाहिये ।**२.** स्त्रियों के स्तन, पेट, मुख, हाथ, पैर, नेत्र आदि को देखने में एव उनकी विलास युक्त गति के देखने में इन्द्रियासक्त जीव आन द मानते हक्त । मुनि इनसे निर्लिप्त रहे । अन्य भी मनोज्ञ अमनोज्ञ रूपों में रुष्ट तुष्ट न होते हुए समभाव एव उपेक्षाभाव रखे । **३.** सुग धित पदार्थ धूप आदि की ग ध में एव फूलमाला, च दन, इत्र आदि की सुग ध सूंघने में एव इन पदार्थों के उपयोग करने में इन्द्रियासक्त जीव आन द मानते हक्त आत्मार्थी मुनि इन सब में विरक्त रहे, मनोज्ञ सुग ध और अमनोज्ञ दुर्गंध का स योग मिल जाय तो रुष्ट या तुष्ट न होवे, समभाव और मध्यस्थ भाव में रहे । **४.** कड़वे तीखे कषेले खट्टे मीठे खाद्यपदार्थों में, फल, मेवा, मिष्टानों के खाने में, नमकीले स्वादिष्ट पदार्थों के खाने, चाटने, पीने में इन्द्रियासक्त अज्ञानी

प्राणी आन द मानते हक्त । ज्ञानी आत्मार्थी मुनि इन सब शुभाशुभ पदार्थों के आवश्यक होने पर सेवन करते हुए भी उसमें आन द एव दुःख का अनुभव नहीं करे । किन्तु पुद्गल स्वभाव और उदरपूर्ति के लक्ष्य से ही आवश्यक खाद्यपदार्थों का उपयोग करे । **५.** स्पर्शेन्द्रिय में आसक्त बने जीव अनेक ऋतुओं के मनोहर सुखकर स्पर्श में तन को सुख देने वाले आसन, सयन, फूल, माला आदि के स्पर्श में और मन को सुखकर स्त्री आदि के स्पर्श में रमण करते हक्त्रआन द मानते हक्त्रकिन्तु ज्ञानी विरक्त आत्माओं को इन इन्द्रियो विषयों को महान दुःख का परिणामक समझ कर इनसे विमुख रहना चाहिये । मुनि अपनी मर्यादा में रहते हुए मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्श के प्राप्त होने पर समभाव में रहे एव सहन करे । **(३)** इन इन्द्रिय विषयों को स सार की मूल–जड़ कहा गया है, यथा– **जे गुणे से मूल ठाणे, जे मूल ठाणे से गुणे ।** –***आचारा ग ।*** इन पाँचों इन्द्रियों के विषय विकार की आसक्ति ही स सार भ्रमण और जन्म-मरण की जड़ है । एक-एक इन्द्रिय के अ दर आसक्त होकर दुःख पाते हुए मरने वाले प्राणियों के दृष्टा त भी इन गाथाओं में दिए हक्त, यथा– १. श्रोतेन्द्रिय की आसक्ति से–तीतर २. चक्षु इन्द्रिय की आसक्ति से–पत गा ३. घ्राणेन्द्रिय सुग ध की आसक्ति से–सर्प ४. खाने की आसक्ति से–मच्छ ५. स्पर्शेन्द्रिय की आसक्ति से–हाथी । ये जीव महान कष्टों को और मृत्यु को प्राप्त करते हक्त। **(४)** इसलिए साधना में उपस्थित विरक्तात्मा ज्ञानी जनों को इन इन्द्रियों के मनोज्ञ अमनोज्ञ विषयों के स योग प्राप्त होने पर राग या द्वेष नहीं करना चाहिये । इनकी निंदा या प्रश सा भी नहीं करना । इनकी आसक्ति या घृणा भी नहीं करना चाहिए । खुश होकर इनका अति उपयोग भी नहीं करना एव अप्रसन्न होकर स कल्प विकल्पों से आर्तध्यान रौद्रध्यान भी नहीं करना चाहिये । अर्थात् सावधानी रख कर पुद्गल स्वाभाव के चि तन को उपस्थित रखकर एव अपने कर्म स योगजन्य अवस्थाओं स योगों की प्राप्ति जानकर पूर्ण समभाव समाधि भाव में रहना चाहिये । साथ ही आत्मान द में एव ज्ञान, वैराग्य, तप, स यम तथा भगवदाज्ञा में रमण करते रहना चाहिये ।

अध्ययन–१८ : सु सुमा

प्रश्न–१ : यहाँ दृष्टा त रूप में सर्व प्रथम सु सुमा बालिका की घटना किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– सु सुमा सोने (स्वर्ण)के पालने में झूली, सुख में पली, राजगृह नगर के धन्य सार्थवाह की लाड़ली कुमारी कितनी अभागिनी कैसा करुण अ त हुआ उसके जीवन का, यह इस अध्ययन में वर्णित है ।

धन्य सार्थवाह के पाँच पुत्रों के पश्चात् उसका जन्म हुआ था । जब वह छोटी थी तब चिलात(किरात) दास उसे अड़ौस-पड़ौस के बच्चों के साथ खेलाया करता था । यही उसका मुख्य काम था । चिलात बड़ा नटखट था, बहुत उद्दंड़ और दृष्ट भी । खेल के समय वह बालक-बालिकाओं को बहुत सताता था । बहुत बार वह उनकी कोड़िया छीन लेता, लाख के गोले छिपा लेता, वस्त्र हरण कर लेता । कभी उन्हें धमकाता, मारता, पीटता । उसके मारे बालकों का नाकों दम था । वे घर जाकर माता-पिता से उसकी शिकायत करते । धन्य सेठ उसे ड़ा टते । मगर वह अपनी आदत से बाज न आया । उसकी हरकतें बढ़ती ही गई । एक बार बालकों के अभिभावक जब बहुत क्रुद्ध हुए, रूष्ट हुए, तब धन्य सार्थवाह ने चिलात को खरी-खोटी सुना कर अपने घर से निकाल दिया ।

चिलात अब पूरी तरह स्वच्छ द और निर कुश हो गया । उसे कोई रोकने वाला या फटकारने वाला नहीं था । अतएव वह जुआ के अड्डों में, मदिरालयों में, वेश्यागृहों में; इधर-उधर भटकने लगा । उसके जीवन में सभी प्रकार के दुर्व्यसनों ने अड्डा जमा लिया ।

राजगृह से कुछ दूरी पर सि हगुफा नामक एक चोरपल्ली थी । उसमें पाँच सौ चोरों के साथ उनका सरदार विजय नामक चोर रहता था । चिलात उस चोर पल्ली में जा पहुँचा । वह बड़ा साहसी, बलिष्ट और निर्भीक तो था ही, विजय ने उसे चोरकलाएँ चोर विद्याएँ और चोरम त्र सिखला कर चौर्यकला में निष्णात कर दिया । विजय की मृत्यु के पश्चात् वह चोरों का सरदार सेनापति भी बन गया ।

तिरस्कृत करके घर से निकाल देने के कारण धन्य सार्थवाह के प्रति उसके मन में प्रतिशोध की भावना थी । किन्तु सु सुमा पर उसकी प्रीति थी । उसने एक बार सब साथियों को एकत्र करके धन्य का घर लूँटने का निश्चय प्रकट किया । सब साथी उससे सहमत हो गए । चिलात ने कहा– लूँट में जो धन मिलेगा वह सब तुम्हारा होगा, केवल सु सुमा लड़की मेरी होगी ।

निश्चयानुसार एक रात्रि में धन्य सार्थवाह के घर ड़ाका ड़ाला

गया । प्रचुर स पत्ति और सु सुमा को लेकर चोर जब वापिस लौट गए । तब धन्य सेठ, जो कहीं छिपकर अपने प्राण बचा पाया था, नगर रक्षकों के यहाँ गया । उसके द्वारा समग्र वृत्तात सुनकर नगर रक्षकों ने सशस्त्र होकर चोरों का पीछा किया । धन्य और उसके पाँचों पुत्र भी साथ चले ।

नगर रक्षकों ने निर तर पीछा करके चिलात चोर को पराजित कर दिया । तब उसके साथी पाँच सौ चोर चोरी का माल छोड़कर इधर-उधर भाग गए । नगर रक्षक वह धन स पत्ति लेकर वापिस लौट गए । चिलात चोर सु सुमा को लेकर अकेला भागा, धन्य सेठ अपने पुत्रों के साथ उसका लगातार पीछा करता चला गया । यह देखकर बचने का कोई उपाय न रहने पर चिलात ने सु सुमा का गला काट ड़ाला और धड़ को वहाँ छोड़, मस्तक साथ लेकर अटवीं में कहीं भाग गया । मगर भूख-प्यास से पीड़ित होकर वह अटवी में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

उधर धन्य सार्थवाह ने जब अपनी पुत्री का मस्तकविहीन निर्जीव शरीर देखा तो उसके शोक-स ताप का पार न रहा । वह बहुत देर तक रोता–विलाप करता रहा ।

मृत पुत्री के शरीर से प्राण रक्षा :– धन्य और उसके पुत्र चिलात चोर का पीछा करते-करते बहुत दूर पहुँच गये थे । जोश ही जोश में उन्हें पता ही नहीं चला कि हम नगर से कितनी दूर आ गए हक्त । अब वह जोश निःशेष हो चुका था । वे भूख-प्यास से बुरी तरह पीड़ित हो गए थे । आसपास पानी तलाश किया, मगर कहीं एक बूँद न मिला ।भूख-प्यास की इस स्थिति में लौट कर राजगृह तक पहुँचना भी स भव नहीं था । बड़ी विकट अवस्था थी । सभी के प्राणों पर स कट था ।

यह सब सोचकर धन्य सार्थवाह ने कहा– भोजन-पान के बिना राजगृह पहुँचना स भव नहीं है, अतएव मेरा हनन करके मेरा मा स और रुधिर का उपभोग करके तुम लोग सकुशल घर पहुँचो । किन्तु ज्येष्ठ पुत्र ने पिता के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया । उसने अपने वध की बात कही, पर अन्य भाईयों ने उसे भी मान्य नहीं किया । इस प्रकार कोई भी भाई के वध के लिये सहमत नहीं हुआ। तब धन्य ने सु सुमा के मृत कलेवर से भूख-प्यास की निवृत्ति करने का प्रस्ताव किया । यही निर्णय रहा । सु सुमा के शरीर का आहार करके अपने पुत्रों के साथ धन्य सार्थवाह सकुशल राजगृह पहुँच गया । यथासमय धन्य ने प्रव्रज्या अ गीकार की । सौधर्म

देवलोक में उत्पन्न हुआ । वह महाविदेह क्षेत्र से सिद्धि प्राप्त करेगा ।

प्रश्न–२ : इस घटना के वर्णन से साधकों को आहार करने में अनाशक्ति रखने का किस प्रकार समझाया गया है ?

उत्तर– धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने सु समा के मा स-रुधिर का आहार शरीर के पोषण के लिये नहीं किया था । जिव्हा-लोलुपता के वशीभूत होकर भी नहीं किया था, किन्तु राजगृही तक पहुँचने के एक मात्र उद्देश्य से ही किया था । इसी प्रकार साधक मुनि को चाहिए कि वह इस अशुचि शरीर के पोषण के लिए नहीं वरन मुक्तिधाम तक पहुँचने के लक्ष्य से ही आहार करे ।

जिस प्रकार धन्य सार्थवाह को अपनी पुत्री के मा स-रुधिर के सेवन में लेशमात्र भी आसक्ति या लोलुपता नहीं थी, उसी प्रकार साधक के मन में आहार के प्रति अणुमात्र की आसक्ति नहीं होनी चाहिये । उच्चतम कोटी की अनासक्ति प्रदर्शित करने के लिये यह उदाहरण अत्य त उपयुक्त है । इस पर सही दृष्टिकोण से शास्त्रकार के आशय को समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

अपनी साधना को उन्नतोन्नत बनाने के लक्ष्य वाले साधकों को इस दृष्टा त में बताए गए आदर्श के अनुसार आहार के प्रति अपनी उदासीन भावनाओं का सर्जन करना चाहिये । जिसके लिये आहार करते समय एव अन्य समय में इस दृष्टा त का पुनः पुनः अनुचि तन करते रहना चाहिए कि आप्त पुरुषों ने भिक्षु को आहार के लिये ऐसी मनोवृत्ति रखने का उपदेश किया है । अपने परिवारिकजनों का अथवा किसी मानव के मृत कलेवर का आसक्ति पूर्वक आहार करने वाला मनुष्य की कोटी में नहीं गिना जा सकता ।

उसी प्रकार भिक्षा में प्राप्त आहार को गृहत्यागी निर्ग्रंथ आसक्ति पूर्वक खावे तो उनकी वह वृत्ति साधुत्व को चेलेंज देने वाली होती है अर्थात् वह साधक अपने भाव स यम से हाथ धो बैठता है । स यम की सच्ची आराधना वह नहीं कर सकता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

दीपक झोलो पवन को, नर ने झोलो नार ।
साधु ने झोलो जीभ को, डूबे काली धार ॥

जिस प्रकार धन्य सार्थवाह ने केवल नगर में पहुँचने मात्र के लिये

ही वह आहार किया, उसके स्वाद में किसी भी प्रकार का आन द स कल्प नहीं किया । वैसे ही श्रमण निर्ग्रंथों को केवल मुक्ति प्राप्त करने हेतु एव ग्रहण किये गये स यम की पालना के लिए अपने शरीर की अत्यावश्यक शक्ति को बनाए रखने के लिए ही आहार करना चाहिये । अन्य कोई भी हेतु आहार करने में नहीं होना चाहिये । इसी अपेक्षा को विस्तृत रूप में बताने के लिये आहार करने के छः कारण उत्तराध्ययन सूत्र में और ठाणा ग सूत्र आदि में कहे गये हैं ।

शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम् अर्थात् धर्म साधना का प्रथम या प्रधान साधन शरीर है । शरीर की रक्षा पर ही स यम की रक्षा निर्भर है । मानव शरीर के माध्यम से ही मुक्ति की साधना स भव होती है । अतएव त्यागी वैरागी उच्चकोटी के स तों को भी शरीर टिकाए रखने के लिये आहार करना पड़ता है । तीर्थंकरों ने आहार करने का विधान भी किया है । किन्तु स तजनों का आहार अपने लक्ष्य की पूर्ति के एक मात्र ध्येय को समक्ष रख कर होना चाहिये । शरीर की पुष्टि, सु दरता, विषयसेवन की शक्ति, इन्द्रिय-तृप्ति आदि की दृष्टि से नहीं ।

साधु जीवन में अनासक्ति का बड़ा महत्त्व है । गृहस्थों के घरों से गोचरचर्या द्वारा साधु को आहार उपलब्ध होता है । वह मनोज्ञ भी हो सकता है, अमनोज्ञ भी हो सकता है, आहार अमनोज्ञ हो तो उस पर अप्रीति भाव, अरुचि या द्वेष का भाव उत्पन्न न हो और मनोज्ञ आहार करते समय प्रीति या आसक्ति उत्पन्न न हो, यह साधु के समभाव की कसौटी है । यह कसौटी बड़ी विकट है । आहार न करना उतना कठिन नहीं है जितना कठिन है मनोहर सुस्वादु आहार करते हुए भी पूर्ण रूप से अनासक्त रहना । विकार का कारण विद्यमान होने पर भी चित्त को विकृत न होने देने के लिये दीर्घकालीन अभ्यास, धैर्य एव दृढ़ता की आवश्यकता होती है ।

धन्य सार्थवाह को अपनी बेटी सु सुमा अतिशय प्रिय थी । उसकी रक्षा के लिये उसने सभी स भव उपाय किए थे । उसके निर्जीव शरीर को देख कर वह स ज्ञाशून्य होकर धरती पर गिर पड़ा, रोता रहा । इससे स्पष्ट है कि सु सुमा उसकी प्रिय पुत्री थी । तथापि प्राणरक्षा का अन्य उपाय न रहने पर उसने उसके निर्जीव शरीर के मा स-शोणित का आहार किया । कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार का आहार करते समय धन्य के मन में

किस सीमा का अनासक्त भाव रहा होगा । निश्चय ही लेशमात्र भी आसक्ति का स स्पर्श उसके मन को नहीं छूआ होगा, अनुराग निकट भी नहीं फटका होगा । धन्य ने उस आहार में तनिक भी आन द न माना होगा । राजगृह नगर और अपने घर पहुँच ने के लिये प्राण टिकाए रखना ही उसका एकमात्र लक्ष्य रहा होगा ।

साधु को इसी प्रकार का अनासक्त भाव रखकर आहार करना चाहिये । अनासक्ति को समझाने के लिये इससे अच्छा तो दूर रहा, इसके समकक्ष भी अन्य उदाहरण मिलना स भव नहीं है । यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । इसी दृष्टिकोण को समक्ष रख कर इस उदाहरण की अर्थघटना करनी चाहिये ।

अध्ययन-१९ : पु ड़रीक

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का दृष्टा त रूप कथानक किस प्रकार है?

उत्तर- पु ड़रीक क ड़रीक :- प्रस्तुत अध्ययन का कथानक मानवजीवन में होने वाले उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्र उपस्थित करता है । जो कथानक यहाँ प्रतिपादित किया गया है, वह महाविदेह क्षेत्र का है ।

महाविदेह क्षेत्र के पूर्वीय भाग में पुष्कलावती विजय में पु ड़रीकिणी राजधानी साक्षात् देवलोक के समान मनोहर एव सु दर है । बारह योजन ल बी और नौ योजन चोड़ी है । वहाँ के राजा महापद्म के दो पुत्र थे- पु ड़रीक और क ड़रीक ।

एक बार वहाँ धर्मघोष आचार्य का पदार्पण हुआ । धर्मदेशना श्रवण कर और स सार की असारता का अनुभव करके राजा महापद्म दीक्षित हो गये । बड़ा भाई पु ड़रीक राजसि हासन पर आसीन हुआ । महापद्म मुनि स यम और तपश्चर्या से आत्मा को विशुद्ध करके यथासमय सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये ।

क ड़रीक की दीक्षा :- किसी समय दूसरी बार पुनः स्थविर का आगमन हुआ । इस बार धर्मोपदेश श्रवण करने से राजकुमार क ड़रीक को वैराग्य उत्पन्न हुआ । उसने राजा पु ड़रीक बड़े भाई से दीक्षा की अनुमति मा गी ।

प ुड़रीक ने उसे राजसि हासन प्रदान करने की पेशकश की, मगर क ड़रीक ने उसे स्वीकार नहीं किया । आखिर वह दीक्षित हो गया ।

दीक्षा के पश्चात् स्थविरों के साथ क ड़रीक मुनि देश देशान्तर में विचरने लगे, कि तु रूखा-सूखा आहार करने के कारण उनका शरीर रुग्ण हो गया । स्थविर जब पुनः पु ड़रीकिणी नगरी में आए तो राजा पु ड़रीक ने क ड़रीक मुनि को रोगाक्रान्त देखा । पु ड़रीक ने स्थविर मुनि से निवेदन किया– भ ते ! मक्त क ड़रीक मुनि की चिकित्सा कराना चाहता हूँ । आप मेरी यानशाला में पधारे ।

स्थविर यानशाला में पधार गए । उचित चिकित्सा होने से क ड़रीक मुनि स्वस्थ हो गये । स्थविर मुनि वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए पर तु क ड़रीक मुनि राजसी भोजन-पान में ऐसे आसक्त हो गये कि विहार करने का नाम ही न लेते । पु ड़रीक उनकी आसक्ति और शिथिलता को समझ गए । क ड़रीक की आत्मा को जागृत करने के लिये एक बार पु ड़रीक ने उनके निकट जाकर व दन नमस्कार करके कहा– देवानुप्रिय ! आप धन्य है, आप पुण्यशाली है, आपका मनुष्यजन्म सफल हुआ है, आपने अपना जीवन धन्य बनाया है । मक्त पुण्यहीन हूँ, भाग्यहीन हूँ कि अभी तक मेरा मोह नहीं छूटा, मक्त स सार में फँसा हूँ ।

क ड़रीक को वह कथन रुचिकर तो नहीं हुआ फिर भी वह बड़े भाई की लज्जा के कारण, बिना इच्छा ही विहार कर गया । मगर स यम का पालन तो तभी स भव है जब अ तरात्मा में सच्ची विरक्ति हो, इन्द्रिय विषयों के प्रति कि चित् भी लालसा न हो और आत्महित की गहरी लगन हो । क ड़रीक में यह कुछ भी शेष नहीं रहा था । अतएव कुछ समय तक वह स्थविर के पास रह कर और सा सारिक लालसाओं से पराजित होकर फिर लौट आया । वह लौट कर राजप्रासाद की अशोक वाटिका में जाकर बैठ गया । लज्जा के कारण प्रासाद में प्रवेश करने का उसे साहस न हुआ ।

क ड़रीक का पतन और पु ड़रीक का कल्याण :– धायमाता ने उसे अशोक वाटिका में बैठा देखा । जाकर पु ड़रीक से कहा, पु ड़रीक अ तःपुर के साथ उनके पास गया और पूर्व की भाँति उनकी सराहना की । किन्तु इस बार पु ड़रीक की यह युक्ति काम न आई । क ड़रीक चुपचाप बैठा रहा । तब पु ड़रीक ने उससे पूछा–भगवन् ! आप भोग भोगना चाहते हक्त? क ड़रीक ने लज्जा और स कोच को त्याग कर **हाँ** कह दिया ।

पु ड़रीक राजा ने उसी समय क ड़रीक का राज्याभिषेक किया । उसे राजगद्दी दे दी और क ड़रीक के स यमोपकरण लेकर स्वय दीक्षित हो गए । उन्होंने प्रतिज्ञा धारण की कि स्थविर महाराज के दर्शन करके एव उनके निकट चातुर्याम धर्म अ गीकार करने के पश्चात् ही मक्त आहार पाणी ग्रहण करुँगा । वे पु ड़रीकिणी नगरी का परित्याग करके, विहार करके स्थविर भगवान के निकट जाने को प्रस्थान कर गए ।

क ड़रीक अपने अपथ्य आचरण के कारण अल्प काल में ही आर्तध्यान पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ । तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में, सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न हुआ । यह उत्थान के पश्चात् पतन की करुण कहानी है ।

पु ड़रीक मुनि उग्र साधना करके, अ त में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करके तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए । तद तर वे मुक्ति के भागी होंगे । यह उत्थान की ओर जाने का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन से साधक को किस प्रकार की शिक्षा एव बोध प्राप्त करने योग्य हक्त ?

उत्तर– (१) स यम जीवन में कभी रुग्णावस्था के कारण औषध-भेषज का सेवन करना हो या अन्यतर शक्तिवर्धक पौष्टिक दवा लेना आवश्यक हो जाय तो उसमें अनुभव एव विवेक की अत्यधिक आवश्यकता होती है । क्यों कि शक्तिवर्धक दवाएँ या रासायनिक दवाएँ कभी-कभी किसी व्यक्ति के मानस पर ऐसा प्रभाव जमा देती है कि जिससे ऐसोआराम या भोगाका क्षा की मनोवृत्ति प्रबल हो जाती है जो सामान्य या विशेष अनेक उपायों से भी अ कुश में नहीं हो सकती । यथा– शैलक राजर्षि एव क ड़रीक मुनि । दोनों ही दृष्टा त इस सूत्र में दिए गये हक्त । दोनों मुनियों के पथ भ्रष्ट हो जाने का निमित्त कारण औषध-भेषज चिकित्सा ही बनी थी ।

अतः मुनि जीवन में प्रवहमान साधकों को रसायनिक दवाएँ स्वय लेने में या किसी अन्य साधु को देने में परिपूर्ण विवेक रखना चाहिये । प्रायः अनेक साधु दवा की मात्रा में या पथ्य परहेज में अविवेक कर जाते हक्त । जिसका परिणाम नूतन रोगोत्पत्ति और जीवन विनाश तक में भी आ सकता है । कई साधक औषध-भेषज के निमित्त से स यम में शिथिल मानस वाले हो जाते हक्त और कोई स यमच्युत भी हो जाते हक्त ।

(२) विगय और महाविगयों का प्रचुर मात्रा में सेवन भी मानस में विकार दशा को जागृत करने का निमित्त बनता है । इसी कारण शास्त्र में तपरहित विगय सेवन कर्ता को पापश्रमण कहा है । विगयजन्य स भवित विकार तप के आचरण से उपशमित हो सकता है, वह सुसाध्य होता है कि तु औषध-जन्य विकार महा उन्मादकारी होता है ।

कुशल सेवानिष्ठ प थक के महिनों के प्रयास से शैलक राजर्षि का उन्माद शा त हो सका था । किन्तु प्रस्तुत अध्ययन वर्णित क ड़रीक मुनि का विकारोन्माद उसे पूर्णतः ले डूबा । तीन दिन के क्षणिक विनश्वर जीवन के लिये वर्षों की उनकी स यम तप की कमाई बरबाद हो गई । यह निकृष्टतम दर्जे का आत्म-दिवाला निकालने का दृष्टा त है ।

स यम में अस्थिर चित होने वाले साधकों के लिये यह दृष्टा त बहुत ही मार्मिक एव अनुचि तनीय है । साधक को चाहिए कि उसने जिस वैराग्य से स यम ग्रहण किया है उसी को सदा स्मृतिपट पर रखकर उसे दृढ़तर करते रहना चाहिये । अनेक प्रकार की मानसिक बाधाओं को भी ज्ञान, वैराग्य और विवेक से दूर करते रहना चाहिये ।

(३) अल्पकाल की आसक्ति जीवों को महान गर्त में पटक देती है और कि चित् काल का वैराग्य उत्साह भी प्राणी को महान शिखर पर पहुँचा देता है । क ड़रीक ने स यम त्याग कर दीर्घकाल तक इच्छित भोग आन द भी नहीं पाया । केवल आसक्ति परिणामों से ही उसकी दुर्गति अवश्य भावी हो गई । पु ड़रीक राजा वैराग्यपूर्ण स यम जीवन केवल तीन दिन ही प्राप्त कर सका किन्तु उत्कृष्ट विरक्ति, उत्कृष्ट उत्साह से तीन दिन के स यम और एक बेले के तप से गुरु सा निध्य में पहुँच कर आत्मकल्याण साध लिया ।(४) यह जानकर मुमुक्षु आत्माओं को आसक्तिभाव को क्षण भर भी नहीं टिकने देना चाहिये और वैराग्यभाव जब कभी भी प्राप्त होवे उसका पूर्ण स्वागत कर जीवन में समाचरण कर लेना चाहिये । तीन दिन तो क्या एक घड़ी भर का वैराग्य और तद्युक्त आचरण आत्मा का बेड़ा पार कर सकता है और क्षणभर की सफर की लापरवाही वर्षों की कमाई लुटेरों को लुटा देती है ।

(५) पु ड़रीक राजा ने स्वतः ही वेश पहिनकर दीक्षा अ गीकार की । फिर विहार कर गुरु के पास पहुँच कर पुनः गुरु मुख से स यम ग्रहण किया और प्रथम बेले का पारणा गुरु आज्ञा से स्वय ही लाए । वैराग्य की धारा वर्धमान

थी इसलिए निरस रुक्ष आहार लाए । पैदल विहार का प्रस ग, तपस्या तथा अचानक नया जीवन परिवर्तन था । उस आहार से पेट में और शरीर में दारुण वेदना रात्रि में उत्पन्न हुई । अवसर जानकर स्वतः आजीवन अनशन ग्रहण किया एव रात्रि में ही दिव गत हो गये । सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान में ३३ सागरोपम की उम्र के देव बने । क ड़रीक भी प्रबल इच्छा से राजा बना और तीसरे दिन रात्रि में मरकर सातवीं नरक में तेतीस सागरोपम की उम्र का नैरयिक बना ।

(६) विषय और कषाय आत्मा के महान लुटेरे हक्त, अनर्थों की खान है । आत्मगुणों के लिये अग्नि और ड़ाकू का काम करने वाले हक्त विषयभोगों को विष और कषायों को अग्नि की उपमा आगम में दी गई है । विष स्वस्थ ह्रस्ट पुष्ट शरीर का क्षणभर में खात्मा कर देता है । अग्नि अल्प समय में ही सब कुछ भस्म कर देती है । इसी तरह ये विषय और कषाय अल्प समय में दीर्घकाल की आत्म साधना का सफाया कर देते हक्त । विषयभोगों में अ धा बना मणिरथ, मदनरेखा के लिए छोटे प्रिय भाई की निरपराध हत्या कर देता है और स्वय भी स योगवश सा प के काट जाने से उसी दिन मर कर नरक में चला जाता है । "निर तर मासखमण की तपस्या करने वाला महातपस्वी भी यदि कषाय भावों में परिणत होता है तो वह बार बार जन्म मरण करता है ।" ***-सूय.अध्ययन-२, उद्देशक-१ ॥***

कषाय और विषय की तीव्रता वाले व्यक्ति चक्षुहीन नहीं होते हुए भी अ ध कहे गये है, यथा- मोहा ध, विषया ध, क्रोधा ध आदि ।

उत्तराध्ययन अध्ययन-१९ में विषयभोगों को जहरीले और मीठे कि पाक फल की उपमा दी गई है । (७) इस अ तिम अध्ययन में कामभोगों का दारुण दुःखमय परिणाम और स यम का श्रेष्ठ आन ददायक परिणाम बताया गया है ।

प्रश्न-३ : इस प्रथम श्रुतस्क ध के कथानकों, दृष्टा तों का स क्षिप्त हार्द किस प्रकार अ कित किया जा सकता है ?

उत्तर- (१) स सार भ्रमण के दुःखों की तुलना में स यम के कष्ट नगण्य है । स यम में अस्थिर बनी हुई आत्मा को बड़े ही विवेक से स्थिर करना चाहिये । यथा- भगवान महावीर ने **मेघमुनि को** ।

(२) किसी के वचन या आचरण का मौलिक आशय, उससे समझे बिना भ्रम या कल्पना से **भद्रा सेठानी** की तरह अपना माथा भारी नहीं करना

चाहिये ।अन्यथा रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिये ।"धर्म साधना का साधन एव प्रगति मार्ग का साथी होने से शरीर को आहार देना पड़ता है," ऐसी मनोवृत्ति से मुनि को आहार करना चाहिये । यथा- सेठ का **चोर को आहार** देना ।

(३) जीवन में अपने साध्य के प्रति दृढ़ आस्था होनी चाहिये, यथा- जिनदत्त पुत्र की अ ड़े के प्रति ।

(४) ग भीरता के साथ इन्द्रिय और मन का निग्रह कर उन्हें आत्मवश में (निय त्रण में) रखते हुए साधना में अग्रसर होना चाहिये । च चल और कुतुहल पूर्ण मनोवृत्तियाँ नहीं होनी चाहिये । ग भीर **कछुए** के समान स्थिर मानस होना चाहिये ।

(५) मार्ग भटके हुए साधक का तिरस्कार न करके कुशलता और आत्मीयता पूर्वक विनय भक्ति से उसका उद्धार करने का प्रयत्न करना चाहिये, यथा- **प थक** मुनि । औषध प्रयोग में अत्यधिक सावधानी वर्तनी चाहिए क्यों कि उसमें कई प्रकार के अपथ्यकारी पदार्थ प्रयुक्त होते हक्त । जिसकी मात्रा का अविवेक हो जाने पर वे पदार्थ बुद्धि भ्रष्ट एव धर्म च्युत कर देते हक्त्यथा- **शैलक** राजर्षि ।

(६) कर्म आत्मा को लेप युक्त **तुम्बे** के समान भारी बना कर स सार में डुबाते हक्त, ये कर्म पापों से पुष्ट होते हक्त, और पाप हिंसा आदि, क्रोध आदि, कलह निंदा आदि १८ हक्त । इनके त्याग से आत्मा हलुकर्मी बनते हुए क्रमशः मुक्त बन सकती है । अतः पापों का त्याग और कर्मों की निर्जरा करने में सदा पुरुषार्थ रत रहना चाहिए ।

(७) स यम में और आत्मगुणों में दिनों दिन विकास करते रहना चाहिये । किन्तु उपेक्षा या लापरवाही नहीं होनी चाहिये । उत्तरोत्तर बढ़ने का उत्साह रखना चाहिये, यथा- **धन्ना** सार्थवाह की **चौथी बहु-रोहिणी** ।

(८) साधनामय जीवन में **माया** कपट का अल्पतम आचरण भी नहीं होना चाहिये । क्यों कि माया मिथ्यात्व की जननी है और समकित को नष्ट करके स्त्रीत्व को प्राप्त कराने वाली है । यथा- **मल्ली भगवती** का पूर्व भव का कपट ।

(९) स्त्रियों के लुभावने हावभाव में फँसना खतरे की निशानी है । अपनी प्रतिज्ञा एव लक्ष्य से च्युत नहीं होना चाहिये । **जिनपाल** के समान दृढ़ रहना चाहिये ।

(१०) जीव अपने प्रयत्न विशेष से गुणों में शिखर पर भी पहुँच सकता है और अविवेक से अ धकारमय गर्त में भी । जीव की उत्थान और पतन दोनों अवस्थाएँ स भव है । यह जानकर सावधानीपूर्वक विकासोन्मुख बनना चाहिये । **च द्रमा की कला** वृद्धि के समान ।

(११) अपने या पराए किसी भी व्यक्ति के द्वारा कोई भी प्रतिकूल व्यवहार हो सब कुछ शा ति एव ग भीरता के द्वारा सम्यक् सहन करना चाहिये, चौथे **दावदव वृक्ष** के समान । इसमें यदि कि चित भी कमी की जायेगी तो खुद के स यम की ही विराधना होगी । अन्य तीन प्रकार के दावदव वृक्षों के समान ।

(१२) पुद्गल स्वभाव बदलते रहते हक्त मनोज्ञ या अमनोज्ञ पुद्गलों में प्रसन्नता- अप्रसन्नता या घृणा-आन द मानने के परिणामों का त्याग करने से ही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी समभावी बनता है । यथा- **सुबुद्धि** प्रधान ।

(१३) धर्मगुरुओं का **सत्स ग** प्राप्त होना आत्मविकास का श्रेष्ठ माध्यम है । अतः समय-समय पर सत्स ग लाभ का प्रयत्न रखना चाहिये । सत्स ग एव सुस स्कारों को पुष्ट करने वाले स योगों को जुटाते रहना चाहिये । तभी आत्मा धर्म में स्थिर रह सकती है । मनुष्य भव में आत्मसाधना को बिगाड़ने वाला भी कभी पशुयोनि में स योग पाकर साधना जीवन को सफल कर सकता है, यथा- **न द मणियार**(च ड़कौशिक आदि) । मनुष्यभव में ही सावधानी युक्त साधना करने का प्रयत्न रखना चाहिये ताकि पशु योनि में जाना ही न पड़े ।

(१४) दुःख आने पर ही अधिका शतः जीवों को धर्म का बोध लगता है या रुचि बढ़ती है, यथा- **तेतलीपुत्र** प्रधान । किन्तु सुख की घड़ियों में ही धर्म धारण कर लिया जाय तो जीव को दुःख की अवस्था देखनी न पड़े । धर्म के परिणामों की तीव्रता में दुःख भी सुख बन जाता है ।

(१५) अभिभावकों के हित सलाह की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । अनुभवी आत्मीयता युक्त व्यक्ति के आदेश का आदर करना चाहिये । **न दीफल** सरीखे वर्तमान सुख सुविधा में ही लुभान्वित न होकर भविष्य का या परिणाम का विचार करके ही कोई प्रवृत्ति करनी चाहिये ।

(१६) यदि किसी का भला न कर सको तो बुरा भी मत करो । मुनि को अभक्ति से अमनोज्ञ दान मत दो । यथा- **नागश्री** । बड़ों के साथ मश्करी कुतूहल करना अपने जीवन को बरबाद करना है, यथा- **पाँड़व** । अतः

सर्वत्र विवेकबुद्धि और भविष्य की विचारणा पूर्वक दीर्घ दृष्टि से आचरण करो अन्यथा स कट के पहाड़ खड़े हो जाते हक्त जैसे- **द्रौपदी** का **नारद** के साथ अविवेक । जीव दया और अनुक पा का महत्त्व खुद के सुख सुविधा से ज्यादा समझो । **दया धर्म का मूल है,** कीड़ियों की करुणा में **धर्मरुचि** अणगार ने स्वय का जीवन होम दिया ।

(१७) इन्द्रिय विषयों के लुभावने चक्कर में फँसना स्वय की स्वत त्रता नष्ट करना है, परत त्र बनना है । यथा-रत्नद्वीप के **अश्व** ।

(१८) आहार की आसक्ति कि चित् भी नहीं होना अपितु आहार करते हुए भी उन पुद्गलों के प्रति पूर्ण अनासक्ति भाव होना चाहिये । **मृत पुत्री के कलेवर** के खाने की उपमा से भावित अ तःकरण आहार करने के समय रखना चाहिये ।

(१९) साधना युक्त जीवन में पूर्ण धैर्य रखना चाहिये । स यम रुचि को पूर्ण सुरक्षित रखना चाहिये । स यम च्युत और भोगासक्त व्यक्ति नहीं चाहते हुए भी दुःख पर परा बढ़ा लेता है । यथा- **क ड़रीक** । इसलिए सावधानी पूर्वक सदा स यम गुणों की वृद्धि करते रहना चाहिये ।

इस प्रकार इन अध्ययनों में आत्म विकास एव आत्म सुरक्षा के उपाय विभिन्न तरह से सूचित किए गये हक्त ।

द्वितीय श्रुतस्क ध : धर्मकथा

प्रश्न-१ : कोई भी देव-देवी देवलोक से मानवलोक में भगवान के दर्शन करने आवे, उनका वर्णन किस प्रकार होता है ?

उत्तर- इस शास्त्र में १३ वें अध्ययन के प्रार भ में दर्दुर देव का भगवान महावीर स्वामी की सेवा में आने का वर्णन है । यहाँ द्वितीय श्रुतस्क ध के प्रथम अध्ययन में भी दर्दुर देव के समान कालीदेवी का भगवान के दर्शन करने आने का वर्णन है । वह इस प्रकार है-

राजगृह नगर में श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । उस समय चमरेन्द्र असुरराज की अग्रमहिषी काली देवी अपने सि हासन पर आसीन थी । उसने अचानक अवधिज्ञान का उपयोग ज बुद्वीप की ओर लगाया तो देखा कि भगवान महावीर ज बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, राजगृह नगर में विराजमान है । यह देखते ही काली देवी सि हासन से नीचे उतरी,

जिस दिशा में भगवान थे, उसमें सात-आठ कदम आगे गई और पृथ्वी पर मस्तक झुका कर उन्हें विधिवत् व दना की ।

देवी का मनुष्य लोक में आगमन- तत्पश्चात् उसने भगवान के समक्ष जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने, व दना और नमस्कार करने का निश्चय किया । उसी समय एक हजार योजन विस्तृत दिव्य यान की विक्रिया द्वारा तैयारी करने का आदेश दिया । यान विमान तैयार हुआ और वह भगवान के समक्ष उपस्थित हुई । व दन किया, नमस्कार किया, देवों की पर परा के अनुसार अपना नाम-गौत्र प्रकाशित किया । फिर बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखला कर वापिस लौट गई ।

प्रश्न-२ : काली देवी कैसे बनी, उसने पूर्वभव में क्या करणी की थी ?

उत्तर- कालीदेवी के चले जाने पर गौतमस्वामी ने भगवान के समक्ष निवेदन किया- भ ते ! काली देवी को दिव्य ऋद्धि-वैभव किस प्रकार प्राप्त हुई है ?

पूर्वभव- तब भगवान ने उसके पूर्व भव का वृता त सुनाया- आमलकल्पा नगरी के कालनामक गाथापति की एक पुत्री थी । उसकी माता का नाम कालश्री था । पुत्री का नाम काली था । काली नामक वह पुत्री शरीर से बड़ी बेड़ौल थी । अतएव उसे कोई वर नहीं मिला । वह अविवाहित ही रही । एक बार पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ का आमलकल्पा नगरी में पदार्पण हुआ । काली ने धर्मदेशना श्रवण कर दीक्षा अ गीकार करने का स कल्प किया । माता-पिता ने सहर्ष अनुमति दे दी । ठाठ के साथ दीक्षा महोत्सव मनाया । भगवान ने दीक्षा प्रधान कर उसे आर्या पुष्पचूला को सोंप दिया । काली आर्या ने ग्यारह अ ग शास्त्रों का अध्ययन किया और यथाशक्ति तपश्चर्या करती हुए स यम की आराधना करने लगी ।

किन्तु कुछ समय के पश्चात् उस काली आर्या को शरीर के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो गई । वह बार बार अ गोपा ग धोती और जहाँ स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि करती, वहाँ जल छिड़कती । साध्वी-आचार से विपरीत उसकी यह प्रवृत्ति देखकर आर्या पुष्पचूला ने उसे ऐसा न करने के लिये समझाया । वह नहीं मानी । बार बार टोकने पर वह गच्छ से स ब ध तोड़ कर अलग उपाश्रय में रहने लगी । अब वह पूरी तरह स्वच्छ द हो गई स यम की विराधना करने लग गई । कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ । अ तिम समय में उसने प द्रह दिन का अनशन-स थारा तो किया किन्तु अपने

शिथिलाचार की न आलोचना की और न प्रतिक्रमण ही किया । भगवान महावीर ने कहा– यही वह काली आर्या का जीव है जो काली देवी के रूप में उत्पन्न हुआ है ।

भविष्य एव मुक्ति– गौतम स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर भगवान ने कहा– देवी भव की स्थिति का अ त होने पर, काली देवी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगी । वहाँ निरतिचार स यम की आराधना करके सिद्धि प्राप्त करेगी ।

प्रश्न–३ : काली देवी की साधना एव परभव की गति से क्या जानने को मिलता है ?

उत्तर– महाव्रतों का विधिवत् पालन करने वाला जीव, उसी भव में यदि समस्त कर्मों का क्षय करे तो निर्वाण प्राप्त करता है । यदि कर्म शेष रह जाए तो वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है । किन्तु महाव्रतों को अ गीकार करके भी जो उनका विधिवत् पालन नहीं करता, शिथिलाचारी बन जाता है, कुशील हो जाता है, सम्यग्ज्ञान आदि का विराधक हो जाता है, तीर्थंकर के उपदेश की परवाह न करके स्वेच्छाचारी बन जाता है और अ तिम समय में अपने अनाचार की आलोचना प्रतिक्रमण नहीं करता, वह मात्र कायक्लेश आदि बाह्य तपश्चर्या करने के कारण देवगति प्राप्त करके भी वैमानिक जैसी उच्चगति और देवत्व नहीं पाता । भवनपति, व्य तर, ज्योतिष्क की पर्याय प्राप्त करता है ।

प्रश्न–४ : द्वितीय श्रुतस्क ध के १० वर्ग और २०६ अध्ययनों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– द्वितीय श्रुतस्क ध में दश वर्ग इस प्रकार है– **प्रथम** वर्ग में चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है । **दूसरे** वर्ग में वैरोचनेन्द्र बलीन्द्र की । **तीसरे** में असुरेन्द्र को छोड़कर दक्षिण दिशा के नौ भवनवासी इन्द्रों की अग्रमहिषियों का और **चौथे** में उत्तर दिशा के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का वर्णन है । **पाँचवे** में दक्षिण और **छठे** में उत्तर दिशा के वाणव्य तर देवों की अग्रमहिष्यिों का । **सातवें** में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की, **आठवें** में सूर्य की तथा **नोवें** और **दशवें** में वैमानिक के सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है ।

इन सब देवियों का वर्णन वस्तुतः उनके पूर्वभव का है, जिसमें वे मनुष्य पर्याय में महिला के रुप में जन्मी थी । उन्होंने साध्वीदीक्षा अ गीकार

की थी और कुछ समय तक चारित्र की आराधना की थी । कुछ काल के पश्चात् वे शरीर बकुशा हो गई, चारित्र की विराधना करने लगी । गुरुणी के मना करने पर भी विराधना के मार्ग से हटी नहीं । गच्छ से अलग होकर रहने लगी और अ तिम समय में भी अपने दोषों की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही शरीर त्याग किया ।

२०६ देवियाँ :–

१	चमरेन्द्र की अग्रमहिषिया	५
२	बलीन्द्र की अग्रमहिषिया	५
३	दक्षिण के नागकुमार आदि ९ की अग्रमहिषिया	६×९=५४
४	उत्तर के नागकुमार आदि ९ की अग्रमहिषिया	६×९=५४
५	दक्षिण व्य तर के ८ इन्द्रों की अग्रमहिषिया	४×८=३२
६	उत्तर व्य तर के ८ इन्द्रों की अग्रमहिषिया	४×८=३२
७	चन्द्रेन्द्र की अग्रमहिषिया	४
८	सूर्येन्द्र की अग्रमहिषिया	४
९	सौधर्मेन्द्र की अग्रमहिषिया	८
१०	ईशानेन्द्र की अग्रमहिषिया	८
		२०६

इस प्रकार १० वर्ग के २०६ अध्ययन में २०६ देवीयों का वर्णन किया गया है । ये सभी एक भव करके महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगी ।

सार :– जिनवाणी के प्रति, जिनाज्ञा के प्रति, श्रद्धा आस्था शुद्ध है, तप स यम की रुचि भी है तो बकुश वृत्ति भवपर परा को नहीं बढ़ाती है किन्तु अ त में सही रूप से आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करने से जीव आराधना की गति को प्राप्त नहीं करता है ।

॥ ज्ञाताधर्मकथा सूत्र स पूर्ण ॥

उपासकदशा ग सूत्र

प्रश्न–१ : इस सूत्र का क्या परिचय है ?

उत्तर– ग्यारह अ ग सूत्रों में यह शास्त्र सातवाँ अ गसूत्र है । अ ग सूत्र होने से यह गणधर रचित है। इसके १० अध्ययन है, अन्य कोई छोटा या बड़ा विभाग नहीं हक्त दस अध्ययनों में दस श्रमणोपासकों का विशिष्ट साधनामय, त्यागमय जीवन अ कित किया गया है । स पूर्ण सूत्र गद्यमय है एव इसका सूत्र प्रमाण ८१२ श्लोक प्रमाण माना गया है ।

इस सूत्र पर नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयसूरि कृत स स्कृत भाषा में प्राचीन टीका उपलब्ध है । आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी ने प्रार भ के दो अ गसूत्र छोड़कर शेष ९ अ गसूत्रों पर स स्कृत में टीका लिखी है । अतः नवा गी टीकाकार के रूप में वे जैनजगत में प्रसिद्ध है । इनके पूर्व आचार्य श्री शीलांकाचार्य ने आचारा ग, सूयगड़ा ग सूत्र पर स स्कृत में टीका लिखी थी, वह अभयदेवसूरिजी के समक्ष उपलब्ध थी । इस कारण उन दो सूत्रों के सिवाय ९ अ ग सूत्रों पर उन्होंने टीका लिखी थी ।

इस प्राचीन टीका के अतिरिक्त इस सूत्र पर आज अन्य अनेक विद्वानों की स स्कृत, हिंदी, गुजराती, अ ग्रेजी आदि भाषाओं में टीका-व्याख्या आदि उपलब्ध है । स क्षिप्तिकरण की रुचि के इस जमाने में इस सूत्र पर स क्षिप्त सारा श भी हिंदी, गुजराती भाषा में अलग-अलग उपलब्ध है ।

इस सूत्र में केवल १० श्रमणोपासकों का ही जीवन वर्णन होने से इसका गुणस पन्न नाम **उपासकदशा ग** सूत्र है । भगवान महावीर स्वामी के श्रावकों की स ख्या एक लाख से अधिक थी । उसमें भी मुख्य श्रावक के रूप में शास्त्र में **शख-पुष्कली** का नाम आया है तथापि यहाँ विशिष्ट घटना एव विशिष्ट ऋद्धि स पन्नता आदि की मुख्यता से आन द आदि दस श्रावकों का जीवन चरित्र दिया गया है।

प्रश्न–२ : इस सूत्र में वर्णित दस श्रावकों के क्रमिक नाम, नगर, बगीचे, पत्नियों के नाम क्या है ?

उत्तर– (१) प्रथम अध्ययन में वाणिज्यग्राम के **आन द** गाथापति श्रावक का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम शिवान दा था । उस नगरी के **द्युतिपलाश**

नामक उद्यान में भगवान ठहरते थे । **(२)** दूसरे अध्ययन में च पानगरी के **कामदेव** नामक गाथापति सेठ का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम **भद्रा** था । भगवान महावीर वहाँ पूर्णभद्र नामक उद्यान में ठहरते थे । **(३)** तीसरे अध्ययन में **वाराणसी** नगरी के **चुलनी पिता** नामक श्रेष्ठी का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम **श्यामा** था । उस नगरी के "कोष्टक" नामक उद्यान में भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण होता था । **(४)** चौथे अध्ययन में भी **वाराणसी** नगरी के **सुरादेव** श्रेष्ठी का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम **धन्या** था । **(५)** पाँचवें अध्ययन में आल भिका नगरी के **चुल्लशतक** श्रेष्ठी का वर्णन है । इसकी पत्नि का नाम **बहुला** था । इस नगरी के **श खवन** नामक उद्यान में भगवान ठहरते थे । **(६)** छट्ठे अध्ययन में क पिलनगर के **कु ड़कौलिक** श्रेष्ठी का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम **पुषा** था । इस नगरी में सहस्राम्र वन बगीचे में भगवान का पदार्पण होता था । **(७)** सातवें अध्ययन में पोलासपुर के **सकड़ाल** कु भकार का वर्णन है । उसकी पत्नि का नाम **अग्निमित्रा** था । यहाँ भी प्रभु के ठहरने का स्थान सहस्राम्र वन बगीचा था । **(८)** आठवें अध्ययन में राजगृही नगरी के **महाशतक** श्रेष्ठी का वर्णन है । उसके १३ पत्नियाँ थी जिसमें मुख्य पत्नि का नाम **रेवती** था । गुणशील नामक बगीचे में यहाँ भगवान ठहरते थे । **(९–१०)** नौवें दसवें अध्ययनों में श्रावस्तीनगरी के **न दिनीपिता** और **सालिहीपिता** नामक दो श्रेष्ठी श्रमणोपासकों का वर्णन है । उनकी भार्या के नाम क्रमशः **अश्विनी** और **फल्गुनी था ।** यहाँ भगवान कोष्टक उद्यान में ठहरते थे ।

प्रश्न–३ : इन दस श्रावकों के पास धन-परिग्रह और गोव श कितना था ?

उत्तर– इन श्रावकों के धन का परिमाण तीन विभागों से कहा गया है– (१) निधान में (२) व्यापार में (३) साधन-सामग्री में । गोकुल–दसहजार गायों का एक गोकुल गिना जाता था । जिसमें **सातवें** शकड़ाल श्रावक के **एक गोकुल** था । **पहले, नौवे, दसवें** श्रावक के **चार-चार** गोकुल थे । **दूसरे, चौथे, पाँचवें और** छट्ठे **श्रावक के छ-छ गोकुल थे ।** तीसरे एव **आठवें** श्रावक के **आठ-आठ गोकुल** थे ।

सातवें **सकड़ाल** श्रावक के तीनों विभागों का कुल मिलाकर **३ करोड़** सुवर्णमुद्रा के जितना परिग्रह रखा गया था । **पहले, नौवें, दसवें** श्रावक के १२ करोड़ सोनैया जितना कुलपरिग्रह था । **दूसरे, चौथे, पाँचवें, छट्ठे** श्रावक के कुल १८ करोड़ स्वर्णमुद्रा के बराबर परिग्रह था । **तीसरे**

श्रावक के कुल २४ करोड़ सुवर्णमुद्रा जितना परिग्रह था । **आठवें** श्रावक महाशतक के पास कुल २४ करोड़ का स्यपात्र परिमाण सुवर्ण मुद्रा जितना परिग्रह था ।

प्रश्न–४ : किस श्रावक को कैसा उपसर्ग या परीक्षा का समय आया और उसका परिणाम क्या हुआ ?

उत्तर– (१) आन द श्रावक को अवधिज्ञान का सत्य कथन करते हुए भी गौतम गणधर के द्वारा असत्य कथन का आक्षेप एव प्रायश्चित्त करने का सूचन मिला । ऐसे समय में अपने स लेखना स थारे की मर्यादा में रहते हुए उन्होने पूर्ण शा ति एव धैर्य रखा । आवेश और उपाल भ न करते हुए नम्रता पूर्वक दृढ़ता से निवेदन किया कि–"प्रभु के शासन में सत्य का प्रायश्चित्त आता है या असत्य का ? यदि असत्य का प्रायश्चित्त होता है तो भ ते! आपको प्रायश्चित्त करना चाहिये ।" इस प्रकार आन द श्रावक के शा ति एव धैर्य की कसौटी गौतम गणधर के निमित्त से हुई । जिसमें उन्होंने स थारे में उठकर चरण स्पर्श करने जितनी शारीरिक क्षमता नहीं होते हुए भी अर्थात् अतिशय शारीरिक कमजोरी की अवस्था में एव तपस्या में भी अह कार–गुस्सा न करते हुए, सत्य को विवेक और दृढ़ता से स्पष्ट किया कि हे भ ते ! मुझे नीचे प्रथम नरक में, ऊपर प्रथम देवलोक में और तिरछे तीन दिशा में लवणसमुद्र में ५०० योजन तक जानने देखने की क्षमता वाला अवधिज्ञान हुआ है और उत्तर में चुल्लहिमव त पर्वत पर्यंत का अवधिज्ञान हुआ है; यह मक्त पूर्ण सत्य कथन कर रहा हूँ ।

गौतमस्वामी स पूर्ण द्वादशा गी के ज्ञाता प्रथम गणधर थे तथापि मतिश्रुतज्ञान, केवलज्ञान जैसा स्थाई नहीं होता है । १४ पूर्वी भी उसी भव में क्षयोपशम का परिवर्तन हो जाने पर अल्पज्ञानी बन सकते हक्कथवा उनको क्षणिक भ्रम उत्पन्न हो सकता है । छद्मस्थ अवस्था होने से ज्ञानावरणीय कर्म का उदय–क्षयोपशम की विचित्रता से बहुत कुछ स भव–शक्य होता है । गौतमस्वामी उस समय गौचरी में प्रवृत्त थे । अचानक ही मालुम पड़ने पर ही वे आन द श्रावक के पास पहुँचे थे । अतः उनके लक्ष्य–उपयोग में स्वाभाविक ऐसा अनुभव आभास हो गया कि समुद्र में और देवलोक में देखे जितना अवधिज्ञान श्रावक को नहीं हो सकता है । इस प्रकार की क्षणिक कल्पना के उठते ही व्यक्त कर दी, बहुत बड़े व्यक्ति से ऐसी भूल सहज हो जाती है । छोटा व्यक्ति तो बड़े की सलाह भी ले, दस बार विचार

भी करे या सामने वाले से विचारणा भी करे । कि तु बड़ों के लिये तो वैसी कुछ गुंजाइश नहीं होती है । वे तो अपनी उपस्थित समझ को प्रायः परिपूर्ण, सत्य ही मानते है कि तु छद्मस्थता है जब तक परिपूर्णता का विश्वास भी अधूरा ही होता है ।

यहाँ यह भी ध्यान में लेने योग्य है कि गौतमस्वामी की भी आन द श्रावक के निमित्त से बहुत बड़ी कसौटी हुई थी । एक श्रावक ने उनकी बात अस्वीकार करते हुए उन्हें खुद को ही प्रायश्चित्त करने का स्पष्ट कह दिया । गौतमस्वामी महान ज्ञानी, वरिष्ठ गणधर होते हुए भी आवेश क्रोध अह कार के आधीन नहीं बने और भगवान के पास निर्णय करने के स कल्प से चल दिये । भगवान का निर्णय भी गौतम के पक्ष में नहीं आया, आन द के पक्ष में आया था । तब भी उन्होंने पूर्ण नम्रता के साथ बेले के पारणे का आहार करने से पहले ही जाकर आन द श्रावक से क्षमायाचना की, अपनी भूल स्वीकार की । इस प्रकार प्रथम अध्ययन में आन द श्रावक और गौतम गणधर दोनों की ग भीरता, शा ति आदि गुणों की कसौटी हुई । दोनों ही पूर्ण उत्तीर्ण हुए अर्थात् किसी ने भी अवगुणों का आचरण नहीं किया एव कर्म ब ध से दूर रहे । सरलता, नम्रता आदि धर्म के मौलिक गुणों का ही पूर्ण परिचय दिया ।

(२) कामदेव श्रावक को अपनी पौषधशाला में निवृत्त साधना के प्रार भ करने पर एक समय रात्रि में देव का उपसर्ग हुआ । कामदेव श्रावक पौषध-शाला में पौषध लेकर आत्मध्यान में तन्मय हो रहे थे । उनके धर्म दृढ़ता की प्रश सा प्रथम देवलोक में इन्द्रसभा में स्वय शक्रेन्द्र ने की । एक मिथ्यात्वी देव उसे सह नहीं सका एव विघ्न उपस्थित कर धर्म से विचलित करने के लिये कामदेव की पौषधशाला में पहुँच गया ।

कामदेव को भयभीत एव स त्रस्त करने के लिये उसने अत्य त भयावह विकराल पिशाच का रूप धारण किया एव हाथ में खड्ग लेकर प्रकट हुआ और कामदेव को ड़राते धमकाते हुए कहा कि "तुम अपना यह सब क्रिया कलाप और धर्म उपासना छोड़ दो, नहीं तो मक्त इस तलवार से तुम्हारे टुकड़े–टुकड़े कर दूँगा और तुम आर्तध्यान करते हुए अकाल में ही मर जाओगे ।" दूसरी और तीसरी बार फिर यही वाक्य दोहराए और देखा कि कामदेव श्रावक अपनी साधना में मस्त तल्लीन बना, धमकी की कि चित् भी परवाह नहीं करते हुए शा ति में रमण कर रहा है । उसके

मन में किसी प्रकार की घबराहट भी नहीं है । यह देखकर देव के गुस्से का पार नहीं रहा । तत्काल तलवार से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । कामदेव ने घोर वेदना समभाव एव शा ति से सहन की ।

देवमाया से शरीर पुनः तत्काल जुड़ गया । देव ने दूसरी बार हाथी का रूप किया, ड़राया-धमकाया और तीसरी बार कहने के ऊपरा त भी नहीं मानने पर कामदेव श्रावक को सू ड़ में पकड़ कर आकाश में उछाला, दा तो से झेल कर नीचे पटक कर पावों से तीन बार कुचल दिया, घोर वेदना सहन करते हुए भी कामदेव निश्चल रहा । देव माया से पुनः उसका शरीर दुरस्त हो गया ।

तीसरी बार देव ने विषधर सर्प का रूप धारण करके उसे ड़राया-धमकाया और धर्म छोड़ने के लिए कहा, किन्तु कामदेव तनिक भी विचलित नहीं हुआ । देव ने अपनी धमकी को कार्यान्वित किया । तीन आ टे शरीर पर लगा कर छाती में पूरी शक्ति के साथ ड़ क दिया, । घोरातिघोर वेदना दी और ज्ञान से देखा तो श्रावक कि चित् भी नहीं ड़िगा । वह शा त भावों से अपनी श्रद्धा एव साधना में अड़ोल रहा । आखिर मानव के आगे दानव रूप देव की हार हुई । क्रूरता पर शा ति ने विजय प्राप्त की । दृढ़ता से परीक्षा में उत्तीर्णता आई । देव पराजित होकर नतमस्तक हो गया, गुणानुवाद किया, धन्यवाद दिया, क्षमा मा गी और भविष्य में कभी ऐसा नहीं करूँगा, यह स कल्प करके पाँवो में पड़ा और हाथ जोड़कर बार बार क्षमायाचना करते हुए देवलोक में चला गया ।

भगवान महावीर स्वामी विचरते हुए उस नगरी में पधार गये थे । प्रातःकाल कामदेव ने पौषध पूर्ण किया । धर्मसभा योग्य शुद्ध वस्त्र धारण किए एव उपवास का पारणा किए बिना ही जनसमूह के साथ भगवान के दर्शन करने चला । भगवान की सेवा में उपस्थित होकर तीन बार व दन नमस्कार करके बैठ गया । विशाल परिषद् में भगवान ने धर्म देशना दी । तदन तर स्वय प्रभु महावीर ने कामदेव श्रमणोपासक को स बोधित करके पूछा कि रात्रि में देव उपस्थित हुआ और उपसर्ग दिया इत्यादि घटना को परिषद् के सामने भगवान ने दोहराया । कामदेव ने उस घटना की स्वीकृति देते हुए कहा कि हाँ भ ते ! ऐसा ही हुआ ।

उस घटना को बताकर भगवान ने श्रमण श्रमणियों को स बोधित करते हुए कहा कि एक श्रमणोपासक गृहस्थ भी धर्म की शुद्ध दृढ़ आस्था

रख सकता है, परीक्षा की घड़ियों में तन मन एक करके इतना धीर, वीर, ग भीर बन कर सब कुछ सहन कर सकता है । एक क्रूर रौद्र देव भी जिसकी क्षमता के आगे पराभूत हो जाता है । इस घटना को जानकर स पूर्ण गृहत्यागी श्रमणों को भी अत्य त श्रद्धा निष्ठा से, दृढ़ता से एव धैर्य से स कटों को पार करने की प्रबल प्रेरणा लेनी चाहिए । तब उपस्थित सभी श्रमण श्रमणियों ने **तहत्ति** कह कर भगवान के वचनों को शिरोधार्य किया ।

तदन तर कामदेव श्रावक ने विनय युक्त कुछ प्रश्न पूछकर समाधान प्राप्त किये एव व दन नमस्कार कर वह चला गया । उपवास का पारणा कर पौषधशाला में अपनी धर्म साधना में लग गया । आन द के समान कामदेव ने भी श्रावक की ग्यारह पड़िमाएँ स्वीकार की एव सम्यक् आराधना की । अ त में एक महिने के स थारे से समाधिमरण प्राप्त कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ । वहाँ से चार पल्योपम की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा ।

(३) चुलनीपिता श्रमणोपासक को निवृत्ति साधना के समय पौषधशाला मे रात्रि में देव का उपसर्ग हुआ– देव ने तीन पुत्रों को मारने का कल्पित आचरण किया । फिर माता को मारने की धमकी देने पर श्रावक का चित्त च चल हो गया । वह उसे पकड़ने गया और देव अदृश्य हो गया । आवाज सुनकर माता आई । फिर श्रावक ने माता की प्रेरणा से अपनी मर्यादा के भ ग का प्रायश्चित्त किया । बाद में चुलनीपिता श्रमणोपासक ने भी श्रावक की ११ पड़िमा आदि तप की आराधना की एव अ तिम समय में स लेखना स थारा की आराधना की ।

(४) सुरादेव श्रमणोपासक को निवृत्ति साधना में चुलनीपिता के समान ही देव उपसर्ग में तीन पुत्रों को मारने का नाटक किया गया, उसमें वह भी चलित नहीं हुआ । कि तु चौथी बार में शरीर में १६ रोग उत्पन्न करने की धमकी देने पर श्रावक पौषध में उसे पकड़ने दौड़ा तब देव अदृश्य हो गया । फिर पत्नी ने आकर सावधान किया। शेष वर्णन पूर्व श्रावक के समान स थारा तक समझना ।

(५) चुल्लशतक श्रमणोपासक को भी उसी प्रकार देव का उपसर्ग हुआ । तीन पुत्रों को मारने का नकली कृत्य करने के बाद स पूर्ण स पत्ति के विनाश करने की धमकी देने पर श्रावक क्षुब्ध हुआ, पकड़ने गया तो देव अदृश्य हो गया । पत्नी ने आकर सावधान किया । बाकी वर्णन पूर्ववत् समझना ।

इस प्रकार तीसरे, चौथे एव पाँचवें श्रावक देव द्वारा दिए गए उपसर्ग में अ त में स्खलित हुए थे ।

(६) कु ड़कौलिक श्रमणोपासक को देव द्वारा सौम्य उपसर्ग हुआ । एक बार वह दुपहर में सामायिक आदि साधना में बैठा था, वस्त्र और अ गुठी उतारकर पास में रखी थी । एक गोशालक मत का देव आया और वस्त्र अ गुठी लेकर आकाश में चला गया और कहने लगा कि गोशालक सिद्धा त सत्य है, महावीर का सिद्धा त मिथ्या है । श्रावक ने दृढ़ता ग भीरता के साथ देव को सही तत्त्व समझाया कि तुम जो देव बने हो तो पुरुषार्थ से बने हो या भवितव्यता से ? देव ने खोटा दुराग्रह का उत्तर दिया कि पुरुषार्थ से नहीं नियति से । श्रावक ने कहा– पुरुषार्थ बिना तुम देव बने हो तो दूसरे सभी भी देव क्यों नहीं बन जाते ? देव निरुत्तर होकर चुपचाप वस्त्र, अ गुठी रखकर चला गया । इसके बाद श्रावकव्रत पर्याय में १४ वर्ष पूर्ण होने पर इसने भी निवृत्त जीवन पौषधशाला में स्वीकार किया । ६ वर्ष निवृत्त साधना में रहे । फिर अ तिम समय में स लेखना स थारा किया । कष्टप्रद उपसर्ग इसे नहीं हुआ ।

इस श्रावक की भी भगवान ने प्रश सा करके साधको को प्रेरणा दी थी कि देव के द्वारा भी मिथ्या धर्म का आग्रह करने पर अपने सत्य पुरुषार्थ प्रधान धर्म में अड़िग रहना चाहिये ।

(७) सकड़ालपुत्र श्रमणोपासक पहले गौशालक मतानुयायी था । फिर भगवान के सद्बोध से १२ व्रतधारी श्रावक बना । तत्पश्चात् गौशालक ने आकर उसे शुद्ध वीतराग धर्म से ड़िगाने का खूब प्रयत्न किया कि तु श्रावक अपने वीतराग धर्म में स्थिर रहा । फिर इस श्रावक ने भी १४ वर्ष श्रावक पर्याय होने पर निवृत्त साधना स्वीकार की । एक बार देव उपसर्ग हुआ । पुत्रों के वध का वर्णन पूर्ववत् समझना । फिर अग्निमित्रा भार्या को मारने की धमकी दी तब श्रावक का चित्त च चल हो गया । वह पौषध में पकड़ने दौड़ा तब देव अदृश्य हो गया । आवाज सुनकर भार्या आई, समझाया कि कुछ नहीं हुआ है । प्रायश्चित्त शुद्धि की । शेष पड़िमा, तप आदि वर्णन पूर्ववत् समझना । यह श्रावक भी देव द्वारा चलित हुआ था ।

(८) महाशतक श्रमणोपासक के रेवती प्रमुख १३ पत्नियाँ थी । रेवती अपने पीयर की स पन्नता में गर्विष्ट थी एव अधर्मी भी थी । मद्य-मा स का सेवन करने वाली तथा १२ सौतों को विष या शस्त्र से मार कर वह अकेली रह

गई थी । होनहार वश महाशतक श्रावक उसको कुछ भी शिक्षा नहीं दे सका एव सुधार भी नहीं सका । अ त में महाशतक ने निवृत्त साधना स्वीकार की, स लेखना स थारा भी किया । अवधिज्ञान पैदा हुआ । रेवती को यह सब अच्छा नहीं लगता था । वह मोजशोख में ही प्रवृत्त रहना चाहती थी । वह श्रावक का कहना नहीं मान सकती थी । श्रावक भी उसके आधीन नहीं रहा । अपनी साधना को आगे बढ़ाते चला ।

एक बार स थारे के दिनों में भी वह रेवती पत्नि मद्य के नशे में पौषध शाला में आई और स सर्ग सहवास स ब धी अनुचित मा गणी करने लगी । श्रावक अपनी स थारे की साधना में शा त मौन रहे । उसके दुबारा तिबारा इस प्रकार की मोहोत्पादक चेष्टाओं के व्यवहार और वचनों से क्षुब्ध होकर श्रावक ने अवधिज्ञान में देखकर आवेश में आकर उसे उसका सात दिन में मरकर नरक में जाने का भविष्य सुना दिया । मरने का और नरक गमन का सुनकर उसका नशा उतर गया । वह हताश होकर चली गई । भगवान ने गौतमस्वामी को भेजकर श्रावक को सावधान किया कि अपनी साधना में उत्तेजित होकर वचन बोलने की शुद्धि कीजिए । श्रावक ने नम्रतापूर्वक गौतम स्वामी के वचन स्वीकार कर प्रायश्चित्त किया और स थारा की आराधना की । इस प्रकार महाशतक श्रावक को देव का उपसर्ग नहीं आया कि तु खुद की पत्नि का उपसर्ग हुआ था । जिसमें वे कि चित् स्खलित हुए, शा ति भ ग हुई, अशा त भावों से कटु भविष्य कथन किया ।

(९–१०) न दिनीपिता और सालिहीपिता दोनों श्रावकों को किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हुआ, कोई विशिष्ट घटना भी नहीं बनी । इस प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें और आठवें श्रावक अपनी साधना में कुछ चलित हुए थे फिर प्रायश्चित्त किया था ।

प्रश्न–५ : दस श्रावकों के परिवार का क्या कथन है, उनकी अ तिम आराधना और गति वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– दसों श्रावकों ने ज्येष्ठ पुत्र को गृहभार स भलाकर निवृत्ति साधना अ गीकार की थी । अतः सभी के अनेक पुत्रों का कथन स्पष्ट है । ९ श्रावकों के एक-एक पत्नि थी । आठवें श्रावक महाशतक के १३ पत्नियाँ थी । नौ श्रावकों की पत्नियों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये थे । महाशतक की स्त्रियों के व्रत धारण का कथन सूत्र में नहीं है । महाशतक की रेवती स्त्री प्रथम नरक में ८४ हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुई । १२ पत्नियों की

गति का कथन भी नहीं है । ९ श्रावकों की भार्याएँ व्रतधारी बनी थी इसलिये वैमानिक की गति होने की स भावना है ।

इन श्रावकों की श्रावक व्रत पर्याय **२० वर्ष** की थी जिसमें १४ वर्ष परिवार में रहते हुए और **६ वर्ष** निवृत्त **हो**कर, साधना की थी । सभी को १ महीने का **स थारा** आया ।आन द और महाशतक दो श्रावकों को अवधिज्ञान स थारे के समय उत्पन्न हुआ था । दसों श्रावक पहले देवलोक में अलग-अलग विमान में उत्पन्न हुए । उनके विमानों के नाम इस प्रकार है– (१) अरुण (२) अरुणाभ (३) अरुणप्रभ (४) अरुणका त (५) अरुण श्रेष्ठ (६) अरुणध्वज (७) अरुणभूत (८) अरुणावत सक (९) अरुणगव (१०) अरुणकील । दसों श्रावक ४ पल्योपम की देवभव की उम्र पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे ।

प्रश्न–६ : श्रावक के व्रत पर्षदा में एक ही प्रवचन में किस प्रकार समझाये जाते थे ?

उत्तर– तीर्थंकर प्रभु अपने प्रवचन में जीवादि नव तत्त्वों का, ६ द्रव्यों का, लोक का एव आठ कर्म तथा क्रियाओं का स्वरूप समझाकर, जीव का स सार परिभ्रमण एव जन्ममरण के दुःख से छुटकारा पाने का उपाय दर्शाते हुए सम्यग् श्रद्धान, सम्यग् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र-तप का स्वरूप दर्शाते हुए क्रमशः सर्वविरति एव देशविरति धर्म का विश्लेषण फरमाते थे ।

देशविरति–श्रावक व्रतों का निरूपण इस प्रकार किया जाता है– गृहस्थ जीवन का त्याग करके श्रमण नहीं बन सकने वाले श्रद्धालु सज्जन, श्रावक के १२ व्रत गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी धारण कर सकते हक्त । राजा, र क, अमीर, गरीब, बालक, जवान, प्रौढ़, स्त्री, पुरुष कोई भी अपनी जीवन जरूरियात को मर्यादित करके इन ५ अणुव्रत ३ गुणव्रत एव ४ शिक्षाव्रत रूप द्वादशविध गृहस्थधर्म को अ गीकार कर सकता है ।

(१) प्रथम अणुव्रत में– जीवनोपयोगी पाँच स्थावर जीवों को छोड़कर त्रसजीव में बेइन्द्रिय–लट आदि, तेइन्द्रिय–कीड़ी आदि, चौरेन्द्रिय–मक्खी, मच्छर आदि एव प चेन्द्रिय में–पशुपक्षी, मनुष्य वगैरह निरपराधी की हिंसा, स कल्प पूर्वक करने का त्याग किया जाता है । साथ ही शरीर के लिये पीड़ाकारी और सापराधी त्रसजीवों को निवारण करने का आगार रखा जा सकता है । (२) दूसरे अणुव्रत में स्थूल–मोटा झूठ बोलने का त्याग किया जाता है अर्थात् किसी का नुकशान होवे, राज द ड़े, लोक

भ ड़े वैसा झूठ का त्याग किया जाता है । (३) तीसरे अणुव्रत में मोटी चोरी का त्याग किया जाता है । (४) चौथे अणुव्रत में स्वस्त्री स ब धी कुशील की मर्यादा की जाती है, पर स्त्री का त्याग किया जाता है । इसका नाम स्वदार स तोष परदार विवर्जन व्रत है । (५) पाँचवें अणुव्रत में धन धान्य, सोना चा दी, घर जमीन, पशु धन, दास-नौकर तथा अन्य उपयोगी चीज-वस्तु की मर्यादा की जाती है ।

(६) छट्ठे दिशिव्रत में छहों दिशाओं में गमनागमन की सीमा निर्धारित की जाती है तदुपरा त उन दिशाओं में आगे जाने का त्याग किया जाता है । (७) सातवें व्रत में उपभोग परिभोग के पदार्थों की एव उसमें् सूत्रोक्त २६ बोलों की यथायोग्य मर्यादा की जाती है और प द्रह कर्मादान का त्याग किया जाता है, व्यापारों की सीमा की जाती है । तदुपरा त के व्यापारों का त्याग किया जाता है । (८) आठवाँ अनर्थद ड़ व्रत में मन वचन और काया स ब धी अविवेकी प्रवृत्तियों मनोवृत्तियों का त्याग किया जाता है एव बिना प्रयोजन की निरर्थक अनुपयोगी मानसिक वाचिक कायिक पाप प्रवृत्तियों के करने कराने का या अनुमोदना का त्याग किया जाता है ।

(९) नौवें सामायिक व्रत में सामायिक करने का नियम लिया जाता है । जिसमें प्रतिदिन सामायिक करने का एव वर्ष या मास में सामायिक करने की न्यूनत्तम स ख्या का निर्धारण किया जाता है । (१०) दसवें देशावकासिक व्रत में १४ नियमों की मर्यादा धारण कर अवशेष का त्याग २४ घंटों के लिये किया जाता है । (११) ग्यारहवें व्रत में सावद्य योग त्याग की प्रमुखता युक्त प्रतिपूर्ण उपवास युक्त पौषध के न्यूनतम स ख्या की मर्यादा की जाती है । (१२) बारहवें व्रत में प च महाव्रत धारी जैन श्रमणों-श्रमणीयों को आहार वस्त्र उपधि औषध आदि निर्दोष खाद्य पदार्थ एव पानी आदि पेय पदार्थों को वहोराया जाता है अर्थात् सुपात्रदान की भावना सदा रखी जाती है और भोजन के समय नियम पूर्वक भावना भाई जाती है ।

प्रश्न–७ : आन द श्रावक ने व्रत और मर्यादाएँ कौनसी एव किस प्रकार धारण की थी ?

उत्तर– आन द के ग्रहित व्रत :– (१–३) स्थूल हिंसा, झूठ एव चोरी का दो करण–तीन योग से त्याग । (४) शिवान दा स्त्री की मर्यादा रख कर शेष स पूर्ण कुशील का त्याग । (५) इच्छा परिमाण–परिग्रह परिमाण में– १. चार करोड़ सोनैया निधान में, चार करोड़ व्यापार में और चार करोड़

चलअचल स पत्ति में(मकान, खेत आदि में); इसके अतिरिक्त परिग्रह का त्याग । २. चालीस हजार पशुओं के ऊपरा त त्याग । (६) आवागमन स ब धी क्षेत्र सीमा ५०० हलवा ऊपरा त त्याग । दो हजार बाँस का एक हलवा होता है, ऐसे ५०० हलवा अर्थात् २५०० माइल ४००० किलोमीटर की क्षेत्रमर्यादा ऊपरा त त्याग ।

(७) छब्बीस बोल की मर्यादा– १. सुग धित और लाल र ग का अ गोछा ऊपरा त त्याग २. हरी मुलेठी ऊपरा त दा तोंन का त्याग ३. दूधिया आ वला के सिवाय मस्तक आदि धोने के फल का त्याग ४. सतपाक और सहस्र-पाक तैल के सिवाय मालिस का त्याग ५. एक प्रकार की पीठी के सिवाय उबटन का त्याग ६. आठ घड़े ऊपरा त स्नान के पानी का त्याग ७. पहनने के वस्त्र सूती ऊपरा त त्याग ८. च दन, कुमकुम, अगर के अतिरिक्त लेप तिलक का त्याग ९. कमल और मालती के फूल के अतिरिक्त का त्याग १०. कु ड़ल और अ गुठी के सिवाय आभूषण का त्याग ११. अगर, लोबान और धूप के अतिरिक्त का त्याग १२. एक प्रकार का काढ़ा या उकाली के अतिरिक्त पेयपदार्थ का त्याग अथवा मू ग के या चावल के जूस के अतिरिक्त त्याग १३. घेवर और दहीथड़ा(बालुसाही) के अतिरिक्त मिठाई का त्याग १४. बासमती चावल के अतिरिक्त ओदन का त्याग १५. चना, मूँग और उड़द की दाल के अतिरिक्त त्याग १६. ताजे गाय के घी के अतिरिक्त त्याग १७. बथुआ, लौकी, सुवापालक और भींड़ी के अतिरिक्त हरी सब्जिओं का त्याग १८. पाल का विशिष्ट प्रकार के गूंद के अतिरिक्त त्याग १९. दाल के बड़े और काँजी के बड़े के अतिरिक्त तले पदार्थ त्याग २०. वर्षा के पानी या घर के इकट्ठे किए वर्षा के पानी के अतिरिक्त त्याग २१. इलायची, लाक्तग, कपूर, दालचीनी और जायफल के अतिरिक्त तम्बोल का त्याग २२. एक हजार बैलगाड़िया ऊपरा त रखने का त्याग, आठ जहाज ऊपरा त रखने का त्याग । (८) चार प्रकार के अनर्थद ड़ का त्याग । शेष सामायिक आदि की स ख्या परिमाण आदि का वर्णन नहीं है ।

व्रत एव मर्यादाओं का वर्णन आन द के समान ही शेष ९ श्रावको का है । उनके परिग्रह मर्यादा में अ तर है, जो प्रश्न-३ में ऊपर बता दिया गया है । २६ बोल की मर्यादा भी अन्य श्रावकों की मूलपाठ में स्पष्ट नहीं है । अतः आन द जैसी ही लगभग समझ लेनी चाहिये ।

आन द के व्रतग्रहण में भी ५ अणुव्रत एव सातवां उपभोग परिभोग की मर्यादाओं का स्पष्टीकरण है, छट्ठे व्रत एव आठवें से १२ वें व्रत तक के मर्यादा धारण का या प्रतिज्ञा का पाठ स्पष्ट नहीं मिलता है इसमें स क्षिप्त पाठ के कारण कभी छूट गया हो सकता है तथापि आगे के पाठ में ९९ अतिचार पूरे सभी व्रतों के बताये हक्त । इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने १२ ही व्रत समकित सहित धारण किये थे । वर्तमान में उपलब्ध २६ बोल में से भी आन द के व्रतधारणा में कुछ बोलों का पाठ नहीं है । तो उन्हें भी किसी बोल में समाविष्ट है, ऐसा समझ सकते हक्त या लिपिदोष से कभी कम हुए हो ऐसा भी शक्य है ।

प्रश्न-८ : भगवान ने कितने और कौन-कौन से अतिचारों कहे ?

उत्तर– आन द के द्वारा ये व्रत प्रत्याख्यान ग्रहण करने के बाद भगवान महावीर ने उसे समकित सहित सभी व्रतों के ८५ अतिचार बताये । ये अतिचार ग्रहित व्रत की सीमा में नहीं होते हुए भी ध्यान रखने योग्य है । इनका यथाशक्य सेवन नहीं करने पर ही व्रत एव धर्म की शोभा होती है । इन अतिचारों के सेवन करने पर व्रती की एव धर्म की अवहेलना होती है और व्रत में भी कि चित दोष लगता है या पर परा से दोष की स भावना रहती है । इसलिये अत्यावश्यक समझकर भगवान ने स्वतः ही अतिचारों का कथन किया ।

समकित के पाँच अतिचार– (१) जिनेश्वरों के वचनों में(सूक्ष्म तत्त्वों में) स देह होना (२) परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित होना (३) धर्म करणी के फल में स देह होना (४) परमत की प्रश सा करना (५) परमत के सन्यासी का व उनके शास्त्र का परिचय स पर्क करना ।

प्रथम व्रत के पाँच अतिचार– (१) गुस्से में आकर किसी को कठोर ब धन से बाँधना (२) मारपीट करना (३) शरीर के अ गोपा ग का छेदन करना (४) पशु आदि पर अधिक भार भरना (५) आहार पानी में रूकावट करना ।

दूसरे व्रत के पाँच अतिचार– (१) बिना विचारे किसी पर आक्षेप लगाना (२) एकान्त में बातचीत करने वाले पर झूठा आरोप लगाना (३) अपनी स्त्री(पुरुष) की गुप्त बात प्रकट करना (४) असत्य(खोटी) सलाह देना (५) असत्य लेखन करना ।

तीसरे व्रत के पाँच अतिचार– (१) चोर की चुराई वस्तु जानकर लेना (खरीदना)(२) चोर को सहायता देना (३) राज्य विरुद्ध कार्य करना ।

(४) तोलना मापना गलत करना (५) एक वस्तु दिखाकर दूसरी वस्तु देना या भाव बताकर उससे अधिक मूल्य लेना ।

चौथे व्रत के पाँच अतिचार– (१) छोटी उम्र वाली या ईत्वर काल की अपनी स्त्री के साथ गमन करना (२) किसी से अपरिग्रहित स्त्री के साथ गमन करना (३) अन्य अ ग से काम क्रीड़ा करना (४) दूसरों का विवाह कराना (५) कामभोग की तीव्र अभिलाषा करना ।

पाँचवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) जमीन व मकान का परिमाण उल्ल घन करना (२) सोने चा दी का परिमाण उल्ल घन करना (३) धन धान्य का परिमाण उल्ल घन करना (४) नौकर, जानवर का परिमाण उल्ल घन करना (५) घर के अन्य सामान का परिमाण उल्ल घन करना ।

छट्ठे व्रत के पाँच अतिचार– (१से ३) चारों दिशाओं का तथा ऊपर-नीचे का परिमाण उल्ल घन करना (४) एक दिशा की सीमा घटा कर दूसरी दिशा में बढ़ाना (५) सीमा-मर्यादा के भूल जाने से आगे जाना ।

सातवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) सचित्त वस्तुएँ खाना (२) सचित्त से लगे हुए गिर खादि को खाना (३) अपक्व को पक्व समझ कर खाना (४) आधे पके को पका समझ कर खाना (५) तुच्छ वस्तुओं(अभक्ष्य व अन तकाय क दमूल आदि) का भक्षण करना । उसके अतिरिक्त खाने के पदार्थ, तेल, इत्र, फूल, वस्त्र, आभूषण, वाहन, स्नान, जूते-चप्पल आदि की मर्यादाओं का उल्ल घन करना । **सातवें व्रत के व्यापार स ब धी प द्रह अतिचार(कर्मादान)–** (१) अग्नि की हिंसा वाले कर्म (२) वनस्पति की हिंसा वाले कर्म (३) वाहन उत्पादन कर्म (४) वाहन भाड़े चलाने का कर्म (५) पृथ्वीकाय की हिंसा का कर्म (६) दा त, नख, सि ग, चर्म, केस आदि त्रस जीव के अवयवों का व्यापार (७) लाख, चिपड़ी, नमक, साबुन आदि का व्यापार (८) मधु, मद्य, तेल, घी आदि रसपदार्थों का व्यापार (९) त्रस जीव, दास, पशु, पक्षी का व्यापार (१०) हिंसक शस्त्र, विषेले (नशीले) पदार्थों का व्यापार (११) प्रेस, चक्की, घाणी, मिल आदि कर्म (१२) बींधना, खसी करना आदि कर्म (१३) खेत, ज गल आदि में आग लगाना (१४) तालाब आदि को खाली करना (१५) हिंसक पशु आदि रखना । अन्य भी व्यापार मर्यादा का उल्ल घन करना ।

आठवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) विकारजनक कथा करना (२) शरीर से शरीर स ब धी कुचेष्टाएँ करना (३) बेतुकी बातें करना या निरर्थक बोलना

(४) हिंसाकारी उपकरणों को अयोग्य रीति से रखना (५) खाने के पदार्थ व अन्य सामान का अधिक स ग्रह करना ।

नवमें व्रत के पाँच अतिचार– (१) सामायिक में मन से अशुभ चि तन करना (२) अयोग्य वचन बोलना (३) अयोग्य कार्य करना (४) सामायिक लेने का समय याद न रखना (५) सामायिक का दोष रहित व विधिपूर्वक पालन न करना ।

दशवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) नियमित सीमा के बाहर से वस्तु म गवाना (२) भिजवाना (३) शब्द से स केत करना (४) रूप से स केत करना (५) क कर आदि फेंक कर स केत करना । १४ नियम आदि दैनिक मर्यादाओं का उल्ल घन होना तथा तीन मनोरथ का चि तन न होना ।

ग्यारहवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) पौषध में मकान पाट आदि का दोनों समय विधिपूर्वक प्रतिलेखन न करना (२) विधिपूर्वक प्रमार्जन न करना (३) परठने की भूमि का प्रतिलेखन विधिपूर्वक न करना (४) विधि पूर्वक प्रमार्जन न करना (५) पौषध का दोष रहित व विधिपूर्वक पालन न होना ।

बारहवें व्रत के पाँच अतिचार– (१) अविवेक से अचित्त पदार्थ सचित्त वस्तु पर रखना (२) सचित्त पदार्थ अचित्त वस्तु पर रखना (३) भिक्षा के समय घर का द्वार खुला रख कर भावना न भाना भिक्षा के असमय में भावना भाना(४) विवेक न रखते हुए दूसरों को दान देने के लिये कह देना, अपने हाथ से दान न देना (५) कषाय युक्त परिणामों से दान देना या आदर भावपूर्वक दान न देना ।

तप के पाँच अतिचार– (१) तपस्या करके इस भव के सुख की चाहना करना (२) परभव के सुख की चाहना करना (३) अधिक जीने की यश की चाहना करना (४) मरने की चाहना करना (५) विषय भोगों की चाहना करना । तथा शक्ति होते हुए भी प्रतिदिन कुछ तप नहीं करना एव पक्खी आदि पर्व दिनों में भी कोई तप न करना ।

श्रावक के कुल ९९ अतिचार प्रसिद्ध है, वे इस प्रकार है– १४ ज्ञान के, ५ समकित के, ६० बारहव्रतों के, १५ कर्मादान के, ५ तप के अथवा स लेखना के हक्त ।

इसी प्रकार श्रमणों के भी १२५ अतिचार प्रसिद्ध है, वे इस प्रकार है– १४ ज्ञान के, ५ समकित के, पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना के २५,

रात्रि भोजन के २, ईर्यासमिति के ४, भाषा समिति के २, एसणा समिति के ४७(४२+५) । आदान निक्षेप समिति के २, परिष्ठापनिका समिति के १०, मन, वचन, काया तीन गुप्ति के ९, तप अथवा स लेखना के ५ अतिचार हक्त ।

प्रश्न–९ : अतिचार श्रवण के बाद आन द श्रावक ने क्या आचरण किया ?

उत्तर– ९९ अतिचार श्रवण कर आन द ने भगवान को व दना नमस्कार कर प्रतिज्ञा धारण की कि मक्त अन्य मतावल बी धर्म देवों को और उनके धर्म गुरूओं को व दन नमस्कार एव अत्यधिक वार्ता स पर्क नहीं करूँगा । इसमें राजा, देवता, माता-पिता, कुल की रीति, बलवान और आजीविका का आगार रखा । श्रमण निर्ग्रंथों को आहार, वस्त्रादि एव औषध वगैरह प्रतिलाभित करने का स कल्प किया । प्रतिज्ञा धारण करने के बाद उसने अपने मन में उठे प्रश्नों को पूछकर समाधान किया । तदनन्तर घर जाकर आन द ने अपनी पत्नि शिवान दा को भी व्रत धारण करने की प्रेरणा की । उसने भी भगवान की सेवा में पहुँच कर विनय भक्ति पूर्वक उपदेश श्रवण कर व्रत धारण किए ।

क्रमशः श्रमणोपासक पर्याय का पालन करते हुए शिवान दा पत्नि सहित आन द श्रावक, जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता बन गया । निर्ग्रंथ प्रवचन में उसकी आस्था दृढ़ से दृढ़तर बनी । कोई भी देव दानव उसे धर्म से विचलित नहीं कर सकता था । धर्म का र ग उसके रोम-रोम में रम चुका था । वह महिने में ६ दिन घर के समस्त कार्यों से निवृत होकर प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करता था । चौदह वर्ष के बाद आन द ने बड़े समारोह के साथ स पूर्ण कुटुम्ब की जिम्मेदारी अपने पुत्र को स भला कर स्वय पौषधशाला में निवृत्ति से रहने लगा । उस निवृत जीवन में उसने श्रावक की ११ प्रतिमाएँ स्वीकार की । जिसकी साढ़े पाँच वर्ष में सम्यक् आराधना की एव अ त में मृत्यु का समय नजदीक जानकर उसने भक्तप्रत्याख्यान स थारा ग्रहण किया ।

प्रश्न–१० : इस सूत्र में वर्णित श्रावकों की जीवनी से क्या बोध लेना चाहिये ?

उत्तर– **(१)** व्यक्ति को बुद्धिमान, व्यवहार कुशल एव मिलनसार होना चाहिये । **(२)** पत्नि का पति के प्रति हार्दिक अनुराग श्रद्धा और समर्पण भाव होना चाहिये । **(३)** धर्म की सच्ची श्रद्धा निष्ठा समझ प्राप्त हो जाने

के बाद व्रत धारण में आलस्य नहीं करना चाहिये । कितनी भी विशाल स पत्ति हो या कितना ही विशाल कार्यक्षेत्र क्यों न हो, श्रावक के व्रत धारण करने में उसे बाधक नहीं मानना चाहिये । क्यों कि स पत्ति धर्म में बाधक नहीं होती है उसकी अमर्यादा एव मोह-ममत्व बाधक होता है ।

कई लोग वर्षों तक धर्म सुनते रहते हक्त और भक्ति भाव करते रहते हक्त किन्तु श्रावक के १२ व्रतों को धारण करने में आलस के कारण परिस्थितियों और जिम्मेदारियों के बहानों को सामने रख देते हक्त । उन्हें इन श्रावकों के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये ।

(४) धर्म गुरुओं को भी चाहिए कि वे आई हुई परिषद् को श्रावक व्रतों का स्वरूप सरलता पूर्ण विधि से समझा कर उन्हें व्रत धारी श्रावक बनने के लिये उत्साहित करें । आजकल के धर्मोपदेष्टा व कई पूज्य आचार्य आदि यह विषय प्रायः लेते ही नहीं और कई इस विषय का प्रतिपादन करें तो भी श्रावक के व्रतों को पहाड़ के समान बताकर कठिनता का भय श्रावकों में भर देते हक्त । जिससे वे लोग श्रावक व्रतों को धारण करने की वार्ता को सदा आगे से आगे धकेलते रहते हक्त । अतः ऐसा न करते हुए इस विषय में विद्वान आचार्यों एव स त सतियों को विशेष ध्यान देना चाहिये ।

(५) उपदेश श्रवण के बाद जिनवाणी की हृदय से प्रश सा अनुमोदना करनी चाहिये । **(६)** अपनी शक्ति का मूल्या कन करके या विकास करके व्रत धारण करना । **(७)** पारिवारिकजनों को भी धर्म कार्य में व्रत प्रत्याख्यान में उत्साहित करना । **(८)** श्रावक पर्याय में तत्त्वज्ञान की भी वृद्धि करते रहना । आगमों का स्वाध्याय भी करना ।

(९) शीघ्र ही जिम्मेदारियों से निवृत्त होने की लगन रख कर सा सारिक कार्यभार पुत्र आदि को स भला देना चाहिये, यह नहीं कि मरे जहाँ तक घर दुकान का ध धा और मोह छूटे नहीं । ऐसी मनोवृत्ति से आराधना स भव नहीं रहती है । अतः समय पर ध धों से निवृत होकर साधना की अभिवृद्धि करने का लक्ष्य भी रखना चाहिये । यह श्रावक का पहला मनोरथ भी है । **(१०)** निवृत्त जीवन में शक्ति अनुसार तप ध्यान एका त चि तन मनन में लीन होकर साधना करना । **(११)** परिजनों की इतनी परवशता न होना अर्थात् पारिवारिक मोह की इतनी प्रगाढ़ता न होना कि स थारा स्वीकार करने में वे बाधक बनते रहें ।

(१२) गुणों के शिखर तक विकास होने पर भी विनय गुण नहीं छोड़ना ।

आन द का जीवन त्याग, तप, ध्यान, पड़िमा युक्त था, आदर्श श्रावक रत्न था, अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था फिर भी उसने गौतमस्वामी को देखते ही उनके प्रति श्रद्धा, विनयभक्ति के भावों में कोई कमी नहीं रखी । **(१३)** सत्य का सन्मान सदा जीवन में होना चाहिये । विनयवान होते हुए भी सत्य के लिये दृढ़ मनोबल भी होना चाहिये । सत्यता में किसी से दबने की या ड़रने की जरूरत नहीं होती है । **(१४)** भूल की जानकारी हो जाय तो घम ड़ या झूठा द भ नहीं करना चाहिये । सरलता और क्षमायाचना रूप नम्रता धारण कर जीवन सुन्दर एव साधनामय बनाना चाहिये ।

सार– ***जिन शासन में त्याग का, व्रत निष्ठा का, शुद्ध श्रद्धा का, सरलता, नम्रता आदि गुणों का, सत्यनिष्ठता, निड़रता एव क्षमापना भाव युक्त आत्मविकास करने वालों का महत्व है । ऐसे साधक अ तिम समय तक उच्च साधना में लीन बन कर आत्मकल्याण साध लेते हक्त । वे बीच में गुस्सा, घमण्ड़, अप्रेम, वैमनस्य, कलह, द्वेष, निन्दा, प्रमाद, आलस्य आदि दूषणों के शिकार नहीं होते हक्त ।***

(१५) धर्म में निश्चल दृढ़ मनोबल के साथ अपनी श्रद्धा को स्थिर रखने की प्रबल प्रेरणा कामदेव के चारित्र से मिलती है । मानव को अपने कर्म स योग से शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, सामाजिक आदि कई स कट की घड़ियों से गुजरना पड़ता है । उसमें क्षुब्ध नहीं होना, म्लान नहीं बनना, घबराना नहीं किन्तु धैर्य के साथ आत्म क्षमता को केन्द्रित करते हुए प्रसन्न चित्त से दृढ़धर्मी एव प्रियधर्मी बनकर समय व्यतीत कर लेना चाहिये ।

दशवैकालिक सूत्र में मनोबल को दृढ़ करने वाला आश्वासन वाक्य है उसे सदा स्मरण में रखना चाहिये, यथा– ***ण मे चिर दुक्खमिण भविस्सइ ॥ पलिओवम झिज्झइ सागरोवम , किम ग पुण मज्झ इम मणो दुह ॥*** **भावार्थ–** यह मेरा दुःख शाश्वत सदा रहने वाला नहीं है । बेचारे कई प्राणी नरक में अस ख्य वर्षों तक घोरातिघोर दुःख वेदना सहन कर रहे हक्त। मेरा यह मानसिक शारीरिक दुःख तो उसके सामने कुछ भी नहीं है । आत्मा सबकी समान हक्त । मेरी आत्मा ने भी वैसे ही घोरातिघोर कष्ट अज्ञान दशा में सहन किये हक्त । तो ज्ञानी एव मानव होकर अब मक्त ऐसे सामान्य कष्टों में क्यों घबराऊँ, मेरा घबराना श्रेयस्कर नहीं है । इस तरह चि तन कर श्रेष्ठ आदर्शों को सामने रख कर धैर्य से आपत्ति की घड़ियों को प्रसन्नता पूर्वक पार कर लेना चाहिये ।

(१६) कई श्रद्धालु लोग धर्म से लौकिक सुखों की चाहना करते रहते हक्त एव उसकी पूर्ति होने और न होने में ही धर्म की और धर्मगुरुओं की कीमत आ कते रहते हक्त । उन्हें तो चमत्कारी गुरु और चमत्कारी धर्म ही प्रिय लगता है । उन श्रावकों को कामदेव श्रावक के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये कि उसने देव द्वारा दिए कष्ट भी सहर्ष झेल लिए कि तु किसी भी प्रकार की दीनता नहीं की, यों भी नहीं सोचा कि "इतना ऊँचा धर्म धारण किया, तीर्थंकरों की शरण ली और उत्कृष्ट श्रावक धर्म का पालन कर रहा हूँ तो भी कोई स कट को टालने वाला नहीं मिला और इस धर्म के कारण ही यह इतनी बड़ी आफत आई, वास्तव में इस धर्म में कोई दम नहीं है । इसे धारण करने से क्या लाभ हुआ ? सुख की जगह दुःख ही मिला ।" ऐसा कोई स कल्प-विकल्प उसमें नहीं था ।

जिसमें ज्ञानयुक्त सच्ची श्रद्धा होती है उसके तो ऐसे उक्त गलत विचार आ ही नहीं सकते । किन्तु केवल अ धश्रद्धा अर्थात् ज्ञानाभाव एव स्वार्थ युक्त भक्ति की प्रमुखता वाली अ धश्रद्धा जिनमें होती है वैसे ऐहिक इच्छा वाले भद्रिक श्रद्धालु लोगों की स्थिति शीघ्र ड़ावाड़ोल होती रहती है । उन्हें चाहिये कि वे धर्म के प्रति ज्ञान गर्भित श्रद्धा रखें । अस्थिर चित्त वाले न बनें एव धर्म से चमत्कार और ऐहिक आशाओं से मुक्त बनें ।

(१७) अपार वैभव स पन्न होते हुए भी प्राचीन काल में मानव इतना सरल और पवित्रहृदयी होता था कि शीघ्र ही धर्म का बोध पाकर जीवन परिवर्तित कर लेता था । आज के मानव को भी अपने जीवन में ऐसी सहजता लानी चाहिये । धन स पत्ति को ही सर्वस्व और अ तिम पाथेय नहीं समझना चाहिये । परलोक में चलने वाला भाता(पाथेय)धन नहीं किन्तु धर्म ही है, यह अच्छी तरह हृदय में उतारना चाहिये ।

(१८) अपने किसी भी कोने में छिपी कमजोरी के कारण मानव से नहीं चाहते हुए भी कभी भूल हो जाना स भव है कि तु भूल को भूल समझ लेना, मान लेना और छोड़ कर सुधर जाना, यह एक जीवन का श्रेष्ठ आदर्श एव उत्थान करने वाला गुण है । हम अपने जीवन में भी ऐसा गुण धारण करें एव तत्काल अपनी भूलें स्वीकार कर सन्मार्ग में आ जावें ।

(१९) श्रमण श्रमणोपासकों को अपने साधना जीवन में कुछ समय शास्त्र अध्ययन श्रवण एव चि तन मनन में लगाकर ज्ञान की अक्षय निधि को प्राप्त करना चाहिये । दशवैकालिक सूत्र अध्ययन–९, उद्देशक–४ में कहा है

कि **श्रुत अध्ययन** चित्त को एकाग्र करने का अचूक उपाय तो है ही, साथ ही समय पर अपनी या अन्य की आत्मा को धर्म में स्थिर करने में भी श्रुत स पन्न साधक अद्‌भुत सफलता प्राप्त कर सकता है । अतः दत्तचित्त होकर साधकों को यथासमय श्रुत अध्ययन करके अपनी निर्णायक एव कुशल बुद्धि का विकास करना चाहिये । **(२०)** एका तवाद सभी मिथ्या है, अतः अनेका त सत्य स्वीकार करना चाहिये अर्थात् नियति को स्वीकार करते हुए भी पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । किसी भी कार्य की सफलता होने में एक या अनेक समवायों की प्रमुखता स्वीकार करते हुए अन्य का एका तिक निषेध नहीं करना चाहिये। व्यवहार, पुरुषार्थ प्रधान होता है, यह स्वीकार ने के साथ ही काल, कर्म, नियति और स्वभाव का भी अपनी-अपनी सीमा का महत्त्व समझना चाहिये। **(२१)** सकड़ाल ने अपनी बुद्धि एव समझदारी का आदर्श उपस्थित किया एव अ त में शुद्ध सत्य को निर्णायक बुद्धि से दृढ़ता के साथ स्वीकार किया । जिसे गोशालक की चमत्कारिक शक्ति भी विचलित नहीं कर सकी । उसी तरह जीवन में अनेक उतार चढ़ाव भले ही आवे किन्तु जीवन सत्य के साथ व्यतीत हो ऐसी सरलता एव बुद्धिमानी का सदुपयोग करना चाहिये । **(२२)** नियतिवाद के एका त सिद्धा त को मानने वाले व्यक्ति किसी का भी प्रयत्न या कर्तव्य नहीं मान सकते । किसी का गुण या अपराध भी नहीं मान सकते, जो कि व्यवहार से सर्वथा विपरीत होता है तथा नियतिवादी के लिये धर्म क्रिया का पुरुषार्थ भी निरर्थक होता है । अतः ऐसे एका त सिद्धा त के मिथ्या चक्कर में नहीं आना चाहिये ।

(२३) अशुभ कर्मों के स योग से किसी तीव्रतम दुरात्मा का निकटतम स योग मिल जाय तो उससे उपेक्षा भाव रखते हुए भी आत्मसाधना की जा सकती है। यह आदर्श महाशतक श्रमणोपासक ने उपस्थित किया । चि तन करे कि– क्या कमी थी रेवती की दुष्प्रवृत्ति में–मद्य मा स की लौलुप, बारह सौतों को मारने वाली, पीहर से नित्यप्रति गाय के नवजात दो बछड़ों का मा स म गाने वाली, पौषध के समय पति के साथ कामवासना का व्यवहार करने वाली एव यहाँ तक कि पति के आमरण स थारे के समय भी कामवासना युक्त व्यवहार एव प्रेरणा करने से नहीं रुक सकी । अहो ! आश्चर्य है, कर्मों की विचित्रता और विड़ बनाओं का, कैसा विरोधी स योग, पति तो महान दयालु धर्मात्मा और पत्नि महारस लौलुप, कामासक्त और दुर्गतिगामी । दोनों का मरण समय भी लगभग साथ ही रहा ।

(२४) व्यसनी या मद्य मा सलोलुप व्यक्ति कहा तक गिरता ही जाता है, इसका कोई ठिकाना ही नहीं है वह घोर से घोर पाप कार्यों में फँसता जाता है । यह जानकर सदा सात कुव्यसनों से दूर रहना चाहिये । सात कुव्यसन मानव के लिये सर्वथा त्याज्य है– जुआ, शिकार, वैश्या, परस्त्री, चोरी, मद्य, मा स ।

(२५) जिन शासन में तनिक भी कटुता या अमनोज्ञ व्यवहार क्षम्य नहीं है । सामने वाला कितना भी पापी दुरात्मा क्यों न हो । देखें– एक छोटी सी दिखने वाली भूल के लिये स्वय भगवान ने गौतमस्वामी को भेजकर महाशतक श्रावक को सावधान होने की प्रेरणा की । जैसे कि उसने कोई महान अपराध कर लिया हो ।

(२६) वास्तव में लोहे और लकड़ी, पीतल और ता बे में लोहे की मेख (कील)क्षम्य हो सकती है किन्तु सोने के पात्र में लोहे की बारीक मेख भी अक्षम्य होती है । जिस तरह सुकौमल पाँव में का टे की बारीक सलाका भी क्षम्य नहीं हो सकती, वह सारे शरीर की समाधि नष्ट करने वाली हो सकती है । उसी प्रकार अहिंसा एव समभाव की साधना के सर्वोच्च जीवन(स थारे) में पापी व्यक्ति के प्रति की गई कटुता या अमनोज्ञता का व्यवहार भी अक्षम्य है । जिसे सुधारने के लिये तीर्थंकर-गणधर को भी प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता है और जिन शासन का गृहस्थ महान साधक भी उस भूल को स्वीकार कर प्रायश्चित्त करता है । यह है जिन शासन की साधना का महान आदर्श ।

(२७) जिन शासन की साधना में लगे सभी साधकों को अपने जीवन के व्यवहारों का सूक्ष्मतम अवलोकन करना चाहिए एव किसी भी व्यक्ति के प्रति अपने मानस में कटुभाव हो अथवा कटु व्यवहार या अमोज्ञ व्यवहार हो तो उसे अपनी ही भूल समझकर स्वीकार करना चाहिये और उसे सुधारना अपनी आराधना के लिये आवश्यक समझना चाहिये ।

(२८) आजकल साधकों के मन में न मालूम किन-किन के प्रति कटुता, अमनोज्ञता, अप्रसन्नता, अमैत्री के स कल्प चक्कर काटते ही रहते हक्त । किन-किन के प्रति अमनोज्ञ भाव और अमनोज्ञ व्यवहार के चक्र चलते रहते हक्त । उन सभी साधकों को आत्म जागरणा कर सजग–सावधान होना चाहिये । अन्यथा बाह्यक्रियाएँ और विचित्र विकट साधनाएँ सफलता की श्रेणी में नहीं पहुँचा सकेगी । इस पर बार बार सभी श्रमणोपासकों को

और विशेष कर निर्ग्रंथ साधना करने वालों को आत्मसाक्षी पूर्वक मनन चि तन एव स शोधन अवश्य करना चाहिये ।

(२९) कई धर्म श्रद्धालुजन व्रतों की प्रेरणा करने पर घर की परिस्थिति का आल बन लेकर व्रत नियम एव साधनाओं से व चित रह जाते हक्त । उन्हें महाशतक श्रमणोपासक का आदर्श सामने रखना चाहिये कि तेरह पत्नियां होते हुए भी भगवान के पास व्रत धारण करने में उसने शर्म या बहाना बाजी नहीं की कि तु आत्मीयता से धर्म मार्ग को स्वीकार किया ।

(३०) बारह स्त्रियों की मृत्यु दुर्घटना रेवती पत्नि के द्वारा एक श्रावक के घर में कर दी गई तो भी उस श्रावक ने सामायिक और महिने के छः पौषध आदि साधना नहीं छोड़ी । स्वय की प्रमुख स्त्री का मा साहार और मद्य सेवन नहीं छूट सका तो भी महाशतक श्रावक अपनी साधना की प्रगति करते ही गये ।

(३१) रेवती की विलासिता एव आसक्ति बढ़ती ही गई तो भी महाशतक की उनकी साधना बीस वर्ष में अविराम स थारे तक पहुँच गई । कितनी उपेक्षा, कितनी एकाग्रता, शा ति, समभाव रखा होगा महाशतक श्रमणोपासक ने, कि ऐसी विकट स योगजन्य स्थिति में भी उन्होंने गृहस्थ जीवन में अवधिज्ञान एव आराधक अवस्था प्राप्त कर ली ।

इन महान श्रमणोपासक के शा त एव धैर्य स युक्त साधनामय जीवन से प्रेरणा पाकर हमें अनेकानेक गुणों को प्राप्त करके अपने जीवन को उज्जवल बनाना चाहिये ।

(३२) आजकल अधिकतर लोग दुर्घटनाओं के वातावरण से व्याप्त होकर व्यक्ति के दोष से भी धर्म को बदनाम करने में लग जाते हक्त, यह उनकी भावुकता एव अज्ञानदशा से होने वाली एक गहरी भूल है । आध्यात्म धर्म किसी को अकृत्य करने की र च मात्र भी प्रेरणा नहीं करता है । धार्मिक स स्कारों वाले व्यक्ति के परिवार में यदि कोई अकृत्य हो भी जाता है तो वह उस पारिवारिक सदस्य की अधार्मिकता आदि दूषणों का अथवा पूर्व कृत कर्मों का प्रतिफल है, ऐसा समझना चाहिये । धर्म और धार्मिक व्यक्ति तो ऐसे समय में भी अपने आदर्श एव सिद्धा त में कायम रहते हक्त । कहा भी है–

कीमत घटे नहीं वस्तु नी, भाखे परीक्षक भूल ।
जेनो जेहवो पारखी, करे मणी नो मूल ॥

प्रश्न–११ : आदर्श श्रावक के २१ गुण कौन-कौन से कहे हक्त ?

उत्तर– श्रावक को सामान्य दर्जे से प्रार भ होकर भी निर तर प्रगतीशील रहना चाहिये एव इन विशिष्ट गुणों की उपलब्धि करनी चाहिये ।

(१) श्रावक जीवाजीव का जाणकार होवे । (२) पुण्य पाप आश्रव स वर ब ध निर्जरा और मोक्ष के सही स्वरूप का ज्ञाता हो । (३) कर्मब ध कराने वाली पच्चीस क्रिया का ज्ञाता हो । (४) १४ नियम (२३ नियम) सदा धारण करे । तीन मनोरथ का सदा चि तन करे । (५) सोते-उठते समय धर्म जागरणा करे अर्थात् आत्मविकास का चि तन करे । (६) दृढ़धर्मी, प्रियधर्मी ऐसा बने कि उसे देव भी धर्म से नहीं ड़िगा सके । (७) जीवन में देवता के सहायता की आशा नहीं रखे अर्थात् देवी देवता की मनौती न करे । (८) स्व सिद्धा त में कोविद बने । (९) छः छः पौषध प्रतिमास करे । (१०) समाज में पूर्ण विश्वासपात्र बनें, प्रतिष्ठित जीवन रखे । (११) तप एव क्षमा की शक्ति का विकास करे । (१२) दान-शील के आचरण में उत्तरोत्तर प्रगति करे । स पत्ति का अमुक हिस्सा अनुक पा दान आदि में लगावे । (१३) किसी भी भिखारी याचक को खाली न जाने दे । (१४) अपने क्षेत्र में विराजित स त सतियों के दर्शन व दन आदि की प्रवृत्ति के लिये समय निर्धारित करे । व्याख्यान श्रवण, ज्ञान चर्चा आदि का लाभ ले । (१५) आहार, वस्त्र, मकान, पाट, पात्र, औषध आदि पदार्थों के सुपात्र दान देने में निर्दोषता का पूर्ण विवेक रखे और सदा दान की भावना और उस स ब धी विवेक की वृद्धि करे । (१६) ग भीर और सहिष्णु बनने का प्रयत्न करे । (१७) व्यापारिक छूटों को घटावे, सा सारिक प्रवृत्तियों जिम्मेदारियों से क्रमशः निवृत होने का प्रयास करते रहे । (१८) उदासीन वृति की, वैराग्य की एव त्याग पच्चक्खाणों की वृद्धि करे । (१९) रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग करे, जमीक द अन तकाय का सर्वथा त्याग करे, सचित्त का सर्वथा त्याग करे, कर्मादान का सर्वथा त्याग करे, एव प्रवृत्ति मिथ्यात्व का भी सर्वथा त्याग करे । ये पाँच प्रत्याख्यान करने के लिये श्रावक को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये । (२०) निवृतिमय साधना का अवसर प्राप्त कर आन दादि की तरह पौषधशाला में रहकर श्रावक पड़िमाओं की आराधना करे । अवसर प्राप्त होने पर स यम ग्रहण करने के लिये तत्पर बने । (२१) तीसरे मनोरथ को पूर्ण सफल करने के अवसर को जानकर सावधानी पूर्वक स्वय आजीवन स थारा प ड़ित मरण स्वीकार करे ।

प्रश्न–१२ : श्रावक के १२ व्रत धारण करने का मौलिक उद्देश्य क्या है एव समकित सहित अहिंसा आदि प्रत्येक व्रत का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर– व्रत धारण का प्रयोजन– जीव अनादि काल से ८४ लाख जीवयोनि में परिभ्रमण कर रहा है । वह जब तक प्रमाद, अव्रत, विषय, कषाय एव अशुभयोग के परिणाम स्वरूप कर्मब ध करता रहेगा तब तक जन्म, जरा और मरण के चक्कर में एव दुःखों की पर परा में परिभ्रमण करता रहेगा । ऐसी अवस्था जीवन का अस स्कृत रूप है । सद्गुरु की कृपा पाकर शुद्ध श्रद्धान के साथ सद्ज्ञान की प्राप्ति करके चारित्रमार्ग में उत्तरोत्तर विकास करना, यही जीवन का स स्कृत रूप है । भाग्यशाली जीव ही चारित्र ग्रहण कर उसका पालन करते हक्त । शास्त्र में चार बातें दुर्लभ कही गई है–

चत्तारि परम गाणि, दुल्लहाणीह ज तुणो ।
माणुसत्त सुइ सद्धा, स जमम्मि य वीरिय ॥उत्तरा.अ.३,गा.१॥

इस स सार में प्राणियों को मानव देह मिलना दुर्लभ है, मानव देह मिल जाने पर वीतराग धर्म मिलना दुर्लभ है । कदाचित् धर्म प्राप्त हो जाय तो शास्त्र श्रवण और श्रद्धा होना अत्य त दुर्लभ है, उससे धर्म आचरण कर पाना और भी दुर्लभ है अर्थात् श्रावक व्रत या स यम ग्रहण करना एव उसकी आराधना करना महान दुष्कर है ।

चार गति में, मनुष्यगति ही एक मात्र ऐसी गति है जिसमें जीव सिर्फ धर्माचरण ही नहीं कर सकता है, अपितु कर्मों के ब धन को तोड़ कर सिद्ध बुद्ध एव मुक्त भी हो सकता है । मानव भव में जीव को जो आध्यात्मिक विवेक शक्ति प्राप्त होती है, वह किसी और भव में सुलभ नहीं है । अतः मनुष्य भव पाकर उसको सफल करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये ।

व्रत धारण करने से चारित्र का विकास तो होता ही है, किन्तु साथ ही अव्रती होने से जो निरर्थक आश्रव होता है, उससे बचा जाता है । जिससे कर्म ब धन उतना कम होता है । व्रती जीव का नरकादि दुर्गतिओं में भ्रमण करना ब द हो जाता है । उसका वर्तमान जीवन भी शा त और सुखमय हो जाता है । आत्मा जब विकास की ओर प्रवृत्त होती है तब उसे जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आत्मशा ति की उपलब्धि होती है, वह शब्दों द्वारा नहीं कही जा सकती है । अतः प्रत्येक सद्गृहस्थ अपने जीवन को व्रतमय बनावे यह आवश्यक है । साथ ही जीवन की साधना उत्तरोत्तर बढ़ाते रहे, तभी वह प्राप्त मानव जीवन को सफल बना सकेगा ।

बारह व्रतों में प्रत्येक का प्रयोजन :–

सम्यक्त्व प्रयोजन– साधना जीवन में धर्म के सही मार्ग का एव उस मार्ग के उपदेष्टा का ज्ञान होना और उनके प्रति श्रद्धा भक्ति होना, आत्म कल्याण का प्रमुख अ ग है । मोक्षार्थी साधक जब तक जीव अजीव को, हेय उपादेय को, पाप पुण्य को या धर्म अधर्म को सही रूप से समझ नहीं लेता, सम्यक् रूप से उस पर श्रद्धान नहीं कर लेता, तब तक उसका आचरण फलदायी नहीं हो सकता । कहा भी है–

एक समकित पाये बिना, तप जप किरिया फोक ।
जैसे मुरदों सिणगारवो, समझ कहे तिलोक ॥

इसलिये व्रत धारण के पहले तत्त्वों का ज्ञान और सही श्रद्धान होना आवश्यक है। वे तत्त्व दो प्रकार से कहे गये हक्त– (१) जीवादि नव तत्त्व (२) देव, गुरु, धर्म तीन तत्त्व । इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का सही ज्ञान और सही श्रद्धान होना यही सम्यक्त्व है । इसके बिना साधुपना या श्रावकपना, अ क बिना की केवल बिंदियों के समान है । अतः सर्व प्रथम सम्यक्त्व की प्रतिज्ञा का कथन किया गया है।

देव गुरु धर्म तत्त्व का सामान्य ज्ञान :– देव– सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर और सिद्ध भगवान आराध्य देव है । **गुरु–** महाव्रत समिति गुप्तिव त एव जिनाज्ञाओं का पालन करने वाले सुसाधु आराध्य गुरु हक्त, ये निर्ग्रंथ कहलाते हक्त । वर्तमान में (१) बकुश (२) प्रतिसेवना (३) कषाय कुशील ये तीन निर्ग्रंथ पाये जाते हक्त । **धर्म–** पाप त्याग रूप अहिंसा प्रधान, स वर निर्जरामय धर्म, आराध्य धर्म है । **तत्त्व–** कर्म, पुनर्जन्म, परलोक, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, व्रत, नियम, स यम, तप, ज्ञान, श्रद्धान, मुक्ति एव नय आदि जिन भाषित सिद्धा त ज्ञेय एव श्रद्धेय तत्त्व है । इन सभी का सम्यग् ज्ञान कर, सम्यग् श्रद्धान करना, यह सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन है ।

(१) प्रथम व्रत का प्रयोजन :–

सव्वे जीवा वि इच्छ ति, जीविउ न मरिज्जिउ ।
तम्हा पाणिवह घोर , णिग्ग था वज्जय ति ण ।
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्राण ॥

स सार में कोई भी जीव मरना एव दुःखी होना नहीं चाहता ।अतः उन

प्राणीयों का वध करना घोर पाप है । इससे जीव नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करता है और अनेक जीवों के साथ वैर का अनुब ध करके स सार की वृद्धि करता है । अतः स्थूल हिंसा का त्याग एव सूक्ष्म हिंसा की मर्यादा करने के लिये श्रावक का यह प्रथम व्रत कहा गया है ।

(२) दूसरे व्रत का प्रयोजन :-

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्व साहुहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाण , तम्हा मोस विवज्जए ॥

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाँके हृदय साँच है, ताँके हृदय आप ॥

झूठ को लोक के सभी महात्माओं ने त्याज्य कहा है । असत्यभाषी व्यक्ति का विश्वास समाप्त हो जाता है । उसका सर्वत्र अविश्वास फैल जाता है । सत्य को भगवान की उपमा दी गई है । सत्य को पूर्ण रूप से धारण करने वाला स्वय परमात्म स्वरूप बन जाता है । इसलिए लघु साधक-श्रावक के जीवन में स्थूल झूठ का त्याग हो एव सूक्ष्म झूठ का विवेक बढ़े, इसके लिए यह दूसरा व्रत कहा गया है ।

(३) तीसरे व्रत का प्रयोजन :-

चोरी कर होली धरी, भई छिनक में छार ।
ऐसे माल हराम का, जाता लगे न वार ।

चोरी करने वाले का जीवन अनैतिक होता है, कल कित होता है । चोरी करने वाला सदा भयभीत बना रहता है । उसकी लोभ वृत्ति बढ़ती जाती है । कभी भी चोरी करते पकड़ा जाय तो वह शारीरिक और मानसिक घोर कष्ट प्राप्त करता है । चोरी से प्राप्त धन जीव को कभी भी शा ति सुख नहीं दे सकता है । कहा भी है- **चोरी का माल मोरी में ।** तथा-

रहे न कोड़ी पाप की, जिम आवे तिम जाय ।
लाखों को धन पाय के, मरे न कफन पाय ।

श्रावक ऐसे घृणित निंदित कार्य से बचे, इसके लिए उसे यह तीसरा व्रत स्वीकार करना आवश्यक है । इसमें स्थूल-बडी चोरी का त्याग होता है और सूक्ष्म चोरी का विवेक होता है ।

(४) चौथे व्रत का प्रयोजन :-

अब भचरिय घोर , पमाय दुरहिट्ठिय ॥दशवै.अ.६॥

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सय ॥दशवै.अ.६॥

कुशील अधर्म का मूल है और महान दोषों को उत्पन्न कराने वाला है अर्थात् अनेक दोष, अनेक पाप और अनेक दुखों की पर परा को बढ़ाने वाला यह कुशील पाप है । धर्मीजन को इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये ।

श्रावक भी धर्म साधना करने का इच्छुक होता है । अतः उसे भी कुशील पर अ कुश लगाना चाहिये । परस्त्री सेवन का त्याग करना चाहिये एव स्वस्त्री स ब धी कुशील प्रवृत्ति को सीमित करना चाहिये । कुशील का त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन करने से बुद्धि, बल, स्वास्थ्य लाभ एव जीवन विकासोन्मुखी बनता है । शास्त्र में कहा है- ***तवेसुवा उत्तम ब भचेर - ॥सूय.६॥ सभी तपों-धर्माचरणों में ब्रह्मचर्य उत्तम तप है, उत्तम आचार है ॥***

(५) पाँचवें व्रत का प्रयोजन :- ***इच्छा हु आगास समा अण तया ॥ उत्त.९॥ जहा लाहो तहा लोहो, लाहो लोहो पवड्ढइ ॥ उत्त.८ ॥ महार भी महापरिग्रही नरकायु बाँधता है ॥ ठाणा ग-४॥ वियाणिया दुक्ख विवद्धण धण , ममत्तब ध च महा भयावह ॥ उत्तराध्ययन-१९ ॥***

इच्छाएँ असीम है ।ज्यों ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है । महापरिग्रही नरक का आयु बाँधता है । धन और उसका ममत्व दुःख वृद्धि कराने वाला है और आत्मा के लिये दुर्गति में ले जाने वाला होने से महा भय रूप है ।

अतः मोक्षार्थी साधक को अपनी इच्छाएँ, परिग्रह और ममत्व को अवश्य मर्यादित कर लेना चाहिये । इस व्रत में गृहस्थ जीवन की आवश्यकता अनुसार परिग्रह की मर्यादा करने का ही मुख्य उद्देश्य है ।

(६) छट्ठे व्रत का प्रयोजन :- यह छट्ठा आदि व्रत, पाँच अणुव्रतों को पुष्ट करने वाले हक्त अर्थात् उनहीं की उत्तरोत्तर वृद्धि कराने वाले हक्त । लोक में जितने क्षेत्र हक्त और उनमें जो भी क्रियाएँ चल रही है उनका त्याग नहीं करने से सूक्ष्म क्रिया आती रहती है । दिशाओं में क्षेत्र सीमा कर लेने से उसके आगे जाने का या पाप सेवन करने का त्याग हो जाता है, तब वहाँ की आने वाली क्रियाएँ ब द हो जाती है । अतः श्रावक को आवश्यक सीमा निर्धारण कर उसके आगे के स पूर्ण लोक में अपनी प्रवृत्ति करने कराने का त्याग कर देना चाहिये । जिस तरह जो जो मकान कमरे काम न आवे तो उन्हें ब द रखा जाय तो धूल कचरा नहीं भरता है, खुला रखने से भर जाता है । उसी प्रकार दिशाओं की सीमा निर्धारित कर, आगे का त्याग

कर देने से उस पाप क्रिया का आश्रव ब द हो जाता है । अतः श्रावक के लिये छः दिशाओं की मर्यादा रूप यह व्रत कहा गया है । इसे धारण करना अत्य त सरल है ।

(७) सातवें व्रत का प्रयोजन :– लोक में खाने के एव उपयोग में लेने के कई पदार्थ है एव व्यापार ध धे भी अनेक हक्त उनका त्याग करने से ही त्यागी होता है और त्याग नहीं करने से उनकी क्रिया आती रहती है । छठे व्रत से क्षेत्र सीमा हो जाने पर उस क्षेत्र से रहे पदार्थों की एव व्यापारों की मर्यादा करना भी आवश्यक है । इसलिये २६ बोल एव व्यापारों की मर्यादा के लिये यह सातवाँ व्रत धारण करना चाहिये । इसमें अत्यधिक पाप ब ध कराने वाले १५ ध धों–कर्मादान के त्याग की प्रेरणा भी है । स भव हो सके तो श्रावक को उन ध धों का पूर्णतः त्याग करना चाहिये ।

(८) आठवें व्रत का प्रयोजन :–

योग्य खर्च करवो भलो, भलो नहीं अति भाय ।
लेखन भर लिखवो भलो, नहीं रेड़े रुसनाय ॥
सेठ उपाल भ आपियो, निरर्थक ढ़ोल्यो नीर ।
रोग हरण मोती दिया, गई बहू की पीर ॥

स्याही से लिखने वाला सीमित कलम भर के लिखता है किन्तु कागज पर स्याही नहीं गिराता है । उसी तरह योग्य और आवश्यक खर्च करना उचित होता है । आत्मा के लिये भी यह समझना चाहिये कि श्रावक द्वारा अत्य त आवश्यक सा सारिक कार्य या पाप कार्य के अतिरिक्त निरर्थक के पाप कार्य करना, अविवेक और अज्ञान दशा के अनर्थ द ड़ होते हक्त ।

निरर्थक एक लोटा पानी भी खर्च करना या फेंकना श्रावक पस द नहीं करता है और आवश्यक होने पर खरे मोती भी खर्च कर देता है । बस यही विवेक जागृत करने के लिये यह आठवाँ व्रत है।

गृहस्थ में रहने वाले को कई कार्य आवश्यकतानुसार करने पड़ते हक्त । तत्स ब धी आश्रव और ब ध भी उसके हो जाता है । किन्तु जो कर्माश्रव और ब ध निरर्थक ही अविवेक, आलस्य और अज्ञानता से होते हक्त, उन्हें रोकने के लिये श्रावक को ज्ञान और विवेक की वृद्धि करनी चाहिये तथा आलस्य लापरवाही को हटाकर सावधानी सजगता जागरूकता रखनी चाहिये । अज्ञान दशा से की जाने वाली या विकृत पर परा से की जाने वाली प्रवृत्तियों को ज्ञान और विवेक के साम जस्य से त्याग देना चाहिये ।

ये प्रवृतियाँ काया,वचन और मन की भी हो सकती है । अनर्थद ड़ के चार भेदों में इन सब का समावेश हो जाता है । अतः श्रावक को इस व्रत में अनेक त्याग–मर्यादाएँ करने के साथ चार प्रकार के अनर्थद ड़ों का स्वरूप समझकर उनका भी त्याग करना चाहिये । जिससे अनेक व्यर्थ के कर्मब ध से आत्मा की सुरक्षा की जा सके ।

समझू श के पाप से, अणसमझू हरष त ।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म ब ध त ॥
समझ सार स सार में, समझू टाले दोष ।
समझ समझ कर जीवड़ा, गया अन ता मोक्ष ॥

(९) नवमें व्रत का प्रयोजन :–

लाखख ड़ी सोना तणी, लाख वर्ष दे दान ।
सामायिक तुल्ये नहीं, इम भाख्यो भगवान ॥

पूर्व के आठ व्रतों में मर्यादाएँ की गई है । इस व्रत में मर्यादा या पाप का आगार न रखते हुए अल्प समय के लिये सभी पापों का सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग किया जाता है । पूर्वाचार्यों ने इसका समय निर्धारण ४८ मिनट का किया है । अतः कम से कम ४८ मिनट तक प्रति दिन श्रावक को सभी पापकार्यों का त्याग करके उस समय में धर्म जागरण कर आत्मोन्नति करने के लिये एव आत्मा को शिक्षित करने के लिये सामायिक व्रत अवश्य धारण करना चाहिये । इस व्रत को धारण करने में अपनी इच्छा अनुसार सामायिक करने की स ख्या निर्धारित की जाती है ।

(१०) दसवें व्रत का प्रयोजन :– पूर्व व्रतों में जो जो मर्यादाएँ जीवन भर के लिए की गई है उन्हें दैनिक मर्यादा में सीमित करना इस व्रत का उद्देश्य है । जीवन भर के लक्ष्य से मर्यादाएँ अधिक-अधिक रखी जाती है, प्रतिदिन उतनी आवश्यकता नहीं होती है । अतः विशाल क्रिया को कम करने के लिये श्रावक को दैनिक नियम धारण करने भी आवश्यक हो जाते हक्त, तभी उसका पाप क्रियाओं के आश्रव को रोकने का उद्देश्य पूर्ण सफल हो सकता है । अतः १४ नियम(२३ नियम) धारण करने रूप यह देशावकाशिक व्रत है । इसमें २४ घ टों के लिये अनेक नियम धारण किये जाते हक्त । इस व्रत को धारण करना अत्य त सरल और महान लाभदायी है । अतः सभी श्रावकों को यह व्रत अवश्य धारण करना चाहिये ।

(११) ग्यारहवें व्रत का प्रयोजन– दिनभर पुरुषार्थ करने वाले को जैसे रात्रि मे विश्राम की आवश्यकता होती है, उसी तरह श्रावक के गृहस्थ जीवन में सदा आत्मा के कर्मब ध रूप भार वहन करने का जो क्रम चालू है, आश्रवों की जो प्रवृत्तिएँ चालू है, उनसे महिने में कम से कम ६ दिन विश्रान्ति मिलना आवश्यक होता है । जिस तरह परिश्रमी को शारीरिक विश्राम मिलने से उसका श्रम विकसित होता है । उसी तरह आत्मगुणों के विकास के लिये श्रावक को स सार विश्रान्ति रूप पौषध की आवश्यकता होती है ।

इसीलिए आगमों में वर्णित अनेक श्रावक महिने में छः छः पौषध स्वीकार करते थे । सरकार भी श्रमिकों के लिये रविवार आदि की छुट्टी इसी विश्रान्ति के उद्देश्य से करती है । इसलिए श्रावक को महिने में एव वर्ष में कुछ दिन ऐसे निकालने चाहिए जिसमें वह पूरे दिन धर्म साधना कर सके । इसके लिये यह श्रावक का ग्यारहवाँ व्रत कहा गया है । समर्थ साधक को खाने पीने का भी त्याग करना इस व्रत का उद्देश्य है, तभी पूर्ण आत्मसाधना हो सकती है । अल्प सत्त्व साधक इस व्रत में आहार करते हुए भी पाप त्याग रूप पौषध स्वीकार कर आत्मसाधना कर सकते हक्त ।

(१२) बारहवें व्रत का प्रयोजन :– गृहस्थ जीवन की साधना अधूरी साधना है । परिस्थिति एव लाचारी की साधना है । वास्तव में पूर्ण साधना स यम जीवन से ही स भव है । श्रावक की सदा मनोकामना होती है कि कब मक्त मुनि बनूँ और स यम जीवन स्वीकार करूँ ।

जब तक वह अपने मनोरथ को सफल नहीं कर सकता है, तब तक भी श्रमण धर्म का अनुमोदन करते हुए वह श्रमण निर्ग्रंथों की सेवा भक्ति कर सकता है । तदनुसार वह अपने भोजन एव अन्य सामग्री से उनका सत्कार सम्मान करके उनके स यम में सहयोगी बन कर उनकी साधना को श्रेष्ठ मानते हुए अनुमोदना करता है और उससे वह महान कर्मों की निर्जरा करता है ।

इसलिये गृहस्थ जीवन में रहने वालों के लिये स यम के सहज लाभ का अवसर रूप यह बारहवाँ व्रत कहा गया है । इसके पालन से जिन शासन की भक्ति होती है एव गुरु सेवा का आन द भी प्राप्त होता है । इस व्रत में भिक्षा के दोषों को न लगाते हुए शुद्ध भावों से दान दिया जाता है, जिसे सुपात्र दान कहा जाता है । इसमें किसी भी प्रकार की लौकेषणा नहीं की जाती है । गुरुभक्ति, स यम चर्या का अनुमोदन और कर्मों की निर्जरा का

हेतु ही मात्र होता है । नियमों से युक्त एव दोष रहित दान का और भावों की पवित्रता का तथा लेने वाले पात्र निर्मल आत्मा का स योग मिल जाने पर, इस व्रत प्रक्रिया का महत्त्व बहुत ही बढ़ जाता है ।

प्रश्न–१३ : श्रावक जीवन में स्वीकार करने योग्य अ तिम सारभूत शिक्षाएँ क्या है ?

उत्तर– (१) सभी जैन श्रमणों का सत्कार-सन्मान, विनयभक्ति, शिष्टाचार आदि अवश्य करना । समय निकाल कर ज्ञान प्राप्त करना । यथाशक्ति सेवा सहयोग करना । सुपात्र दान देकर शाता पहुँचाना ।

(२) अन्य मतावल बी स न्यासी आदि से अति परिचय आदि न करना । किन्तु स्वत: स योग मिल जाय तो अशिष्टता, असभ्यता नहीं करना ।

(३) कुल-पर परा से देव-देवीपूजन आदि करना पड़े तो उसे धर्म नहीं समझ कर, सा सारिक कार्य समझना ।

(४) हिंसा में, आड़ बर में, धर्म नहीं समझना और हिंसा आड़ बर को धर्म बतावे उसे खोटा समझना । पाप के आचरण को कभी भी धर्म नहीं मानना ।

(५) किसी भी व्यक्ति या समुदाय विशेष की निंदा, अवहेलना, घृणा नहीं करना । माध्यस्थभाव, समभाव, अनुक पाभाव रखना एव आवश्यक न हो वहाँ तक मौन भाव रखना ।

(६) जिनाज्ञा का उल्ल घन करने वाले जैन श्रमणों को सदा यथावसर विनय विवेकयुक्त शब्दों में सूचित करते रहना । कि न्तु लोक निन्दा न करना ।

(७) स सार के किसी भी प्राणी के प्रति अपने मन में राग-द्वेष, नाराजी, र ज, चिड़, एलर्जीभाव नहीं रखना । चाहे वह पापी हो, दुष्ट हो, विरोधी हो, प्रतिपक्षी हो, धर्मी हो, अशुद्ध धर्मी हो अथवा अहित करने वाला हो, पागल या मूर्ख हो या शिथिलाचारी हो, अन्य स प्रदाय या धर्म का अनुयायी हो । सभी के प्रति अपना चित्त साफ(स्वस्थ) और प्रसन्न रखना चाहिये । सब के पुण्य-पाप, उदयकर्म अलग-अलग होते हक्त, ऐसा चि तन करके समभाव रखना चाहिये । यह समकित का प्रथम लक्षण **सम** है ।

(८) परमत, परपाख ड़, अन्यदर्शनी, मिथ्यादृष्टि आदि की स गति परिचय प्रश सा सन्मान आदि का सम्यक्त्व शुद्धि की अपेक्षा आगमों में निषेध है । किन्तु स्वदर्शनी, जिनमतानुयायी, तीर्थंकरों की वाणी सम्यक् निरूपण

करने वाले जो जैन श्रमण निर्ग्रंथ हक्त उनसे नफरत करना, अनादर करना, अयोग्य आचरण है, रागद्वेष वर्धक आचरण है, स कीर्णवृत्ति का परिचायक है एव आगम सम्मत भी नहीं है; अपितु जिन शासन की अवहेलना कराने वाला निम्न कोटी का कर्तव्य है । तात्पर्य यह है कि तीर्थंकर के अनुयायी, अनुरागी समस्त जैन श्रमणों का सन्मान रखना चाहिये तथा अनादार तिरस्कार तो किसी का भी नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न–१४ : श्रावक को ज्ञानवृद्धि करने के लिये अत्य त आवश्यक एव उपयोगी साहित्य वाँचन में क्या सुझाव है?

उत्तर– (१) सम्यकत्व विमर्श, मोक्षमार्ग, नव तत्त्व सार्थ, समर्थ समाधान भाग–१–२–३, उत्तराध्ययन सूत्र अनुवाद, दशवैकालिक सूत्र अनुवाद, जैन त्तत्त्व प्रकाश, प्रार भिक रूप में अवश्य पढ़ लेना चाहिये । **(२)** उपासक दशा सूत्र का सारा श वर्ष में अनेक बार पढ़ते रहना चाहिये । **(३)** बारह व्रतों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक से महिने में दो बार अर्थात् पक्खी-पक्खी अवश्य पढ़ना चाहिये । **(४)** आगम के प्रति आकर्षण बढ़ने पर ३२ आगमों के हिन्दी सारा श की बत्तीस पुस्तकें एव चार छेदसूत्र विवेचन युक्त ब्यावर से प्रकाशित भी यथासमय पढ़ लेना चाहिये ।

एच्छिक अन्य चर्चा-साहित्य :– सद्धर्म म ड़न, समकित सार, सृष्टिवाद और ईश्वर, गणधरवाद, जिनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा, लोकाशाह मत समर्थन, स्थानकवासी जैन धर्म की सत्यता । जैन सिद्धा त बोलस ग्रह भाग एक से सात तक, मुखवस्त्रिका निर्णय, सम्यक्त्व शल्योद्धार इत्यादि निब ध चर्चा के साहित्य भी प्राप्त हो सके तो पढ़ना चाहिये ।

समस्त आगम(लेखक–स पादक) :– घासीलालजी म॰सा॰, मधुकर मुनिजी म॰सा॰, अमोलक ऋषिजी म॰सा॰, आत्मारामजी म॰सा॰; सैलाना, बीकानेर, जोधपुर एव जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति आदि से प्रकाशित आगम साहित्य का अध्ययन करना ।

प्रश्न–१५ : श्रावक जीवन में सा सारिक प्रवृत्तियाँ करते हुए उससे उदासीनता किस प्रकार रखनी चाहिये ?

उत्तर– उदासीन वृत्ति का प्रेरक दृष्टा त– किसी नगर में एक सभ्य सज्जन सेठ रहता था । उसका जीवन सुखी एव समृद्ध था । सादगी एव धार्मिक विचारों से वह युक्त था । किसी समय उसके जीवन ने मोड़ लिया । अशुभ कर्मों ने प्रभाव जमाया । उसका व्यापार अवरुद्ध हो गया । माल

दुकान भी बिक गये । मेहनत से एक दिन का गुजरान करने जैसी स्थिति आ पहुँची । बेईमानी, चापलूसी उसके जीवन में थी ही नहीं । स कट की घड़ियों में भी वह स तोष और मेहनत से आजीविका करता रहा ।

कालक्रम से उसके कर्म उदय और भी तीव्र बन जाते हक्त । भूखे ही सोने की नौबत आ जाती है और जब बच्चों को भूखे रखने की नौबत आने लगी तो सेठ सेठाणी का धैर्य समाप्त हो गया । आपस में सलाह कर यह निर्णय लिया कि अब स्थिति ऐसी आ गई है कि कहीं से चोरी करके काम चलाना चाहिये । नहीं जँचते हुए भी सेठ को हाँ भरनी पड़ी । कहा भी है कि "मरता क्या नहीं करता ।"

चोरी करना, कहाँ करना, जहाँ चोरी करूँगा वह गरीब भी तो दुखी होगा । सेठ तो कई अति लोभी क जूस होते हक्त, उनको चोरी का बहुत दुख होगा । अपना दुःख मिटाने के लिये किसी को दुःखी क्यों करना । विचार बढ़ते-बढ़ते सेठ ने राजा के भ ड़ार में चोरी करने का निर्णय लिया । सोचा कि वहाँ तो भ ड़ार भरे रहते हक्त, किसी को ज्यादा कष्ट नहीं होगा ।

सेठ तैयारी कर अर्द्ध रात्रि में चोरी करने चला । मन में स कल्प किया कि झूठ तो नहीं बोलूँगा । सामने मार्ग में उसे गस्त लगाते हुए राजा स्वय सिपाही के वेश में मिल गया । पूछताछ हुई, सरलता से अपने को चोर बता दिया । उसके पूर्ण सत्य उत्तर में राजभ ड़ार में चोरी करने की बात स्पष्ट थी । राजा ने मजाक समझ कर छोड़ दिया । सेठ राजभ ड़ार में पहुँचा । स योग से उसे किसी ने नहीं रोका, ताले तोड़े और भ ड़ार में प्रवेश किया ।

क्रमशः अ दर ही अ दर आगे बढ़ता गया । हीरे, पन्ने, माणक, मोती, सोने, चा दी, जेवर, बहुमूल्य कपड़े, मेवे-मिष्ठान्न, धान्य कोठार सारे देख लिये । कहीं मन नहीं ललचाया । उसने विचार किया भूखे मरने की नोबत से चोरी करने चला हूँ तो केवल पेट भरने का साधन ही जुटाना है, अन्य लोभ करने की कोई आवश्यकता नहीं है । जिस सामान्य से सामान्य चीज से २–४ दिन का गुजरान चल सके वही उतनी ही वस्तु लेनी है । इतने समय में फिर कुछ कमाई का ध धा हाथ लग जाएगा । इस तरह विचार करते-करते देखते-देखते उसे चावल की चूरी एक बर्तन में दिख गई । ५–१० सेर कपड़े में भरी, बाँधी और चल दिया ।

मार्ग में वही राजा फिर गस्त लगाते हुए मिला । पूछताछ हुई । सत्य उत्तर था उसका कि राजभ ड़ार में चोरी करके आया हूँ ।चावल की चूरी भर कर लाया हूँ । राजा ने खुलवा कर देख ली और उसके पीछे गुप्त रूप से आकर घर के चिन्ह कर दिया ।

राजपुरुषों और भ ड़ारियों ने ताले टूटने की जानकारी होने पर बहुत कुछ माल अपने-अपने घरों में पहुँचा दिया । प्रातःकाल राजभ ड़ार में हुई चोरी की बात प्रगट में आई । राज सभा में वार्ता आई । राजा ने कर्मचारियों से वार्ता सुनी । नौकर द्वारा उस सेठ को बुलाया गया, जिसने रात में चोरी की थी ।

सबके सामने पूछा तो सेठ ने उत्तर दिया– मक्त दिन का साहूकार एव रात्रि का चोर हूँ और अपनी हकीकत कहते हुए कहा कि इस कारण चावल की चूरी की चोरी की है । राजा को बड़ा दुःख हुआ कि ऐसे ईमानदार सच्चे लोग मेरे राज्य में दुःखी रहे और कर्मचारी या भ ड़ारी बने ये लोग स्वय चोरिया करते हक्त । राजा ने उस सेठ को अपने भ ड़ार का प्रमुख बनाया और कर्मचारियों को उचित द ड़ और शिक्षा दी ।

जिस प्रकार सेठ को लाचारी और उदासीनता से चोरी करने के लिये बाध्य होना पड़ा । उस उदासीनता और लाचारी के कारण उस चोरी का उसे द ड़ न मिल कर इनाम और आदर मिला । श्रावक को भी उदासीनता पूर्वक किये गये सा सारिक कृत्यों का परिणाम नरक तिर्यंच गति के रूप में न मिल कर उत्तम देव भव प्राप्त होता है । तदन तर मनुष्य भव और मोक्ष की प्राप्ति होती है । सेठ ने चोरी करने में आन द नहीं माना था । उसी तरह श्रावक स सार में रहकर जो भी पाप कृत्य करता है उसमें उसकी उदासीनता होनी चाहिये । केवल जीवन निर्वाह का लक्ष्य होना चाहिये । कर्मब ध और परभव का उसे सदा विचार रखना चाहिये ।धनस ग्रह भी उसे अत्य त आवश्यक हो उससे अधिक नहीं करना चाहिये । उसे सदा यह सोचते रहना चाहिये कि– ***पूत कपूताँ, क्यों धन स चे और पूत सपूताँ, क्यों धन स चे ??*** आवश्यकता हो वहाँ तक गृहस्थ जीवन में कृत्य करने पड़ते हक्त किन्तु आवश्यकताओं को सीमित करना भी धर्मीजन का प्रमुख कर्तव्य होता है ।

एक बात और ध्यान रखने योग्य है कि श्रावक जीवन में किसी के साथ वैर विरोध कषाय कलुषता को दीर्घकाल तक नहीं रखना चाहिये ।

शीघ्र ही समाधान निकाल कर सरल शा त बन जाना चाहिए । कषायों की तीव्रता समकित को नहीं रहने देती है । माया कपट प्रप च धूर्ताई ठगाई और दूसरों का अवगुण अपवाद ये धर्म जीवन के एव समकित के महान दूषण है । इनको जीवन में तनिक भी स्थान न देते हुए सर्वथा इनका त्याग करते हुए अपनी आत्मा को पवित्र एव शा त बनाये रखना चाहिये ।

प्रश्न–१६ : "पाँच सो हलवा प्रमाण क्षेत्र" का परिमाण किस तरह समझना ? एव "स्थूल झूठ" और "स्थूल चोरी" से क्या अर्थ समझना ? तथा "आयाणभरिय सि" का सही अर्थ क्या समझना ?

उत्तर– पाँच सो हलवा प्रमाण क्षेत्र का अर्थ दो तरह से किया जाता है– (१) खेती की अपेक्षा (२) दिशाव्रत की अपेक्षा ।

खेती की अपेक्षा– खेती करने के काम आने वाला हल सो बार आना-जाना करे उतनी भूमि १०० निवर्तन रूप एक हलवा प्रमाण होती है । अर्थात् हल का एक बार आना और जाना ३ फुट का होता है । एक सो बार में ३०० फुट=१०० मीटर ल बा चौड़ा क्षेत्र एक हलवा प्रमाण होता है, इससे ५०० गुना क्षेत्र उन श्रावकों ने खेती के लिये रखा था ॥ ***अभयदेवसूरि की टीका से*** ॥

दिशाव्रत की अपेक्षा– १० हाथ का १ बाँस, २० बाँस का एक निवर्तन, १०० निवर्तन का एक हल । इस तरह १ हलवा=१००निवर्तन=२००० बाँस =२०००० हाथ । २०००० हाथ=५ हजार धनुष=ढ़ाई कोस का एक हलवा होता है । तो ५०० हलवा=१२५० कोस । एक कोस=४ कि.मी.तो १२५० कोस=१२५०x४=५००० किलोमीटर की दिशा मर्यादा उन श्रावकों ने रखी थी ॥ ***विशेषणवती ग्र थ से*** ॥

आगम पाठ में दिशा की मर्यादा का अलग पाठ उपलब्ध नहीं होने से अर्थात् पाँचवें व्रत के बाद सीधे सातवें व्रत का कथन है । इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि खेतवत्थु के परिमाण में ५०० हलवा दिशा के लिये कह दिया गया है । यदि उस मर्यादा को खेती की भूमि रूप में समझेंगे तो दिशिव्रत की मर्यादा का पाठ अनुपलब्ध है ऐसा मानना रहेगा ।यों भी आठवें से १२ व्रत तक की मर्यादा या प्रत्याख्यान के पाठ की अनुपलब्धि मान ही रहें है क्यों कि उनके भी केवल अतिचारों के पाठ ही उपलब्ध है ।

सार यह है कि उन श्रावकों ने १२ ही व्रत पूर्ण रूप से धारण किये थे कि तु मूलपाठ की उपलब्धि में कुछ भी किसी भी कारण से कमी हुई हो ऐसा लगता है ।

स्थूल झूठ– राजद ड़े, लोकभ ड़े, दूसरे के साथ धोखा होवे, विश्वासघात होवे, बिना कसूर के किसी को भारी नुकसान भुगतना पड़े, इज्जत व धर्म को ठेस लगे, जीवन कल कित होवे; ऐसे झूठ को स्थूल झूठ समझना । उसी को श्रावक के त्याग में कहा गया है । उसमें भी (१) व्यापार स ब धी (२) पशु स ब धी (३) भूमि-स पत्ति स ब धी (४) धरोहर स ब धी (५) खोटी साख भरने स ब धी । ये पाँच प्रकार के स्थूल झूठ का व्रत में त्याग करना कहा गया है ।

स्थूलचोरी–अदत्तादान–(१) घर–दिवाल में सेंध लगाकर, (२) माल सामान की गाँठे–पेकेट खोलकर, (३) तालों में दूसरी चाबी लगाकर या ताले तोड़कर, (४) मार्ग में चलते हुए को या कहीं भी किसी को लूँट झपट कर दूसरों का माल-सामान प्राप्त करना, (५) कहीं भी पड़ी हुई या रखी हुई किसी की मालिकी की वस्तु चोरी की भावना से उठा लेना । ये पाँच प्रकार की मोटी–स्थूल चोरी कही गई है । तात्पर्य यह है कि व्यापार स ब धी, आदत स ब धी, छोटे मोटे झूठ या चोरी का समावेश यहाँ व्रत में नहीं है, अतिचार में उनका समावेश स भव है ।

आयाण भरिय सि– यह शब्द प्रस्तुत शास्त्र के चार अध्ययनों में है । पानी से भरे कड़ाई का कथन इस शब्द से किया गया है । अतः यहाँ **आयाण** का अर्थ **पानी** है । टीका में **आयाण** का अर्थ **पानी या तेल** ऐसा स शयात्मक दिया गया है पर तु मूल पाठ में उबालने की बात है । किसी भी पदार्थ को उबालना पानी में होता है । तेल में चीज उबाली नहीं, तली जाती है । प्रस्तुत में तलने का प्रयोजन नहीं है । अतः **आयाणभरिय सि** में **आयाण** शब्द से पानी अर्थ करना ही उपयुक्त है ।

नोंध :– ***१४ नियम का विस्तृत स्वरूप आदि एव १२ व्रत का विस्तृत स्वरूप तथा तीन मनोरथ चि तन स्वरूप अन्य पुस्तक से समझेंगे । ये पुस्तकें प्रयत्न करने पर उपलब्ध हो सकती हक्त ।***

॥ उपासकदशा ग सूत्र स पूर्ण ॥

अन्तकृत दशा ग सूत्र

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ? इसके नाम की सार्थकता किस प्रकार है ? इसके रचनाकार एव व्याख्याकार कौन है ? एव इसमें विषयवस्तु किस प्रकार है ?

उत्तर– जिनशासन में प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में उनके शासन के अनुरूप स पादन युक्त द्वादशा गी की रचना, उन-उन तीर्थंकरों के प्रथम दिन के प्रतिबुद्ध शिष्यों में से गणधर लब्धि स पन्न शिष्य, गणधर पद से विभूषित किये जाते है । उन्हें ही द्वादशा गी स पादन का कर्तव्य एव अधिकार प्रभु निर्दिष्ट एव स्वतः गणधर पद सिद्ध होता है । वे सभी गणधर मिलकर द्वादशा गी की रचना करते हक्त । यों द्वादशा गी शाश्वत भी है, जो तात्त्विक भावों एव सिद्धा तो की अपेक्षा से है । कथानक, घटनाएँ, दृष्टा त, स वाद, प्रश्नोत्तर, तीर्थंकर स्तुति, व्यक्ति गुण वर्णन, परिचय, प्रतिबोधक वर्तमान घटित विवरण आदि गणधर भगव त अपने शासन के अनुरूप स पादित करते है । अतः प्रत्येक शासन की अपेक्षा द्वादशा गी के रचनाकार उस शासन के गणधर कहे जाते हक्त। अतः यह अ तगड़ सूत्र द्वादशा गी का आठवाँ अ गसूत्र होने से गणधर कृत–रचित एव स पादित मान्य किया गया है ।

किसी भी शास्त्र का नामकरण उसके मुख्य विषय, विशिष्ट विषय, उसके अ तर ग भाव या प्रार भिक अध्ययन अथवा प्रार भिक शब्द आदि पर से; यों अनेक तरह से नामकरण किया जाना व्याकरण एव साहित्य सम्मत है । तदनुसार इस शास्त्र में उम्र के अ तिम क्षणो में ही केवलज्ञान उत्पादन करके मोक्ष जाने वाले ९० भव्यात्माओं का वर्णन होने से **अ तकृत–अ तगड़** नामकरण है । इसके साथ **दशा** शब्द जो लगा है उसका कारण यह बताया जाता है कि इसके आठ वर्ग में से प्रथम वर्ग में दस अध्ययन है।

जिस तरह विपाक सूत्र के दो विभाग में से प्रथम दुःख विपाक विभाग में १० अध्ययन है, दूसरे सुखविपाक विभाग में भी १० अध्ययन है । इस प्रकार १० अध्ययनों की प्रमुखता से उस शास्त्र को स्थाना ग सूत्र के १०वें स्थान में **कर्मविपाक दशा** नाम से कहा गया है और १० अध्ययनों के नाम में दुःखविपाक के १० अध्ययनों के नाम गिनाये हक्त और सुखविपाक

लघु होने से उसे नगण्य किया है । इसलिये इस शास्त्र में जीवन के अ तिम क्षणों में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले जीवों का वर्णन तथा प्रथम वर्ग के १० अध्ययन होने से, इस शास्त्र का पूरा नाम **अ तगड़दशा सूत्र** है ।

इसके प्राचीन व्याख्याकार अभयदेवसूरिजी है जिन्हों ने ९ अ गसूत्रों की टीका स स्कृत में की थी । आचारा ग, सूयगड़ा ग इन दो सूत्रों की टीका उनके पहले उनके गुरु-वड़ील शीला काचार्य ने लिखी थी ।

वर्तमान में इस शास्त्र के मुख्य विभाग रूप ८ वर्ग है और पेटा विभाग रूप कुल ९० अध्ययन है । जिसमें बावीसवें अरिष्टनेमि भगवान के शासन के ५१ जीवों का वर्णन करने के बाद चौबीसवें भगवान महावीर स्वामी के शासन के ३९ जीवों का वर्णन है । राजा, राजकुमार, राजराणियों, श्रेष्ठीपुत्रों एव मालाकार, बाल, युवक, प्रौढ़ तथा वृद्ध अनेक वय वालों के स यम, तप, श्रुत अध्ययन, ध्यान, आत्मदमन, क्षमाभाव आदि आदर्श गुणों युक्त वैराग्यपूर्ण जीवन का वृत्ता त इस सूत्र में अ कित है ।

९० मुक्तात्माओं के अतिरिक्त सुदर्शन श्रावक, कृष्ण वासुदेव एव देवकी राणी के जीवन की एक झाँकी भी अ कित है, जिसमें तीनों को वीतराग वाणी के प्रति दृढ़ श्रद्धावान एव प्रियधर्मी दृढ़धर्मी बताया गया है । उपासकदशा सूत्र के समान प्रार भ से इस सूत्र में भी दस अध्ययन ही थे, ऐसा ठाणा ग-समवाया ग सूत्र एव अनेक ग्रंथों में आये वर्णनों से ज्ञात होता है । न दीसूत्र के रचना के समय इस सूत्र का ९० अध्ययनात्मक यह स्वरूप मौजूद था अर्थात् न दी सूत्र कर्ता देववाचक श्री देवर्धिगणि क्षमा-श्रमण ने अथवा उनके समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती बहुश्रुत पूर्वधर श्रमण भगव त ने इस सूत्र का यह प्रारूप स कलित किया हो ऐसा ज्ञात होता है ।

कथाओं एव जीवन चारित्रों के माध्यम से इस सूत्र में अनेक शिक्षा-प्रद, जीवन-प्रेरक तत्त्वों का मार्मिक रूप से कथन किया गया है, अत: अनेक अपेक्षा से यह सूत्र पाठकों के लिये एव विशेष कर व्याख्याताओं व श्रोताओं के लिये भी रूचिकर आगम है । इसीलिए स्थानकवासी पर परा में प्रति वर्ष पर्युषण पर्व के आठ दिनों में इस सूत्र का व्याख्यान सभा में वाँचन एव श्रवण किया जाता है ।

अ गों में यह आठवाँ अ ग है, इसके आठ वर्ग है, पर्युषण के दिन भी आठ है एव आठ कर्मों को ही क्षय करके आत्मा के आठ गुणों को प्रगट करने का साधक का प्रमुख लक्ष्य है । इस प्रकार स ख्या मिलान करके

भी इस सूत्र का पर्युषण में वाँचन श्रवण से स ब ध जोड़ा जाता है । धर्मध्यान के इन आठ दिनों में जीवन स स्कारित बने, गृहस्थ जीवन में भी त्याग-वैराग्य की वृद्धि होवे, विवेक बढ़े, विचार व प्रवृत्तियाँ शुद्ध बने एव प्रबल प्रेरणाओं से स यम धारण करने का दृढ़ आत्मस कल्प बने, इसी उद्देश्य से इस शास्त्र का पर्युषण में वाँचन श्रवण किया जाता है ।

प्रश्न-२ : इस सूत्र के आठ वर्गों में ९० अध्ययनों का विभाजन किस प्रकार हक्त ?

उत्तर- **(१)** प्रथम वर्ग में १० अध्ययन है, जिसमें गौतमकुमार का विस्तृत वर्णन है, शेष स क्षिप्त है । **(२)** दूसरे वर्ग में ८ अध्ययन है, ये सभी स क्षिप्त है । **(३)** तीसरे वर्ग में १३ अध्ययन है जिसमें देवकी राणी, कृष्ण, अनिक-सेन आदि का और गजसुकुमाल का विस्तृत वर्णन है ।

(४) चौथे वर्ग में- जालिकुमार आदि दस का स क्षिप्त वर्णन है । चारों वर्ग में कुल ४१ यादव पुरुषों का वर्णन है । **(५)** पाँचवें वर्ग में- १० अध्ययन है, जिसमें ८ कृष्ण की पटराणियों का एव दो पुत्रवधुओं का वर्णन है एव कृष्ण वासुदेव की धर्मदलाली रूप दीक्षा दलाली का तथा द्वारिका विनाश का कथन है । इस प्रकार पाँच वर्गो में अरिष्टनेमिनाथ भगवान के शासनवर्ती ५१ जीवों का वर्णन है । **(६)** छट्ठे वर्ग में- १६ अध्ययन है । जिसमें अर्जुनमाली और एव ताकुमार का विस्तृत वर्णन है । **(७)** सातवें वर्ग में- श्रेणिक राजा की न दा आदि १३ राणियों का स क्षिप्त वर्णन है । **(८)** आठवें वर्ग में- श्रेणिक राजा की काली आदि १० राणियों का विस्तृत वर्णन है। यों पिछले तीन(६,७,८) वर्गों में भगवान महावीर स्वामी के शासन के ३९ जीवों का वर्णन है । यों दो तीर्थंकरों के शासन के ५१+३९=९० जीवों का वर्णन आठ वर्गों में पूर्ण होता है । जिसमें ३३ स्त्री एव ५७ पुरुषों के मोक्ष गमन तक का वर्णन है ।

वर्ग-१,२ : अध्ययन-१०+८

प्रश्न-१ : गौतमकुमार का सा सारिक परिचय और दीक्षापर्याय का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- गौतमकुमार के अ धकवृष्णि पिता और धारिणी माता थी । समुद्र-विजयजी आदि के पिता अ धकवृष्णि थे, माता **सुभद्रा** थी, ऐसा अभयदेव

सूरिजी की स स्कृत टीका में एव तीर्थंकर चारित्र में वर्णन मिलता है ।

गौतमकुमार ने कुमारावस्था में ही(अर्थात् राजा नहीं बने थे) माता पिता की मौजूदगी में उनसे ही आज्ञा प्राप्त करके दीक्षा ली थी । गौतमकुमार के इस वर्णन में उनके पिता को राजा और माता को राणी कहा गया है ।

अरह त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव के त्रिख ड़ाधिपति होने के बाद ही दीक्षा ली थी । यहाँ के वर्णन में भी गौतमकुमार के दीक्षा समय में कृष्ण के तीनख ड़ की राज्य समृद्धि दर्शाई गई है ।

गौतमकुमार का बाल्यकाल, शिक्षा, पाणिग्रहण आदि वर्णन महाबल के वर्णन(ज्ञाता-८) के समान है । गौतमकुमार की आठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में शादी हुई थी।

ये गौतमकुमार समुद्रविजयजी आदि के भाई तो होते थे कि तु छोटे थे या बड़े इसका स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता है । **कुमार** विशेषण से तो उनके राजा नहीं बनने का ही फलित होता है । क्यों कि पाँच तीर्थंकरों के कुमारवास में दीक्षा का कथन शास्त्र में आता है अर्थात् पाँच तीर्थंकर राजा नहीं बने थे । यथा- (१) वासुपूज्य (२) मल्लि (३) अरिष्टनेमि (४) पार्श्वनाथ (५) वर्धमान । इन पाँच मे से तीन ने शादी की थी, मल्लिकु वरी और अरिष्टनेमि ने शादी नहीं की थी । तो भी पाँचों के कुमारवास में दीक्षित होने का कहा गया है । -***स्थाना ग-५ ।***

गौतमकुमार ने १२ वर्ष की दीक्षापर्याय का पालन किया । इनकी दीक्षा समय की उम्र का एव कुल उम्र का कथन सूत्र पाठ में नहीं है तथापि उस समय की उम्र अनुसार हजार-बारहसो वर्ष की परिपूर्ण उम्र होनी चाहिये ।

इन्होंने पिछली उम्र में दीक्षा लेकर के भी १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय में **११ अ गशास्त्रों** का क ठस्थ ज्ञान किया । **भिक्षु की १२ पड़िमाएँ** धारण कर के उनका यथार्थ आराधन किया । उसके बाद **गुणरत्न स वत्सर** तप का भी आराधन किया ।

आज कल के या मध्यम काल के आचार्य भगव त हर विशिष्ट तप साधना आदि के लिये ९ पूर्वों के ज्ञान को जबरन **लगा** देते है । यह मात्र खोटा ढ़र्रा पड़ गया है । आगम के मूलपाठों से वह कथन विपरीत एव उत्सूत्र प्ररूपण वाला होता है । फिर भी विद्वान कहे जाने वाले भी आ ख मीचकर वही रटन करते जाते हक्त । कहने का तात्पर्य यह है कि

भिक्षुपड़िमा या एकल विहार के लिये जो पूर्वों के ज्ञान की बात चलाई जाती है वह प्रस्तुत सूत्र और अन्य अनेक सूत्रों से विरुद्ध है । प्रस्तुत सूत्र में ११ अ ग के पाठी अर्थात् पूर्वज्ञान के बिना भी अनेक साधुओं के भिक्षु प्रतिमा धारण करने का वर्णन स्पष्ट है । इसमें पूर्वों के ज्ञान की कोई ग ध भी नहीं है । तथा पूर्वों के ज्ञान की बात पड़िमा धारण करने वालों के लिये किसी भी शास्त्र के मूलपाठ में नहीं है, जब कि ११ अ गज्ञान के धारकों के लिये भिक्षुपड़िमा का धारण करना मूलपाठ में अनेक जगह है ।

गौतम मुनि ने भगवान की आज्ञा लेकर ही भिक्षु पड़िमा आदि तप किये थे । अ त में १ महिने का स थारा करके शत्रु जय पर्वत (पालीताणा) पर मोक्ष पधारे । इन्हें उम्र के अ तिम क्षणों में ही केवलज्ञान हुआ और फिर स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त हुए । इसलिये ये अ तकृत केवली कहलाते है । प्रस्तुत सूत्र में वर्णित ९० ही आत्माओं को जीवन के अ तिम क्षणों में ही केवलज्ञान और फिर मुक्ति हुई थी।

प्रश्न-२ : गौतमकुमार के बाद समुद्रकुमार आदि का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- प्रथम वर्ग के शेष ९ समुद्रकुमार आदि भी गौतमकुमार के सगे भाई थे अर्थात् इन सभी के पिता अ धकवृष्णि राजा और माता धारिणी राणी थी। गौतमकुमार के समान ही सभी ने कुमारवास में (अर्थात् राजा बने बिना) और पिछली वय में दीक्षा ली थी । सभी का आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था और १२ वर्ष की दीक्षापर्याय, ११ अ ग का आगमज्ञान, भिक्षुपड़िमा, गुणस वत्सर तप आदि समान थे । ये भी एक महीने के स थारे से शत्रु जय पर्वत पर मोक्ष पधारे ।

दूसरे वर्ग के आठ अध्ययन के अक्षोभकुमार आदि आठ भाईयों का वर्णन भी गौतम कुमार के समान कहा गया है । कि तु उनके स ब ध आगम के मूलपाठ में पिता के नाम में फर्क है । अर्थात् इन आठ के पिता **वृष्णि** और माता **धारिणी** कही हैं । मूलपाठ में यहाँ अ धक वृष्णि नहीं कहा गया है और किसी भी प्राचीन प्रत में कहीं भी अ धक शब्द नहीं है । यदि माता पिता प्रथम वर्ग वाले ही होते तो उनका यहाँ स्पष्ट नाम नहीं होता कि तु स क्षिप्त पाठ में उसका समावेश कर दिया जाता । अतः दूसरे वर्ग के आठकुमार के **वृष्णि पिता** और **धारिणी माता** प्रथम वर्ग के **अ धक वृष्णि** और **धारिणी** से अन्य समझना ही सीधा और सरल अर्थ होता है ।

दोनों वर्गों के नामों को आपस में टकराने और मेल मिलाने का प्रयत्न करके उलझन में नहीं पड़ना चाहिये । धारिणी राणी तो अनेक राजाओं के या भाईयों के होना स भव है क्यों कि यह एक राणियों का प्रसिद्ध नाम है । यथा-प्रस्तुत सूत्र में (१) प्रथम वर्ग के अ धकवृष्णि के धारिणी राणी (२) दूसरे वर्ग में वृष्णि के धारिणी राणी । (३) तीसरे वर्ग में वसुदेवजी के धारिणी राणी के **सारण** पुत्र (४) तीसरे वर्ग में बलदेवजी के धारिणी राणी के सुमुख, दुर्मुख, कूपक तीन पुत्र (५) तीसरे वर्ग में अनादृष्टि और दारुक के भी धारिणी माता कही है । आज भी कोई कोई नाम वाले तो एक ही गाँव में, एक ही शहरो में अनेक और सेकड़ों स्त्री पुरुष होते हक्त ।

प्रस्तुत दोनों (पहले दूसरे) वर्गों के ४ व्यक्तियों के नाम परस्पर समान है-समुद्र, सागर, अचल, अक्षोभ । इसलिये भी दोनों वर्गों के अ धक-वृष्णि और वृष्णि को अलग ही रखना उपयुक्त है, एक कर देना योग्य नहीं है । क्यों कि एक ही पिता और एक ही माता की स तानों के नाम अलग-अलग होते हक्त । जब कि यहाँ दोनों वर्गों में चार नाम एक सरीखे है । अतः मूलपाठ के अ धकवृष्णि और वृष्णि नाम जो आये हक्त उन्हें ज्यों के त्यों ही रखना चाहिये, अपने मन से जोड़कर एक सरीखा नहीं कर देना चाहिये ।

इस प्रकार दो वर्गों में १८ यादवकुमारों का एक सरीखा वर्णन होने से सभी कुमारवास में दीक्षित होने वाले हक्त । कोई भी राजा नहीं बने थे कि तु यौवन वय में ८ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण कर राजसी वैभव सुख समृद्धि का भोगोपभोग करने के बाद, पिछली वय में कृष्ण के वासुदेव पद प्राप्ति के बाद, अरिष्टनेमि अरिह त तीर्थंकर के शासन प्रवर्तन करने के बाद दीक्षित हुए थे और इस दूसरे वर्ग के आठों कुमारों की दीक्षापर्याय १६ वर्ष की थी । इस वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि अरिष्टनेमि के शासन काल तक उनके(अरिष्टनेमि के) दादा अ धकवृष्णि राजा मौजूद थे ।

प्रश्न-३ : समुद्रविजय जी आदि दस दशार्ह क्या इन १८ भाईयों से अलग थे ।

उत्तर- यहाँ वर्णित दोनों वर्गों के गौतमकुमार आदि का वर्णन एक समान होने से ये सभी कुमारवास में दीक्षित थे । और इनकी माताएँ सरीखे नाम वाली धारिणी थी ।

समुद्रविजय आदि दश दशार्हों के माता का नाम सुभद्रा था । वे दसों राजा बने थे । और उन दसों का क्रम सर्वत्र एक सरीखा मिलता है

अर्थात् **प्रथम** नाम समुद्रविजय **दूसरा** अक्षोभ **नौवाँ** अभिचन्द्र और **दसवाँ** वसुदेव इस प्रकार नाम मिलता है । प्रस्तुत दोनों वर्गों में प्रथम नाम क्रमशः गौतम और अक्षोभ है और शेष नामों के क्रम भी इन दस दशार्हों के नाम से कोई मेल खाने वाले नहीं है । तथा यहाँ के वर्णन में सभी के आठ स्त्रियाँ कही है, उसका भी मेल दश दशार्ह से नहीं हो सकता है । अतः अ धकवृष्णि पिता एव सुभद्रा माता के समुद्रविजय जी आदि दस दशार्ह को इन अठारह से भिन्न ही रखना एव समझना चाहिये । यहाँ के वर्णन में कृष्ण की ऋद्धि के साथ दस दशार्ह राजाओं को प्रथम ही अलग कह दिया गया है । उसके अन तर इन अठारह का जन्म, पाणिग्रहण, दीक्षा आदि वर्णन अलग से किया है । अतः सुज्ञ पाठकों को नाम साम्यता के चक्कर में अलग-अलग वर्णित इन यादवकुमारों को एव राजाओं को एक समझने के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये । इनके नामों के क्रम का अ तर नीचे दिया जाता है । पाठक ध्यान से देखेंगे ।

क्रम	अ धकवृष्णि पिता धारिणी माता प्रथम वर्ग	वृष्णि पिता धारिणी माता दूसरा वर्ग	अ धकवृष्णि पिता सुभद्रामाता-दसदशार्ह तीर्थंकर चरित्र
१	गौतमकुमार	अक्षोभ	समुद्रविजय
२	समुद्र	सागर	अक्षोभ
३	सागर	समुद्र	स्तिमित
४	ग भीर	हिमव त	सागर
५	स्तिमित	अचल	हिमवान
६	अचल	धरण	अचल
७	का पिल्य	पूरण	धरण
८	अक्षोभ	अभिच द्र	पूरण
९	प्रसेनजित	-	अभिच द्र
१०	विष्णु	-	वसुदेव

तीनों ग्रुप अलग-अलग हक्त । तीनों को एक करने से अनेक उलझने पैदा होती है जिसका सही समाधान बड़े बड़े आचार्यों से भी होता नहीं है । समाधान नहीं हो सकना भी यही सिद्ध करता है कि तीनों परिवारों को सूत्र पाठ अनुसार अलग-अलग ही रहने देना चाहिये और समझना चाहिये ।

वास्तव में तीनों क्रम भी अपने आप में सही है । दो तो यहाँ मूल पाठ में दो वर्गों में है और तीसरे दस दशार्ह का क्रम टीका एव त्रिषष्टि शलाका चारित्र अर्थात् तीर्थंकर चारित्र से प्रमाणित है । यों तीनों के क्रम में किसी प्रकार की एकरूपता स भव भी नहीं है ।

आज तक यह प्रश्न अनेक विध चर्चा के रूप में और कल्पनाओं के रूप में उपस्थित हुआ है । कि तु ठोस निर्णायक समाधान किसी भी विद्वान के विश्लेषण में उपस्थित नहीं किया गया है । उन सभी समीक्षाओं को मद्देनजर रखते हुए मूलपाठ को ईमानदारी पूर्वक, **है जैसा ही ग्रहण करते हुए** उपरोक्त समाधान स घट्टना की गई है । आशा है पाठकों को इससे वास्तविक सत्य समझने का मौका मिलेगा । पर परा के आग्रही कुछ लोग अलग ढ़ ग से विचारेंगे उनका तो कोई इलाज शक्य नहीं है ।

सत्य तो यह है कि पर परा से तो मूलपाठ का महत्त्व सर्वोपरि होता है । मूलपाठ में इन अठारह कुमारों के लिये जैसा स्पष्ट पाठ में है और स क्षिप्त पाठ में गौतम के समान होना कहा गया है, उसे ही यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है ।

इन दोनों वर्गों के १८ आत्माओं के लिये कहीं भी दस दशार्ह में से इनके होने का कोई स केत भी नहीं किया गया है । तब अन्यत्र वर्णित दस दशार्ह की सुभद्रा माता को छोड़कर जबरन धारिणी माता मान लेने का झूठा आग्रह करना भी व्यर्थ ही होता है और धारिणी माता नहीं मानेंगे तो उन दस दशार्हों को यहाँ नहीं जमाया जा सकेगा । क्यों कि यहाँ के व्यक्तियों की माता का नाम स्पष्ट रूप से धारिणी कहा गया है । अतः तीन विभाग वाले इन सरीखे नाम वालों को तीन विभाग में रहने देना ही सर्व अपेक्षाओं से श्रेष्ठ और समाधान युक्त होता है अर्थात् मूलपाठ के **वण्हि** को **अ धग वण्हि** नहीं करना तथा दस दशार्ह की सुभद्रा माता को बदलकर धारिणी माता नहीं मानना चाहिये ।

स क्षिप्त सार :- (१) प्रथमवर्ग वाले १० कुमारों के पिता अ धकवृष्णि माता धारिणी थी (२) दूसरे वर्ग वाले आठ कुमारों के पिता वृष्णि और माता का नाम धारिणी था । अतः दोनों वर्ग वालों के माता पिता, दोनों ही भिन्न थे । क्यों कि १८ के माता पिता एक ही होते तो दो वर्ग नहीं करके एक वर्ग में एक सरीखे १८ अध्ययन कह दिये जाते । अ तर केवल दीक्षापर्याय १२ वर्ष और १६ वर्ष का बता दिया जाता । केवल दीक्षापर्याय की भिन्नता

के लिये वर्ग अलग नहीं किया जाता है । अलग वर्ग करने से भी माता पिता भिन्न होना जरूरी लगता है । (३) दस दशार्ह इन १८ कुमारों से अलग थे क्यों कि वे कुमार नहीं किन्तु राजा थे और उनकी **माता** धारिणी नहीं सुभद्रा थी। सुभद्रा अ धकवृष्णि की अन्य पत्नि थी । (४) दो वर्गों में वर्णित १८ कुमारों की ८-८ पत्नियाँ थी । किन्तु दस दशार्ह के पत्नियों का वर्णन भिन्न ही है ।

प्रश्न-४ : कृष्ण वासुदेव की द्वारिकानगरी का एव उनकी समृद्धि का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- द्वारिकानगरी का वर्णन करते हुए यहाँ प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में आये **"दुवालस जोयणायामा, णवजोयण वित्थिण्णा, धणवइ मइ णिम्माया"** इन मुख्य शब्दों का विश्लेषण इस प्रकार है-

द्वारिकानगरी का माप :- १२ योजन ल बी, ९ योजन चौड़ी । १ योजन =१४ कि.मी. करीब होता है । अतः १२x१४ और ९x१४=१६८ कि.मी. ल बी एव १२६ कि.मी.चौड़ाई में वह नगरी बसी हुई थी ।

द्वारिका के निर्माण का इतिहास :- कृष्ण के द्वारा क स वध होने के बाद उसकी पत्नी जीवयशा ने अपने पिता जरास ध(प्रति वासुदेव) के पास शिकायत की । क्रुद्ध होकर जरास ध ने समुद्रविजय आदि यादव गणों को आदेश दिया कि कृष्ण को मेरे सुपुर्द कर दे अन्यथा यादवों का नाश कर दूँगा । जरास ध के आत क से यादवों ने गुप्त रूप से दक्षिण तरफ प्रयाण किया । बीच में पीछा करने के लिए जरास ध का पुत्र काल कुमार सेना लेकर गया किन्तु देव माया से वह छला गया और मृत्यु को प्राप्त हुआ । यादव सकुशल सौराष्ट्र पहुँच गये ।

योग्य स्थान देखकर श्री कृष्ण ने तेला किया उसमें धनपति वैश्रमण देव का आराधन स्मरण किया । देव उपस्थित हुआ एव कृष्ण जी के निवेदन पर उसने अपने आभियोगिक देवों को आदेश निर्देश दिया और नगरी का निर्माण करवाया । उसमें अनेक बड़े भव्य दरवाजे बनाये गये थे । उसके कारण उसका नाम द्वारवती रखा गया, जो कालान्तर से द्वारिका कहलाने लगी । उस नगरी का कोट(प्राकार) स्वर्णमय था । उसके बूर्ज गोखड़े आदि अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित थे ।

कृष्ण वासुदेव की समृद्धि- कालान्तर से कृष्ण का प्रति वासुदेव के साथ युद्ध हुआ । जरास ध युद्ध में स्वय के चक्र से कृष्ण के हाथों से मारा गया । उसके बाद श्रीकृष्ण जी तीन ख ड़ के अधिपति वासुदेव राजा बने । उनकी

तीन ख ड़ की राज्यऋद्धि ऐश्वर्य इस प्रकार था—समुद्रविजय प्रमुख दस उनके पूज्यनीय राजा थे। बलदेव प्रमुख पाँच **महावीर** पदधारी थे। प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ **कुमार** पदवर्ती थे। सा ब प्रमुख साठ हजार **दुर्दान्त** पदधारी थे। महासेन प्रमुख ६५ हजार **सेनापति** पदवर्ती थे। वीरसेन प्रमुख २१ हजार **वीर** पद प्रतिष्ठित थे। उग्रसेन प्रमुख १६ हजार राजा उनकी आज्ञा में थे। रुक्मणी प्रमुख १६ हजार राजराणिया थी। (ज्ञातासूत्र में अन्य अपेक्षा से कृष्ण के ३२ हजार राणिया कही है।) अन गसेना प्रमुख हजारों गणिकाएँ उनके राज्य में थी। अन्य अनेक युवराज, सेठ, सार्थवाह आदि प्रजागण का एव तीन ख ड़ रूप अर्द्ध भरतक्षेत्र का आधिपत्य स्वामित्व करते हुए एव विपुल सुख भोगते हुए श्री कृष्ण द्वारिका में रहते थे।

वर्ग-३ : अध्ययन- १ से १३

प्रश्न-१ : इस वर्ग के १३ अध्ययनों में क्या वर्णन है ?

उत्तर- (१-६) छ वर्गों में अनियसकुमार आदि ६ कृष्ण जी के सगे बड़े भाईयों का वर्णन है। (७) कृष्ण जी के भाई, वसुदेव जी के पुत्र और धारिणी माता के अ गजात सारणकुमार का वर्णन है। (८) कृष्ण जी के सगे छोटे भाई, वसुदेव और देवकी के पुत्र गजसुकुमालकुमार का विस्तृत वर्णन है। (९-११) कृष्ण जी के भतीजे, बलदेव एव धारिणी के ३ पुत्र- सुमुख, दुर्मुख और कूपक का वर्णन है।(१२-१३) कृष्ण जी के भाई, वसुदेव और धारिणी के पुत्र दासक और अनादृष्टि का वर्णन है।

विशेष- (१-६) अनीयसकुमार आदि छहों भाईयों का ३२-३२ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था। दीक्षापर्याय २०-२० वर्ष की थी। ज्ञान १४ पूर्वों का। एक महीने के स थारे से **शत्रुंजय पर्वत** पर सिद्ध हुए। (७) एव (९ से१३) इन छहों अध्ययनों में वर्णित कुमारों का ५०-५० कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था। दीक्षापर्याय २० वर्ष की। १४ पूर्वों का श्रुतज्ञान प्राप्त किया था। एक महीने के स थारे से **शत्रु जय पर्वत** पर मोक्ष गये। सभी के भिक्षु की १२ पड़िमा तथा गुणरत्न स वत्सर तप भी समझ लेना। (८) गजसुकुमाल अणगार एक दिन की दीक्षापर्याय से उसी दिन मोक्ष गये। १६ वर्ष की कुल उम्र थी। शादी नहीं की थी।

प्रश्न-२ : अणियसकुमार आदि ६ भाईयों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- भद्दिलपुर नगर में नाग नामक गाथापति सेठ और उनकी भार्या सुलसा सेठाणी रहते थे। सुलसा मृत व ध्या थी अर्थात् उसके पुत्र मरे ही होते थे। बाल्यकाल में ही उसे किसी निमित्तक ने यह भवीभाव बता दिया था। किसी से उपाय पूछकर सुलसा अपने उस दुःख के समाधान के लिये हरिणेगमेषी देव की बचपन से पूजा भक्ति करने लग गई थी। वर्षों की उसकी भक्ति-पूजा से देव प्रसन्न हुआ। उसने उपयोग लगाकर देवकी राणी और सुलसा को निकट प्रसूता जाना। देव ने दोनों का प्रसवकाल पूर्ण समान कर दिया। देवकी के ६ पुत्रों को क स मारने वाला था कि तु वे चरम शरीरी जीव थे। अतः स योगवश हरिणेगमेषी देव उन ६ पुत्रों को प्रसव काल के समय उठाकर सुलसा के पास रख देता था और सुलसा के मृत पुत्र को देवकी के पास रख देता था। इस प्रकार देव शक्ति से यह परिवर्तन क्षणभर में हो जाता था। जिसकी किसी को, कोई भी खबर नहीं पड़ी।

अब ये अणियसकुमार(अनिकसेन) आदि छहों भाई भद्दिलपुरनगर में सुलसा सेठाणी के घर बड़े हुए और प्रसिद्ध में नागगाथापति के पुत्र ही कहलाये। बाल्यकाल, कला शिक्षण, ३२ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ पाणि-ग्रहण आदि लौकिक व्यवहार पूर्ण हुए। यथासमय अर्थात् पिछली वय में भगवान अरिष्टनेमि के पास छहों भाई दीक्षित हुए। १४ पूर्वों का अध्ययन किया एव निर तर बेले-बेले पारणा करते थे।

एक बार विचरण करते हुए अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे। छहों भाई पारणे के दिन दो-दो के तीन सि घाड़े(ग्रुप) बनाकर द्वारिका में गोचरी गये। मध्यम तीर्थंकर के शासन के श्रमण होने से राजकुल में जाने का उन्हें निषिद्ध नहीं था। अनायास स योगवश तीनों सि घाड़े घूमते-घूमते एक के बाद दूसरा थोड़ी थोड़ी देर से देवकी के राजभवन में ही गोचरी के लिये पहुँच गये थे। अरिष्टनेमि भगवान को दीक्षा लिये सेकड़ों वर्ष हो गये थे। अतः देवकी राणी धर्मनिष्ठ स स्कार वाली थी। तीनों सि घाड़ों को यथासमय आने पर आदर भक्तिभाव से अपने रसोईघर में ले जाकर मनुहार के साथ सि हकेसरी मोदक वहोराये। छहों भाई दिखने में एक सरीखे थे। अतः तीनों सि घाड़ों के थोड़ी थोड़ी देर से आकर और सि हकेसरी मोदक वहोरने से देवकी राणी को अ त में यह स देह हुआ कि एक ही सि घाड़े के ये दोनों साधु तीसरी बार आकर सि हकेसरी मोदक वहोर गये हक्त। उसे मुनियों की मोदक आसक्ति और थोड़ा थोड़ा लेकर पुनः तीन बार आने की वृत्ति

अच्छी नहीं लगी । तब तीसरे सि घाड़े को वहोराने के बाद उसने विनय पूर्वक पूछ लिया कि कृष्ण वासुदेव की इतनी बड़ी ऋद्धि स पन्न नगरी में मुनियों को यथेच्छ भिक्षा नहीं मिलती है क्या ? जो एक ही घर में वापिस वापिस घूम-घूम कर पुनः आना पड़ता है ।

तीसरे सि घाड़े के मुनि तो पहली बार ही आये थे । देवकी के आक्षेप युक्त प्रश्न को सुनकर वे बुद्धिशाली १४ पूर्व के ज्ञानी मुनि समझ गये कि हमारे ४ भाइयों के दो सि घाड़े पहले यहाँ आ चुके हक्त और हम भी यहीं पहुँच गये हक्त । अतः देवकी को भ्रमवश मुनियों के स यमभाव में आश का अर्थात् आहार की आसक्ति का एहसास हो गया है । योग्य फरसना जानकर एक मुनि ने अपनी सा सारिक ऋद्धि का कथन करके अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा और ज्ञान-तप आराधना एव बेले-बेले पारणे का वर्णन कर स्पष्ट किया कि हम एक सरीखे दिखने वाले ६ भाई तीन ग्रुप से पारणे को निकले हुए स योगवश तीनों सि घाड़े आपके घर आ पहुँचे है, ऐसा लगता है । अतः हे देवकी राणी ! पहले आये थे वे मुनि अन्य थे और हम अन्य हक्त ।अतः एक ही मुनियों को पुनः पुनः एक घर में आने की कोई स्थिति नहीं है । वास्तव में समान रूप के कारण आपको ऐसा आभास हुआ है, वह सत्य नहीं है । ऐसा स्पष्टीकरण करके वे मुनि चले गये । देवकी के प्रश्न का समाधान तो हो गया पर तु उसके अन्य उहापोह चालू हो गई । वह विचारों में खो गई ।

छहों मुनि अरिष्टनेमि की सेवा में पहुँचे । आहार पानी दिखाकर यथास्थान बैठकर पारणा किया । यों निर तर तप-स यम का आराधन करते हुए विचरने लगे ।

देवकी को अतिमुक्तकुमार श्रमण की कही हुई बात याद आ गई । उन मुनि ने कहा था "हे देवकी तूँ भरत क्षेत्र में आठ अनुपम पुत्रों की माता होगी, वैसे पुत्रों की माता अन्य कोई नहीं होगी ।" देवकी अब सोचने लगी कि ये ६ मुनि अनुपम रूप स पन्न थे । इन्हें जन्म देने वाली माता भरतक्षेत्र में सुलसा हुई है । मैंने तो ६ पुत्रों को ठीक से देखा भी नहीं । तो क्या ज्ञानी मुनि अतिमुक्त कुमार श्रमण की बात मिथ्या हुई ? देवकी विचारों में उलझती गई ।आखिर अरिष्टनेमि भगवान के पास जाकर समाधान पाने का निर्णय किया । दूसरे दिन अपनी ऋद्धि के साथ भगवान की सेवा में पहुँची, व दन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगी ।

अरिष्टनेमि भगवान ने मनोगत भावों को स्पष्ट करते हुए देवकी राणी को समाधान फरमाया कि जो छह मुनि तेरे घर गोचरी आये थे वे तेरे ही पुत्र हक्त । हरिणेगमेषी देव ने उन पुण्यवान, चरम शरीरी जीवों को क सवध से बचाकर सुलसा के घर रखा था । क्यों कि सुलसा ने उस देव की बचपन से वर्षों तक पूजा भक्ति की थी । देवकी को भगवान का उत्तर सुनकर अत्य त खुशी हुई । वह भगवान को व दन नमस्कार कर उन छहों मुनियों के पास गई । व दन नमस्कार करते हुए पुत्र प्रेम के भावों से उसके स्तनों में दूध की धारा बहने लगी । वह बहुत देर तक मुनियों को अनिमेष दृष्टि से निरखती रही । फिर पुनः व दन नमस्कार कर भगवान के पास आई और उन्हें भी व दन नमस्कार कर अपने घर आ गई ।

वे मुनि २० वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन कर सर्व कर्मक्षय कर एक महीने के स थारे से शत्रु जय पर्वत पर मोक्ष पधार गये ।

प्रश्न-३ : गजसुकुमाल कुमार के जन्म, दीक्षा एव मुक्ति का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- अरिष्टनेमि भगवान के पास से समाधान प्राप्त करने के बाद, अब देवकी मोहभाव से आर्तध्यान करती हुई अपने को, अधन्य अपुण्य वाली मानकर दुःखानुभूति करने लगी कि "मक्तने सात पुत्रों को जन्म दिया, किसी का बचपन नहीं देखा, लाड़-प्यार नहीं किया और अब यह कृष्ण भी छः छः महीने में चरण व दन को आता है ।" इस प्रकार आर्तध्यान में डूब रही थी । योगानुयोग कृष्ण जी माता को चरण व दन करने पहुँच गये । माता को दुःख करने का कारण पूछा । देवकी ने छ मुनियों के आगमन से लेकर अरह त अरिष्टनेमि के समाधान करने तक की समस्त हकीकत कह सुनाई और अपना दुःख व्यक्त किया कि मक्तने एक भी पुत्र का बचपन नहीं देखा ।

कृष्ण जी हकीकत सुनकर अच्छी तरह समझ गये कि मेरे एक भाई और होने वाला तो है कि तु फिर कहीं किसी कारण से हरिणेगमेषी देव कहीं रख न दे, इसके लिये उपाय कर लेना चाहिये । कृष्ण ने माता को आश्वस्त किया कि मक्त इस तरह प्रयत्न करूँगा कि मेरे आठवाँ छोटा भाई होगा । जिसके बचपन आदि का तूँ इच्छानुसार अनुभव कर सकेगी ।

कृष्ण वासुदेव वहाँ से सीधे पौषधशाला में आये और तीन दिन का उपवास युक्त पौषध ग्रहण कर हरिणेगमेषी देव का ध्यान, जाप कर

उसे स्मरण करने में लीन हो गये। तप-ध्यान से देव का अ गस्फुरण हुआ। अवधिज्ञान में उपयोग लगाकर जाना कि मुझे कृष्णवासुदेव पौषधशाला में याद कर रहे हक्त। देव तत्काल उपस्थित हुआ। याद करने का कारण पूछा। कृष्ण जी ने अपने सहोदर छोटे भाई की मा ग करी। देव ने ज्ञान से देखकर कहा कि आपके छोटा भाई होगा और वह १६ वर्ष में अरह त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर आत्मकल्याण साध लेगा।

देव चला गया। कृष्ण ने माता को खुशखबर सुना दी कि तु दीक्षा की बात नहीं कही एव उन्हें पूर्ण स तुष्ट करके चले गये। यथासमय देवकी ने पुत्र को जन्म दिया। गुणस पन्न गजसुकुमाल कुमार नाम रखा गया। देवकी ने अपनी पुत्र स ब धी बालक्रीड़ा आदि की मनोकामना पूर्ण की। विद्या अध्ययन आदि यथासमय पूर्ण हुआ। युवावस्था में प्रवेश किया। कृष्ण को भविष्य का दीक्षा स ब धी देव कथन याद था। अतः एक बार जब भगवान के दर्शन करने कृष्ण वासुदेव अपनी ऋद्धि के साथ जा रहे थे। मार्ग में सोमिल ब्राह्मण की **सोमा** नामक कन्या के रूप गुण आदि से आकृष्ट होकर उसे अपने कर्मचारी पुरुषों के द्वारा सोमिल की स्वीकृति से गजसुकुमाल के लिये कु वारा अ तःपुर में रखवा दी थी। यहाँ कथाकार कहते है कि कृष्ण इससे पहले ९९ कन्याओं को कु वारा अ तःपुर में रखवा चुके थे।

उस समय कृष्ण के साथ में गजसुकुमाल कुमार भी प्रभु के दर्शन व दन करने हेतु साथ में ही चले थे। उसी दिन भगवान का उपदेश सुनकर गजसुकुमाल वैरागी बन गये। माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करने का वर्णन ज्ञातासूत्र में आये मेघकुमार के समान विस्तार से समझना। अ त में कृष्ण ने भी अपने छोटे भाई को बड़े लाड़-प्यार से समझाया। अ त में एक दिन के लिये राजा भी बनाया। कि तु आज्ञा मा गने पर राजा बने गजसुकुमाल ने दीक्षा की तैयारी की ही आज्ञा दी। बड़े हर्ष उल्लास एव राजसी वैभव के साथ अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा हो गई। दिन के पिछले प्रहर में गजसुकुमाल मुनि ने स्मशान में जाकर बारहवीं भिक्षुपड़िमा धारण करने की आज्ञा मा गी। प्रभु तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। ज्ञान से ऐसी ही स्पर्शना जानकर सहज में ही स्वीकृति दे दी। बारहवीं भिक्षुपड़िमा एक रात्रि भर कायोत्सर्ग रूप होती है। तेले की तपस्या के तीसरे दिन होती है। स भव है दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर गजसुकुमालकुमार ने तेले के तप में ही

दीक्षा ली हो। पर तु यहाँ ऐसा कोई स्पष्टीकरण मूलपाठ में नहीं है।

नवदीक्षित मुनि आज्ञा लेकर अकेले ही चले। उचित एव स्पर्शना जानकर प्रभु ने किसी स त को उनके साथ नहीं भेजा था। यों देखें तो नवदीक्षित मुनि थे और स्वय भगवान अरिष्टनेमि के भतीजे ही थे पर तु ज्ञानियों का व्यवहार ज्ञान से होता है, वहाँ स सार स ब ध या मोह कुछ होता भी नहीं है। मुनि स्मशान में पहुँच गये। योग्य स्थान की प्रतिलेखना प्रमार्जना कर कायोत्सर्ग मुद्रा में आत्मध्यान में एकाग्रचित्त होकर खड़े हो गये।

स ध्या का समय था सूर्यास्त हो गया था। उस समय सोमा कन्या का पिता सोमिल ब्राह्मण ज गल में से यज्ञ, हवन आदि की कुछ सामग्री लेकर उधर से निकला। मुनि को स्मशान में ध्यान में खड़े देखा, पहिचान भी लिया। "मेरी कु वारी निरपराध लड़की को छोड़कर यह यहाँ मुनि बन कर खड़ा हो गया।" ऐसा सोचते-सोचते पूर्व भव के वैरानुब ध के निमित्त से क्रोध बढ़ा और पास में रही चिता में से धधकते अ गारे मिट्टी के ठीबड़े में भरे, मस्तक पर मिट्टी की पाली बाँधकर उसके बीच में वे अ गारे मस्तक पर ड़ालकर वहाँ से भाग निकला और घर पहुँच गया। मुनि तो समभावों में ध्यान में लीन रहे। मस्तक जल गया, कर्म भी भस्म हो गये, केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त हुआ और प्राण भी निकल गये। मुनि सर्व कर्म क्षय कर मोक्ष पधार गये। समीप में रहे देवो ने प चदिव्य प्रगट कर निर्वाण महोत्सव मनाया।

प्रश्न-४ : कृष्ण वासुदेव को छोटे भाई मुनि की इस घटना का कैसे पता लगा ?

उत्तर- दीक्षा के दूसरे दिन कृष्णवासुदेव भगवान को व दन करने आये। व दन करके पूछा- भ ते ! गजसुकुमाल मुनि कहाँ है बताईये ताकि मक्त उनको व दन नमस्कार कर सकूँ। अरिष्टनेमि ने कहा- गजसुकुमाल अणगार ने तो अपना कार्य सिद्ध कर लिया। कृष्ण ने पुनः प्रश्न किया- भ ते ! कैसे कार्य सिद्ध कर लिया ? भगवान ने कहा- गजसुकुमाल मुनि ने अ तिम प्रहर में व दन करके बारहवीं भिक्षुपड़िमा की आज्ञा मा गी। स्मशान में जाकर एक रात्रि का कायोत्सर्ग किया। थोड़ी ही देर में एक पुरुष उधर से निकला, मुनि को देखकर वह प्रच ड़ क्रोधित हुआ इत्यादि मुक्ति प्राप्ति तक का वर्णन कह सुनाया। वह वृत्ता त सुनकर कृष्णवासुदेव को बहुत दुःख हुआ

और गुस्सा भी आया । उन्होंने भगवान से उस पापी व्यक्ति का परिचय पूछा । भगवान ने कहा कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर गुस्सा मत करो । उसने तो गजसुकुमाल मुनि को शीघ्र मोक्ष प्राप्त करने में सहाय की है ।

कृष्णवासुदेव तो स सारी एव मोहममतामई व्यक्ति थे । उन्होंने अस तोष खेद प्रकट करते हुए कहा- भ ते ! अकाल में ही मेरे छोटे भाई को निर्दयतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया, तो उसने सहाय किया ऐसा कैसे समझूँ ? प्रभु ने उत्तर दिया- हे कृष्ण ! तूँ आज दर्शन व दन करने के लिये आ रहा था । मार्ग में एक वृद्ध पुरुष को देखा, वह घर के बाहर रखी ईंट के ढ़ेर से एक एक ईंट उठाकर घर के अ दर ले जाता था । वह दिन भर कितने चक्कर काटता तो भी वह बड़े ढ़ेर की ईंटे घरमें नहीं पहुँचा पाता । कि तु हे कृष्ण ! तूँने उस ढ़ेर में से एक ईंट उठाकर हाथी पर बैठे बैठे ही उसके घर में ड़ाल दी । तब यह देखकर तुम्हारे सैनिक लोगो ने अनुसरण किया । क्षणभर में वह ईंटों का ढ़ेर घर में हो गया और उस वृद्ध पुरुष के चक्कर समाप्त हो गये । हे कृष्ण ! उस वृद्ध के उस कार्य में सहाय कर जिस तरह अनेक दिनों के उसके कार्य को तुमने क्षणभर में समाप्त करवा दिया । उसी तरह उस पुरुष ने जो वर्तन किया उससे गजसुकुमाल मुनि के लाखों भवों के स चित कर्म अ तर्मुहूर्त मात्र में स पूर्ण क्षय हो गये । इस प्रकार उस पुरुष ने मुक्ति प्राप्त करने में मुनि को बड़ी भारी सहायता की है ।

प्रभु के फरमाने पर अब कृष्ण आगे कुछ नहीं बोल सके । फिर भी उन्होंने यह पूछ लिया कि हे भ ते ! मक्त उस पुरुष को कैसे जान सकूँगा ? अरिष्टनेमि ने कहा- कृष्ण ! तुम अभी लौटकर द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए आगे बढ़ोगे, तब तुम्हारे सामने आकर एक पुरुष अचानक तुम्हे देखते ही स्वतः मर कर गिर पड़ेगा । तब तुम जान लेना कि यह वही पुरुष है । तब कृष्ण वासुदेव भाई की अकाल मृत्यु के शोक से उदासीनतापूर्वक शा ति से अर्थात् बेंड़ बाजे वादिंत्र सभी ब द रखकर राजमार्ग छोड़कर सामान्य मार्ग से जा रहे थे ।

सोमिल ब्राह्मण ने दूसरे दिन सुबह कृष्णवासुदेव को अरिष्टनेमि के पास जाते हुए देखकर सोचा कि भगवान तो ज्ञानी है और कृष्ण के पूछने पर मेरा कुकृत्य बता देंगे तो मुझे कृष्ण वासुदेव किस मौत से मारेंगे ? ऐसे तर्क वितर्क से उसने भाग निकलने का तय किया । हमेशा कृष्ण जी को भगवान की सेवा में जाकर आने में करीब घ टा दो घंटा लग जाता है ।

अतः सौमिल ने उस समय का अनुमान ध्यान में रखकर, तैयारी करके निकलने का प्रयास किया और कृष्ण के सदा आने जाने के राजमार्ग को छोड़कर अन्य रस्ता लिया । भाई के शोक से कृष्णजी घ टा दो घ टा तो क्या आधा घ टा के अ दर ही शीघ्र लौटकर आ गये । सौमिल को दौड़ते हुए कृष्णजी उसी सामान्य मार्ग में सामने दिखे । उसने सोचा कि अरिष्टनेमि ने कृष्ण को मेरे भागने का मार्ग भी बता दिया । इसीलिये ये राजमार्ग छोड़कर इस रास्ते से चुपचाप आये । ऐसा सोचकर भय से भयभीत बना खुद की भावी दुर्दशा के भय से उसका वही हार्ट अटेक हो गया । मरकर मार्ग पर गिर पड़ा । कृष्ण ने उसे देखकर पहचान लिया कि जिसकी कन्या को मक्तनेकुवारा अ तःपुर में रखी है, उसी का पिता यह सोमिल ब्राह्मण है । कृष्ण ने उसके शरीर को चा ड़ालों से घसीटवाकर नगर के बाहर फिकवा दिया और उस स्थान को पानी से धोकर स्वच्छ-पवित्र करवाया । सोमिल मरकर नरक गति में गया ।

प्रश्न-५ : इस तीसरे वर्ग के विविध वर्णनों से क्या शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञेय तत्त्व प्राप्त होते हैं ?

उत्तर- शिक्षा प्रेरणाएँ इस प्रकार है :- (१) सुख या दुःख का विशेष आधार स्वय के स कल्प-विकल्प ही बनते हैं । (२) मोह भी बढ़ाने से बढ़ता है और घटाने से घट जाता है । उसकी भी प्रमुख आधार शिला स्वय के ज्ञान-अज्ञान, विवेक-अविवेक, वैराग्य एव आसक्ति भाव है । (३) माता और पुत्र का स ब ध दोनों का है फिर भी छहों पुत्र विरक्त रहे और देवकी ने मोह भावों की वृद्धि की । (४) देवकी की उम्र भी कोई कम नहीं थी । एक हजार वर्ष के आसपास की वय में भी उसने पुत्र प्राप्ति की एव उसके लड़कपन की तीव्र अभिलाषा की । यह उसके मोह भावों का अतिरेक ही था । (५) पुत्र की मातृ भक्ति हो तो एक पुत्र भी समय पर विपत्ति एव मनोवेदना को दूर कर सकता है । कृष्ण ने अपने सारे राज्य कार्य एव सुख वैभव को गौण करके माता की स वेदना को दूर करने हेतु उसी समय से तीन दिन की निराहार पौषध साधना प्रार भ कर दी और माता की चि ता को पूर्णतः मिटा करके फिर अपने कार्य में लगे । (६) मुनियों का स्वत त्र गोचरी रूप अलग-अलग सि घाड़ा से जाना, एक ही विशिष्ट प्रख्यात घर में अज्ञातवश तीनों सि घाड़ों का पहुँचना, इत्यादि वर्णन विशेष मननीय है । इस विवरण से उस समय की मुनियों की विशिष्ट भिक्षा समाचारी का

अनुमान किया जा सकता है । **(७)** देवकी राणी का स्वय के हाथों भक्ति पूर्वक बिना किसी तर्क-वितर्क या आदेश प्रत्यादेश के तीनों सि घाड़ों को आहार का बहराना, उसकी विशिष्ट धार्मिकता को प्रकट करता है । ऐसी धर्म परायणता होते हुए भी उसने तीनों सि घाड़ों को प्रतिलाभित किया । इससे यह भी स्पष्ट है कि मुनि का दुबारा या तिबारा आना दोषप्रद या अकल्पनीय नहीं था । क्यों कि ऐसा होता तो वह दूसरे सि घाड़े को गोचरी बहराने के पहले ही सूचित कर देती । किन्तु उसने तीनों सि घाड़ों को हर्षभाव युक्त दान दिया, उसके बाद ही प्रश्न किया । इससे यह स्पष्ट होता है कि मुनि पर उसे आसक्ति की आश का हुई । इसीलिए प्रश्न रूप में निवेदन किया और चौदहपूर्वधारी मुनि ने भी अपनी अनाशक्ति और उत्कृष्ट वैराग्य का बोध कराने वाला ही उत्तर दिया । (८) सुलसा सेठाणी ने वर्षों तक पानी, फूल, अग्नि आदि के आर भ से भक्ति करके हरिणेगमेषी देव की आराधना कर अपना मनोरथ पूर्ण किया और कृष्ण वासुदेव ने निर्वद्य निराहार तीन दिन के पौषध से उसी हरिणेगमेषी देव से अपनी मनोकामना पूर्ण की । देव किसी को पुत्र देता नहीं है कि तु भवितव्यता हो तो स योग मिला सकता है या जानकारी दे सकता है कि पुत्र होगा ।

(९) सौलह वर्ष की वय मे एव एक दिन अर्थात् कुछ ही घ टों की दीक्षापर्याय से मुनि ने आत्मकल्याण साध लिया । दृढ़ता, सहनशीलता, क्षमा के द्वारा मुनि ने लाखों भवों के पूर्व स चित कर्मों का मिनटों में क्षय कर दिया । घर, कुटु ब परिवार का त्याग करने के बाद शरीर के ममत्व का भी त्याग करना, स यमाराधना के लिए शरीर को जीवित अवस्था में यों विसर्जित कर देना, कोई कम महत्त्व की बात नहीं है । अच्छे-अच्छे अभ्यासी साधक भी यहाँ आकर गड़बड़ा जाते हक्त । किन्तु धन्य है उन नवदीक्षित मुनि को, कृष्णवासुदेव के भाई होते हुए एव एक दिन की दीक्षा में भी ऐसा आदर्श उपस्थित कर दिया की जिससे प्रेरणा पाकर कई मुमुक्षु प्राणी अपने आत्मोत्थान में अग्रसर होने की महान उपलब्धि प्राप्त कर सकते हक्त ।

(१०) कवि शब्दो में-

देखो हुता ससुरा ने जवाँई, सगपण गिणियो नहीं काँई ।
मुनि क्षम्या बतलाई, समरस को पिया-२ ॥
दोय घड़ी केरे म्यान, मुनि ध्यायो शुक्ल ध्यान ।
पाया अमर विमान, अ ते ज्ञान लियो-२ ॥

अन्य कवि के शब्दों में-

गजसुकुमाल मुनि, राह निकट की चुनी ।
आझादी ली हँस के गुणी, शीश पे अ गारे हक्त ॥
ड़रना भी क्या कष्टों से, महापुरुषों का नारा है ।
विपदाओं के माध्यम से, कर्मों का किनारा है ॥

(११) सूरवीरपुरुष सि ह की वृत्ति से चलते हक्त । सि ह के समान ही वीरता के साथ स यम ग्रहण करते हक्त, प्रतिज्ञा ग्रहण करते हक्त और स कट आने पर भी सि ह के समान उस पर विजय प्राप्त कर लेते हक्त । **(१२)** सि हवृत्ति और श्वान वृत्ति के विषय में इस प्रकार कहा जाता है सि ह ब दूक की गोली पर नहीं झपटता है किन्तु उसकी आवाज से मूल स्थान को पहिचान लेता है और उसे ही अपना लक्ष्य बनाता है । किन्तु कुत्ते को कोई लकड़ी से मारे तो वह लकड़ी को ही पकड़ने की कोशिश करता है । अतः हमें दुःख के मूल-भूत स्वय के कर्मों का विचार करना और समभाव में स्थिर रहना, **यह सि हवृत्ति है** और दुःख के क्षणिक निमित्त मात्र जो कोई भी प्राणी है, उस पर रूष्ट होना या बदला लेना, **यह श्वानवृत्ति है** । प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा को गजसुकुमाल के जीवन से सि हवृति का आदर्श सीखना चाहिये । **देह वा पातयामि कार्यं वा साधयामि** का दृढ़ स कल्प होना चाहिये, तभी मुक्ति प्राप्त हो सकती है । किन्तु ऐसा स कल्प न हो कि-

खाता पीता मोक्ष मिले, तो म्हाने भी कहिजो ।
माथा साटे मोक्ष मिले, तो दूरा ही रहिजो ॥

(१३) भौतिक इच्छाओं का त्याग और जीवन का भोग दिए बिना सहज ही मुक्ति मिल जाना स भव नहीं है । अतः मोक्ष की प्राप्ति के लिये हम गजसुकुमाल मुनि का आदर्श सामने रखकर अपने जीवन को जीएँ तथा ऐसी वीरता के स स्कारों से आत्मा को बलवान बनावें ।क्यों कि-

सभी सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीप ही देत बुझाय ॥

(१४) पूर्वभव- घटना ऐसी बनी थी कि बड़ी बहू के पुत्र नहीं हुआ, छोटी बहु के पुत्र हुआ था । अतः बड़ी बहू बहुत समय से सौत के पुत्र का खात्मा करने का उपाय और मौका देख रही थी । एक समय बच्चे के मस्तक पर अत्यधिक फोड़े फुसिया हो गई । छोटी बहू का कोई भी उपाय सफल

नहीं हुआ, तब उसने बड़ी बहू को उपाय पूछा । मौका आया जानकर उसने गर्मागर्म बाटिया शिर पर बाँधने का उपाय बता दिया और कह दिया कि बच्चा रोवे तो भी उसे शीघ्र खोलना नहीं । वैसा ही किया गया । बच्चे के प्राण निकल गये । वही सौत का जीव गजसुकुमाल अणगार बना । आगम में कहा है कि गजसुकुमाल मुनि ने लाखों भव के अर्जित कर्मों का कर्जा चुकाया । इसे ही प्रचलित भाषा में एव पद्य में ९९ लाख भव पूर्व का कहा जाता है । यथा-

सौतेली माँ बन सौत के सुत सिर ।
बाटिया चढ़ा के प्राण हरा ।
निन्याणु लाख भवों के बाद में ।
गजसुकुमाल बन कर्ज भरा ॥
चढ़ा सौमिल को क्रोध अपार है ।
ड़ाले शिर पे धधकते अ गार है ॥नहीं बचा।॥

(१५) रहस्य-स भव है लोगों को यह कहना पड़ जाय कि कृष्ण ने अपने भाई के प्रति कोई सा सारिक कर्तव्य का पालन नहीं किया एव शीघ्र दीक्षा ही दिला दी । ऐसी बात का स्वतः समाधान हो जाता है कि उन्होंने तो सगाई एव शादी की पूर्ण तैयारी कर रखी थी । एव भगवान की सेवा में जाते समय भी सोमिल ब्राह्मण की कन्या **सोमा** की मा गणी करके उसे कु वारे अ तःपुर में रखवाया था ।

(१६) वीतरागी भगवान अरिष्टनेमि ने सौमिल ब्राह्मण के कुकृत्य को भी कृष्ण के सम्मुख गुण रूप में रखा । **(१७)** महापुरुषों की स गति से प्रच ड़ कोप भी निष्फल हो जाता है । **(१८)** कुकर्म करते हुए व्यक्ति भविष्य का विचार नहीं करता है और कुकृत्य करने के बाद भयभीत बनता है एव पश्चाताप करता है किन्तु पीछे सोचना उसका निरर्थक ही होता है । अतः पूर्व में ही चि तन के साथ कर्तव्य किया जाय तो उसमें पीछे पछतावा न करना पड़े । यदि सोमिल पहले यह चि तन कर लेता कि **मक्त छिप कर भी कृत्य करूँगा तो सर्वज्ञ भगवान तो जान ही लेंगे,** तो वह घोर पापकृत्य से बच जाता । कहा भी है कि-

सोच करे सो सुघड़ नर, कर सोचे सो फूड़ ।
सोच कियाँ मुख नूर है, कर सोचे मुख धूड़ ॥

(१९) कृष्ण ने सोमिल की कन्या को गजसुकुमाल के लिए कु वारे अ तःपुर में ही तो रखा था । गजसुकुमाल के दीक्षा ले लेने पर भी कु वारी कन्या का अन्य किसी के साथ भी पाणिग्रहण हो सकता था । प्रच ड़ गुस्सा करने एव मुनि घात करने जैसी कोई बात नहीं थी । किन्तु वर्तमान में कोई खास कारण न भी हो, फिर भी पूर्व भव के उत्कृष्ट वैर का निमित्त मिल जाता है । सौमिल के कोप का भी प्रमुख कारण पूर्वभव का वैर ही था । गजसुकुमाल के जीव ने सौमिल के मस्तक पर गर्मागर्म बाटिया ब धवा कर उसके प्राण हरण करवाए थे और उसकी खुशी मानी थी । वे ही कर्म उदय में आए थे । गजसुकुमाल ने उसे अपने कर्म का कर्ज चुकाना समझ कर सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह घटना लाखों भव पूर्व की थी । इसी आशय से सूत्र में कहा गया है कि लाखों भवों के स चित कर्मों की सौमिल ने उदीरणा करवाई और क्षय करने में निमित्त बना ।

(२०) पापी आदमी अपने पाप के भार से स्वतः ही सौमिल के समान दुःखी बनता है और लोक में निदित होता है । परमात्मा किसी को दुःखी नहीं करता है । कहा भी है-

राम न किस को मारता, सबसे मोटा राम ।
आप ही मर जात है, कर-कर भूण्ड़ा काम ॥

वर्ग-४ : अध्ययन- १ से १०

प्रश्न-१ : इस वर्ग में १० अध्ययनों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस वर्ग में दस राजकुमारों का वर्णन है- (१) जालिकुमार (२) मयालिकुमार (३) उवयालीकुमार (४) पुरिससेन (५) वारिसेन । ये पाँच वसुदेवजी के पुत्र और कृष्णजी के भाई थे । (६) प्रद्युम्न कुमार, श्रीकृष्ण व रूक्मणी का पुत्र था । (७) सा बकुमार, श्रीकृष्ण और जाँबवती का पुत्र था (८) अनिरुद्धकुमार, प्रद्युम्न और वेदर्भी का पुत्र था (९) सत्यनेमि और (१०) दृढ़नेमि, ये दोनों समुद्रविजयजी के पुत्र और अरिह त अरिष्टनेमि भगवान के सगे भाई थे और पिछली वय में स यम ग्रहण किया । इस वर्ग के दसों मुनि ने द्वादशा गी का अध्ययन कर १४ पूर्वधारी बने और १६ वर्ष की दीक्षा पर्याय में एव मासखमण के स थारे से **शत्रु जय पर्वत** पर सिद्ध हुए । चार वर्गों के ४१ अध्ययनों में ४१ यादव पुरुषों के मोक्ष जाने का वर्णन है ।

वर्ग-५ : अध्ययन- १ से १०

प्रश्न-१ : इस वर्ग के दस अध्ययन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस वर्ग में कृष्ण वासुदेव की आठ पटराणियों की दीक्षा का वर्णन है । उसके बाद कृष्ण के पुत्र शाम्बकुमार की दो पत्नियों की दीक्षा का वर्णन है । उन दोनों ने कृष्ण की आज्ञा लेकर दीक्षा ली थी। क्यों कि उनका पति शा बकुमार पहले ही दीक्षित हो चुका था । इन दसों ने ११ अ ग का अध्ययन यक्षिणी आर्या के पास किया । विविध तपस्याओं से आत्मसाधना करते हुए एक महीने के स थारे से २० वर्ष की दीक्षा पर्याय पूर्ण करके स पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त बन गई ।

कृष्ण की पटराणियों के नाम- (१) पद्मावती (२) गौरी (३) ग धारी (४) लक्ष्मणा (५) सुसीमा (६) जाँबवती (७) सत्यभामा (८) रुक्मणी । कृष्ण की पुत्र वधु के नाम- मूलश्री, मूलदत्ता ।

प्रश्न-२ : कृष्ण वासुदेव की मौजुदगी में उनकी मुख्य पटराणियों की दीक्षा का प्रस ग कैसे बन गया था ?

उत्तर- सामान्यतया बलदेव, वासुदेव या चक्रवर्ती आदि की राणियों का उनके रहते दीक्षा लेने का बनाव नहीं बनता है । अतः कुछ विशेष कारण से ही ऐसा बनाव बना था ।

गजसुकुमाल मुनि की दीक्षा के प्रथम दिन ही, कृष्ण की राजधानी के एक व्यक्ति के द्वारा, मारणा तिक स्थिति खड़ी कर दी गई थी । इस पर ऊहापोह विचारणा के अन्तर्गत कृष्ण के अ तःकरण में ऐसा एहसास होने लगा कि अब यह समस्त पुण्य और देवनिर्मित द्वारिका भी ज्यादा समय टिक नहीं सकेगी । एक दिन उन्होंने अर्हंत अरिष्टनेमि से पूछ ही लिया- भ ते ! देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश कैसे होगा ? प्रभु ने कहा-हे कृष्ण ! सुरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के निमित्त से इस द्वारिका नगरी का विनाश हो जायेगा ।

कृष्ण वासुदेव नगरी में गये और पूरी नगरी में घोषणा करवा दी कि द्वारिका नगरी का विनाश होने वाला है । अतः कोई भी राजा, राणी, राजकुमार, सेठ-साहुकार, नौकर, गरीब, अमीर जो भी भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेना चाहे तो उसकी पीछे की सारी व्यवस्था मक्त स भाल

लूँगा । कोई भी निश्चि त होकर दीक्षा लेवें और आत्मकल्याण करे उसमे किसी को कोई भी प्रकार की रोकटोक या चि ता करने का कारण नहीं है ।

इसी घोषणा के बाद आठ पटराणिया भी तैयार हो गई थी। जिन्हें कृष्ण ने सहर्ष आज्ञा दे दी थी और स्वय ने प्रभु की सेवा में ले जाकर दीक्षा देने का निवेदन किया था ।

प्रश्न-३ : जब नगरी ही जल-बल कर नष्ट होने वाली थी तो पटराणियों के साथ कृष्ण खुद ने दीक्षा क्यों नहीं ली ?

उत्तर- जब अरिष्टनेमि ने द्वारिका विनाश का भविष्य कथन किया था तभी कृष्ण को बहुत मानसिक दुःख हुआ था कि मेरे भाई जालिकुमार आदि जो भी दीक्षित हो चुके हैं उन्हें धन्य है, मत्समधन्य अकृत पुण्य हूँ जो अभी तक भगवान के पास दीक्षा नहीं ले सका एव राज्य में और स सार में आसक्त बना हुआ हूँ जब कि एक दिन द्वारिका का विनाश हो जायेगा । समवसरण में ही ऐसी मानसिक व्यथा में, कृष्ण को ज्ञान से जान कर प्रभु ने उसे स बोधन करके कहा कि हे कृष्ण ! तुम इस अर्ध भरतक्षेत्र के अधिपति वासुदेव हो । सभी वासुदेव पूर्व भव में नियाणा किये हुए होते हक्त । उनमें से किसी को भी स यम नहीं आता है, यह बात तीन काल में निश्चित है । इस पर कृष्ण ने अपनी भावी गति पूछ ली । तब अरिष्टनेमि ने फरमाया कि जब समस्त द्वारिका और द्वारिकावासी देव के द्वारा जला दिये जायेंगे तब तुम और बलदेव दोनों भाई, माता-पिता(वसुदेव-देवकी) को रथ में बिठाकर, रथ खींचकर नगरी के बाहर निकलने लगोगे, उस समय दरवाजे में पहुँचते ही दरवाजा गिर पड़ेगा । जिससे तुम्हारे माता पिता भी रथ सहित वहीं जल जायेंगे । तुम दोनों भाई पाँडुमथुरा पाँड़वों के पास जाना चाहोगे, तब मार्ग में कोस बी वन में जराकुमार के बाण से तुम्हारी मृत्यु होगी । तब तुम तीसरी पृथ्वी(नरक) में उत्पन्न होवोगे । इस पर कृष्ण बहुत आर्तध्यान करने लगे । तब भगवान ने फरमाया- हे कृष्ण ! तुम वहाँ से निकलकर मेरे समान तीर्थंकर बनोगे । इसी भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में ११ तीर्थंकर हो जाने के बाद तुम बारहवें **अमम** नाम के तीर्थंकर बनोंगे । यह सुनकर कृष्ण वासुदेव अत्य त खुश-खुश हो गये । वहीं पर जोर से सि हनाद किया और प्रभू को व दन नमस्कार करके द्वारिका में लौट आये । उसी के बाद धर्म दलाली के रूप में नगरी में घोषणा करवाई । जिससे सेकड़ों हजारों लोगों ने दीक्षा ली और कईयों ने स लेखना स थारा धर्माराधन किया ।

इस दलाली की उत्कृष्ट धर्म रसायन से एव धर्म निष्ठा से उन्होंने इन पिछले वर्षों में स यम-धर्म का अत्य त अनुमोदन मन वचन काय से करते हुए बिना श्रावक बने, बिना साधु बने ही तीर्थंकर गौत्र का उपार्जन कर लिया । इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान के द्वारा समस्त भावी भाव जान लेने के कारण ही खुद कृष्ण ने दीक्षा नहीं ली थी और दूसरों को दीक्षा लेने की भरपूर प्रेरणा की थी ।

प्रश्न-४ : इस वर्ग के वर्णन से क्या शिक्षा-प्रेरणा तथा ज्ञेय-तत्त्व प्राप्त होते हक्त ?

उत्तर-(१) तीर्थंकर भगवान का स योग मिल गया, नगरी के जलने की घोषणा कर दी गई, फिर भी सेकड़ों-हजारों नर-नारी द्वारिका में ही रह रहे हक्त, दीक्षा अ गीकार नहीं करते हक्त और वहीं पर जल-बल कर भस्म हो जाते हक्त । यह जीवों के भारी कर्मा होने की एक अवस्था है । भगवान के प्रति एव धर्म के प्रति श्रद्धा रखने वाले कई जीव दीक्षा नहीं ले सके । तात्पर्य यह है कि स यम की भावना और सु दर स योग हर किसी को नहीं मिल पाता है ।

(२) मनुष्य भव को प्राप्त कर अपने सामर्थ्य अनुसार मौके पर धर्म का लाभ अवश्य ले लेना चाहिये । प्रमाद, आलस्य एव उत्साह हीनता की गफलत में नहीं रहना चाहिये । जैसे कि श्री कृष्ण ने जान लिया कि मुझे स यम तो प्राप्त होने का नहीं है तो भी अन्यों को स यम लेने की प्रेरणा एव सहयोग रूप दलाली करने के अवसर का लाभ प्राप्त कर लिया । द्वारिका विनाश का निमित्त भी अत्य त प्रेरक था । ऐसे ही श्रद्धा के एव धर्म-दलाली के कर्तव्यों से उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था ।

(३) उस वातावरण में श्री कृष्ण ने अपनी आठ पटराणियों को सहज ही में दीक्षा की आज्ञा दे दी थी । आज हम सभी जानते हक्त कि यह जीवन च चल है, आयुष्य एक दिन अवश्य टूटने वाला है, तो भी आलस्य प्रमाद और मोह के वश होकर धर्माराधन के कर्तव्य को भुला रहे हक्त या भविष्य के भरोसे छोड़ रहे हक्त । प्रस्तुत प्रकरण के श्रवण से हमें अपने जीवन में नया मोड़ लाना चाहिए । व्रत या महाव्रतों में अग्रसर होना चाहिये ।

(४) कृष्ण वासुदेव के जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ावों को जानकर यह समझना चाहिए कि ये बाह्य वैभव भी जब तक पुण्यवानी का शुभ स योग है तभी तक जीव को साथ देते हक्त । श्री कृष्ण का एक समय वह था जब बुलाते ही देव ने आकर द्वारिका की रचना कर दी, सुस्थितदेव ने लवण समुद्र पार करा दिया, गजसुकुमाल भाई होने की सूचना भी देव ने ही दी थी ।

किन्तु पुण्यवानी का उतार आया तो नगरी का एक व्यक्ति, सौमिल ही गजसुकुमाल, नवदीक्षित मुनि और कृष्ण के भाई के, अरिष्टनेमि भगवान के वहाँ विराजते हुए भी प्राण हरण कर लेता है एव जो द्वारिका सदा तीर्थंकर एव मुनियों से पावन रहने वाली थी, प्रथम देवलोक के देवों के द्वारा निर्मित थी, उसे ही एक सामान्य देव जलाकर भस्म कर देता है । यह सब पुण्य एव पाप कर्मों के उदय से प्राप्त फल है । कर्मों की विचित्र अवस्थाओं को जान कर ऐसे कर्मों से सदा के लिये मुक्त होने का प्रयत्न मानव भव में अवश्य कर लेना चाहिये ।

वर्ग-६ : अध्ययन- १ से १६

प्रश्न-१ : इस वर्ग के १६ अध्ययनों का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसके तीसरे अध्ययन में अर्जुनमाली का विस्तृत वर्णन है । प द्रहवें अध्ययन में एव तामुनि का रोचक वर्णन है । शेष १४ अध्ययनों में स क्षिप्त वर्णन है । यथा- (१-२) मकाई और कि किम दोनों राजगृही नगर के श्रेष्ठी थे । प्रभु महावीर का उपदेश सुना, विरक्त हुए । पुत्र को गृहभार स भलाकर हजार पुरुष उठावे वैसी शिविका में बैठकर भगवान के समवसरण में गये थे । भगवान ने दीक्षा पाठ फरमाया । **११ अ गों** का अध्ययन किया । **भिक्षु पड़िमा** और गुणरत्न स वत्सर तप एव १ महीने के स थारे से कुल १६ वर्ष की स यम पर्याय का पालन आराधन कर स पूर्ण कर्म क्षय किये और मुक्त बने । (४-१४) इन ग्यारह अध्ययनों में ११ ही श्रेष्ठी पुरुषों का वर्णन है । इनके नगर एव दीक्षापर्याय भिन्न-भिन्न थे । दीक्षापर्याय ५ वर्ष से २७ वर्ष तक भिन्न-भिन्न है । एव दो अनेक वर्षों वालों का भी कथन हुआ है । (१६) अलक्ष राजर्षि का अनेक वर्षों की दीक्षा पर्याय से मोक्ष जाने का स क्षिप्त वर्णन है । ये सभी विपुल पर्वत पर मोक्ष पधारे ।

प्रश्न-२ : इस वर्ग के तीसरे अध्ययन में अर्जुनमाली का परिचय और दीक्षापूर्व का जीवन किस प्रकार है ?

उत्तर- राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था । वहाँ **अर्जुन** नामक एक मालागार(माली) रहता था । जो ऋद्धि स पन्न था । उसके स्वय का एक बहुत विशाल फूलों का बगीचा था । उस अर्जुन के ब धुमति नाम की पत्नि थी, जो स्त्री के सर्व गुणों, लक्षणों से सुसम्पन्न थी ।

अर्जुनमाली के उस पुष्पाराम-पुष्पवाटिका के पास में ही एक **मुद्गरपाणि** नामक यक्ष का म दिर था, उसमें मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा थी । अर्जुन माली की अनेक पीढ़ियों द्वारा उस यक्ष की पूजा की जाती रही थी । इसी परम्परा के अनुरूप वह अर्जुन भी फूल इकट्ठे करके अच्छे-अच्छे फूलों को अलग कर उस यक्ष की प्रतिमा को पुष्पार्पण करता था । प चा ग नमाकर उसे प्रणाम करता, उसकी स्तुति-गुणगान करता, फिर फूल एव मालाएँ लेकर राजमार्ग में बैठकर आजीविका करता था ।

ललिता गोष्ठी-उसी नगर में **ललिता** नामक एक गोष्ठी थी । जो कि वर्तमान भाषा में **गु ड़ों की टोली** रूप में थी । उसमें जो प्रमुख पुरुष थे, वे राजा श्रेणिक के बाल मित्र थे । पूर्व प्रेम एव वचनबद्ध होने के कारण राजा ने उन्हें सब प्रकार से छूट दे रखी थी । जिससे उनकी उद्द ड़ता बहुत बढ़ चुकी थी । नागरिक जन उनसे परेशान थे और वे गोष्ठी के लोग भी नगरी में प्रसिद्ध और परिचित हो चुके थे। लोग उनसे श कित रहते हुए दूर ही रहते थे । जनता के द्वारा शिकायत करने पर भी राजा पूर्व प्रतिज्ञा बद्ध होने से उन्हें नहीं रोक सका ।अतः बेरोकटोक उनके कुकृत्य चलते रहते थे ।

महोत्सव- एक बार नगर में कोई आन द का महोत्सव था । अर्जुनमाली ने सुबह जल्दी उठकर ब धुमति भार्या को भी साथ में लिया । क्यों कि फूलों की बिक्री विशेष होने वाली थी । माली-मालण दोनों बगीचे में आये, बहुत सारे फूल इकट्ठे किये । छबड़िया भरी और मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा के लिये कुछ चुने चुनाए सु दर फूल अलग लिए ।

गोष्ठी के गु ड़ों का उपद्रव- दोनों यक्षायतन की तरफ रवाना हुए । ललित गोष्ठी के ६ पुरुष पहले से उस म दिर में पहुँच गये थे और इच्छित खेल खेल रहे थे । अर्जुनमाली को सपत्नि आते हुए देखा और आपस में विचार किया कि अर्जुनमाली को बाँधकर हम उसकी भार्या के साथ विपुल भोगों का उपभोग करें । म त्रणा के अनुसार वे छहों प्रवेश के बड़े दरवाजे के पीछे छिप गये । अर्जुनमाली और ब धुमति ने म दिर में प्रवेश किया, प्रणाम किया, फूल चढ़ाए और फिर प चा ग झुकाकर अर्थात् घुटने टेककर प्रणाम किया । उसी समय वे छहों पुरुष एक साथ निकले और उसको उसी दशा में बाँधकर रख दिया और वे सभी ब धुमति मालिन के साथ इच्छित भोग भोगने लगे । आँखों के सामने इस तरह का कुकृत्य अर्जुन पड़ा-पड़ा देखता रहा । क्यों कि आवाज देने पर भी उन गु ड़ों के सामने कोई भी नहीं आता । उसके

मन में यक्ष के प्रति अश्रद्धा के स कल्प उठने लगे कि अरे ! पूर्वजों से पूजित यह प्रतिमा केवल काष्ठ ही है । इसमें यदि यक्ष होता तो क्या वह मेरी आपत्ति में भी मदद नहीं करता ? इस तरह वह मन ही मन कुढ़ रहा था कि यक्ष का उधर उपयोग लग गया और अर्जुन के इन अश्रद्धा के स कल्पों को उसने जान लिया ।

यक्ष का उपद्रव- अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह यक्ष वहाँ उपस्थित हुआ, अर्जुन के शरीर में प्रवेश किया, तड़ातड़ ब धन तोड़े और काष्ठ की उस प्रतिमा के हाथ में रखे एक मण २२॥ सेर अर्थात् ५७ किलों के लोहे का मुद्गर उठाया । मुद्गर लेकर क्रमशः छहों पुरुषों को मुद्गर की चोट से मौत के घाट उतार दिया और फिर बेभान बने उसने ब धुमति भार्या को भी मौत के घाट उतार दिया । अर्जुन के शरीर से यक्ष नहीं निकला । अतः यक्षाविष्ट पागल बना वह अर्जुन राजगृह नगर के बाहर चौतरफ घूमता हुआ छः पुरुष और एक स्त्री को हमेशा मारने लगा । राजा श्रेणिक भी यक्ष के सामने कुछ भी उपाय नहीं कर सका । नगर में घोषणा करवा दी कि कोई भी व्यक्ति किसी भी काम के लिये नगर के बाहर नहीं जायेगा । क्यों कि नगर के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुनमाली मुद्गर लेकर घूम रहा है और मुद्गर की चोट से स्त्री पुरुषों को मार देता है ।

इस तरह उसने पाँच महिना और तेरह दिन में ११४१ स्त्री पुरुषों का प्राणा त किया । यह स ख्या मूल पाठ में नहीं है किन्तु श्रेणिक चारित्र में मिलती है ।

प्रश्न-३ : यक्ष का उपद्रव समाप्त कैसे हुआ ?

उत्तर- विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी का राजगृही नगरी के बाहर पदार्पण हुआ । गुणशील बगीचे में ठहरे । नगर के लोगों को मालुम पड़ा किन्तु यक्षाविष्ट अर्जुन के भय से कोई भी भगवान की सेवा में जाने के लिए तत्पर नहीं हुआ । सभी आपस में एक दूसरे को मना करने लगे ।

उस नगरी में सुदर्शन श्रावक रहता था । जो श्रावक के आगम वर्णित सभी गुणों से युक्त था । दृढ़ धर्मी प्रियधर्मी था । जब उसने भगवान के आगमन की वार्ता सुनी तो दर्शन करने भगवान की सेवा में जाने का स कल्प किया। माता-पिता से आज्ञा माँगी । उत्तर-प्रत्युत्तर हुए । पिता का कहना था कि यहीं से भगवान को व दन कर लो क्यों कि बाहर यक्ष

का प्रकोप है । प्रभु केवलज्ञानी है तुम्हारा व दन स्वीकार कर लेंगे । किन्तु सुदर्शन के उत्तर में दृढ़ता थी कि जब नगर के बाहर ही भगवान पधार गये है तो उनकी सेवा में जाकर ही दर्शन करना चाहिये । घर बैठे तो सदा करते ही हक्त । अत्य त आग्रह करने पर आज्ञा मिल गई । नगर के बाहर अर्जुन का उपद्रव तो था ही ।

कई धर्मप्रेमी श्रद्धालु लोग इसी आशा में थे कि कोई न कोई धर्मवीर मार्ग खोलेगा । सुदर्शन को जाते देखकर कईयों को आशा ब धी । क्यों कि नगर में भी उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी । धीर, वीर, ग भीर, अल्पभाषी सुदर्शन अकेला ही नगर के बाहर निकला । गुणशील बगीचे में जाने की दिशा में ही मार्ग में यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का पड़ाव स्थान अर्थात् मुद्गरपाणि का यक्षायतन आया । अर्जुन ने दूर से सुदर्शन को अपनी ओर आते देखा । वह उठा और सुदर्शन की तरफ मुद्गर घुमाते हुए चला ।

भक्ति की अनुपम शक्ति– सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन को आते देखा तो वहीं ठहर गया । शान्ति से भूमि का प्रमार्जन कर बैठ गया । अरिह त सिद्धों को नमस्कार करके सागारी स थारा धारण कर लिया । उपसर्ग से मुक्त होने का आगार रखा । यक्षाविष्ट अर्जुन निकट आया और देखा कि सुदर्शन पर मुद्गर का प्रहार नहीं हो रहा है तो उसने चौतरफ घूम-घूम कर मुद्गर से मारने का प्रयत्न किया किन्तु मुद्गर आकाश में स्त भित ही रहा, नीचे नहीं गिरा । तब यक्ष सुदर्शन के सम्मुख आकर एक टक से उसे देखने लगा । फिर भी कुछ जोर नहीं चला तो वह यक्ष अर्जुन के शरीर से निकलकर मुद्गर लेकर चला गया ।

उपद्रव समाप्ति– यक्ष के निकल जाने से अर्जुन का दुर्बल बना शरीर भूमि पर गिर पड़ा । उपसर्ग समाप्ति जानकर सुदर्शन श्रमणोपासक अपने व्रत प्रतिज्ञा से निवृत्त हुआ । अर्जुन की सार स भाल की । थोड़ी देर में ही स्वस्थ होकर वह उठ गया और उसने सुदर्शन से पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ जा रहे हो ? उत्तर में सुदर्शन ने अपना ग तव्य प्रकट किया । अर्जुन भी भगवान के दर्शन करने के लिये साथ हो गया ।

प्रश्न-४ : अर्जुनमाली की दीक्षा एव मुक्ति का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– अर्जुनमाली का अ धकारमय जीवन भगवान की वाणी से प्रकाशमय बन गया । वीतराग धर्म में उसे श्रद्धा-रुचि हुई । स यम लेना ही उसने जीवन में सार्थक समझा । ब धुमति भार्या उसकी मर ही चुकी थी, स तान

उसके थी ही नहीं । भगवान के समक्ष अपने स यम के भाव प्रकट किये । भगवान की स्वीकृति मिल गयी । उसी समय लोच किया, वस्त्र परिवर्तन किये और भगवान की सेवा में पहुँचे । भगवान महावीर स्वामी ने उसे स यम का पाठ पढ़ाया । यहाँ पर आज्ञा लेने का वर्णन नहीं है, उसका कारण यह हो सकता है कि स क्षिप्त करने में या लिपिकाल में वह वाक्य कभी रह गया हो । अर्जुनमाली का कोई भी पारिवारिक सदस्य पर्षदा में हो तो उसकी अथवा राजा की आज्ञा से भी दीक्षा दे दी गई होगी ।

अर्जुन अणगार के परीषह– अर्जुन अणगार ने स यम विधि समाचारी का स क्षेप में ज्ञान किया । आजीवन निर तर बेले-बेले पारणा करने की प्रतिज्ञा ली अर्थात् दीक्षा लेते ही बेले की तपस्या प्रार भ कर दी । गोचरी भी किसी मुनि द्वारा लाई हुई नहीं की । प्रथम पारणे में भी भगवदाज्ञा लेकर स्वय ही गए ।

राजगृही में ही अर्जुनमाली ने ११४१ मनुष्यों का प्राणा त किया था । आज वही अर्जुन अणगार उसी नगरी में भिक्षा के लिए चला ।

मार्ग में चलते समय और किसी भी घर में प्रवेश करते समय उसके पास कई बालक, जवान, वृद्ध, स्त्री, पुरुष आदि आकर इस प्रकार बोलते कि– इसने मेरे पिता को मारा, इसने मेरी माता को मारा, इसने मेरी पत्नि को मारा, इसने मेरे पुत्र को मारा, इसने मेरे भाई को मारा, इसने मेरी बहिन को मारा इत्यादि कहते, कई ताड़ना-तर्जना करते, कई हीलना खि सना करते, कोई मारते पीटते, धक्का देते, कई पत्थर फेंकते, कई घर से पकड़ कर निकाल देते । उन सबको समभाव से सहन करते हुए, मन में भी किसी के प्रति कुछ भी रोष न करते हुए झु झलाहट एव आर्तध्यान से मुक्त होकर शा त ग भीर भावों के साथ अर्जुन अणगार ने बेले के पारणे में भिक्षार्थ भ्रमण किया । इस प्रकार की परिस्थिति में राजगृही नगरी में उन्हें बहुत कठिनाई से आहार पानी मिला । जो कुछ भी मिला उसी में स तोष कर उद्यान में लौट गये । भगवान के पास पहुँचकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया, एषणीय अनेषणीय की आलोचना करी एव आहार दिखाया । फिर भगवान की आज्ञा लेकर रागद्वेष के भावों से रहित होकर उस आहार पानी का सेवन किया ।

अर्जुन अणगार की मुक्ति– अर्जुन अणगार ने इसी प्रकार छः महिने तक शुद्ध स यम का पालन किया । बेले-बेले के पारणे से एव समभावों

से ही उन्होंने अपने कर्मब धनों के वृन्द समाप्त किये । अल्प दीक्षा पर्याय से एव प द्रह दिन के स थारे से अर्जुन मुनि ने स पूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया ।

प्रश्न-५ : इस अध्ययन में से ज्ञातव्य तथा शिक्षा प्रेरणा किस-किस प्रकार की प्राप्त होती है ?

उत्तर- (१) गलत आज्ञा या वचन को निभाने का आग्रह करना उचित नहीं कहा जा सकता । उसे अत्य त अहित होता जानकर परिवर्तित कर देना ही विवेक व्यवहार कहलाता है । अन्यथा वह दुराग्रह हानिकर ही होता है । ललित गोष्ठी पर अ कुश नहीं लगाने से राजा श्रेणिक की राजधानी के नागरिक लोगों मे अशा ति बढ़ी । राजा की भी इज्जत घटी और सैकड़ों का जनस हार हुआ । अतः खोटी अहितकर प्रतिज्ञा या वचन का कभी भी आग्रह नहीं रखना चाहिये ।

(२) तीर्थंकर भगवान के पधारने के बाद उस क्षेत्र में रहा हुआ उपद्रव या रोगांतक किसी भी निमित्त से शा त हो जाता है । अर्जुन का उपद्रव भी सुदर्शन श्रावक के निमित्त से दूर हुआ । मूल कारण तो भगवान के पधारने का ही समझना चाहिये । इसी कारण दैविक शक्ति भी स्तब्ध हो गई ।

(३) किसी भी व्यक्ति के भूतकाल के जीवन से वर्तमान में घृणा करना सज्जनता नहीं, किन्तु दुर्जनता है । दिशा पलटते ही व्यक्ति की दशा पलट जाती है । भूतकाल की दृष्टि से व्यक्ति को देखते रहना यह मानव की एक तुच्छ एव मलिन वृत्ति है । व्यक्ति का कब कितना विकास हो सकता है इसका भी विवेक रखना चाहिये । पापी से पापी प्राणी का जीवन भी परिवर्तित हो सकता है । प्रदेशी राजा, अर्जुनमाली, प्रभव चोर इत्यादि अनेकों उदाहरण है । कवि के शब्दो में-

घृणा पाप से हो, पापी से नहीं कभी लवलेश ।
भूल सुझा कर न्याय मार्ग में, करो यही यत्नेश ॥
यही है महावीर स देश ॥

(४) किसी भी धार्मिक व्यक्ति से या मानव मात्र से अथवा तो किसी भी प्राणी मात्र से घृणा करना उसकी नि दा करना यह निम्न दर्जे के पुरुषों का काम है । सज्जन और विवेकी धर्मीजन का यही कर्तव्य है कि वह किसी भी व्यक्ति से घृणा या निंदा का व्यवहार न करें । पाप या पापमय

सिद्धा त की नि दा या नफरत करना जहाँ गुण रूप है, वहीं पापी से या किसी व्यक्ति से घृणा करना अवगुण रूप है, अधार्मिकता है ।

(५) भगवान ने सैकड़ों मानवों के हत्यारे अर्जुन से कि चित् भी घृणा छूआ-छूत नहीं किया । भगवान तो दूर की बात, किन्तु उनका एक उपासक वह भी उसे दुष्ट, हत्यारा आदि कह कर नहीं धुत्कारता है किन्तु उसकी तत्काल सेवा परिचर्या करता है । उसको भगवान के समवसरण में अपने साथ लाता है और भगवान उसे उसी दिन उसी हालत में अपने श्रमण समुदाय में ले लेते हक्त । इस दृष्टा त से हमें हृदय की उदारता विशालता की आदर्श शिक्षा को जीवन में उतारना चाहिए एव तुच्छता स कीर्ण मानसता आदि अवगुणों को तिलांजलि देना चाहिये ।

(६) अर्जुन ने अल्प समय में ही अपने जीवन और विचारों को तीव्र गति से मोड़ दिया । आज हमें भी अपनी साधना में मान अपमान, ईर्ष्या-द्वेष, कषाय आदि प्रवृत्तियों को उपशमन करने में एव अपनी आत्मा को समभावों में और सहज भावों में स लग्न करने में ढ़ील या देर नहीं करनी चाहिये । वर्षों की धर्म जीवन पर्याय या श्रमण पर्याय हो जाय तो फिर भी हम कहीं तो अशा त बन जाते हक्त, कहीं अपने मान-अपमान की बातें करते हक्त, कहीं दूसरों के व्यवहार की चर्चा करते हक्त, किसी की नि दा तिरस्कार में रस लेते, किसी पर रुष्ट हो जाते तो किसी पर तुष्ट हो जाते हक्त । जीवन के कि चित् सुखमय क्षणों में हम कभी फूले नहीं समाते तो कभी मुरझा कर म्लान उदासीन बन जाते हक्त । यह सब मार्ग से भटकना है । केवल साधु वेश या द्रव्य चर्या मात्र है । इससे स यम की सफलता या धर्म जीवन की सफलता नहीं हो सकती ।

(७) हमारे आत्मप्रदेश के कण कण में एव व्यवहारिक जीवन में धार्मिकता, उदारता, सरलता, नम्रता, शा ति, क्षमा, विचारों की पवित्रता एव पापी-धर्मी सभी के प्रति सहज स्वभाविकता का व्यवहार आएगा । तभी अर्जुन एव गजसुकुमाल सरीखे उदाहरण सुनने का हमें सही सच्चे अर्थों में लाभ प्राप्त होगा ।

(८) चाहे गृहस्थ जीवन हो या स यम जीवन, धर्म के आचरणों से हमारे जीवन में शान्ति, प्रेम, मैत्री, माध्यस्थ भावों की और समभावों की वृद्धि होनी चाहिये । इसके विपरीत यदि किसी के भी प्रति अशान्ति, अप्रेम, अमैत्री, विपरीत भाव और विषम भावों की प्राप्ति होती है तो समझना चाहिये कि

आत्मा में धर्म का सही परिणमन नहीं हो पाया है, अपितु वह धर्माचरण केवल दिखाने का दृश्य आचरण मात्र है । यह जानकर प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी को धर्म का सही लाभ और सच्चा आन द प्राप्त करने के लिये आत्मा को सदा सुस स्कारों से सुस स्कारित करते रहना चाहिये । अपने अवगुणों को छाँट-छाँट कर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये और आत्मगुणों की वृद्धि करते रहना चाहिये । **(९)** सुदर्शन श्रावक के जीवन से धर्म प्रेम की उत्कृष्टता, दृढ़ता एव निर्भीकता की शिक्षा लेनी चाहिए । ग भीरता और विवेक तथा स कट में भी शान्ति के साथ स थारा करने की शिक्षा भी लेनी चाहिए । **(१०)** एक ही उत्तम व्यक्ति पूरे नगर को सुखी और घर को स्वर्गमय बना देता है और अधर्मी व्यक्ति सारे नगर को स कटमय और घर को नरक बना देते हक्त । अत: अपनी जिम्मेदारी जहाँ तक भी पहुँचती हो वहाँ पर कभी भी किसी में भी कुस स्कार या अन्याय अनीति नहीं बढ ने पावे इसका विवेक अवश्य रखना चाहिए । **(११)** ललित गोष्ठि के कर्तव्यों से नागरिक परेशान हो गये थे और अ त में यक्ष के उपद्रव से भारी स कटग्रस्त बन गये थे ।

(१२) सुदर्शन श्रमणोपासक के कर्तव्य से नगरी में हर्ष-हर्ष हो गया । श्रेणिक राजा की चि ता भी मिट गई और अर्जुन का बेड़ा पार हो गया ।

(१३) हमें भी भगवान की वाणी रूप शास्त्र-श्रवण एव गुरु भगव तों का, ज्ञानियों का शुभ स योग मिल गया है, अत: हमारा भी बेड़ा पार हो जाना चाहिये । जो भी साधक धर्माचरण और भावों की विशुद्धि बढ़ा कर आत्मोन्नति करेंगे, उनका अवश्य ही बेड़ा पार हो जाएगा ।

प्रश्न-६ : एव तामुनि का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस वर्ग के १५ वें अध्ययन में एव तामुनि का वर्णन है । पोलासपुरी नगरी, विजयराजा, श्री देवी राणी और उसके अतिमुक्तकुमार पुत्र था । राजकुमार ६ से ८ वर्ष के बच्चों के साथ मैदान में बालक्रीड़ा कर रहा था । गौतमस्वामी ने प्रभु महावीर स्वामी की आज्ञा लेकर बगीचे से निकल कर नगरी में प्रवेश किया ।अपने बेले के पारणे में स्वय गणधरों में प्रमुख गणधर इन्द्रभूति घरों में भिक्षार्थ भ्रमण कर रहे थे । खेलते हुए अतिमुक्तकुमार राजकुमार की दृष्टि गौतमस्वामी पर पहुँची । वे भी उस खेलने के मैदान के निकट होकर आगे बढ़ रहे थे। कुमार की मनोचेतना ने उसे प्रेरित किया । वह खेल छोड़कर गौतमस्वामी के निकट पहुँच गया

और पूछने लगा- आप कौन है और क्यों इधर-उधर घरों में घूम रहें हो ? गौतम स्वामी ने उत्तर दिया- मक्त जैन श्रमण हूँ और भिक्षार्थ घरों में भ्रमण कर रहा हूँ । बालक एव ता(अतिमुक्त) बोल उठा तो मेरे घर चलो मक्त आपको भिक्षा दिला देता हूँ । गौतम के स्वीकार करने पर बालक एव ता अ गुली पकड़ कर साथ में चलने लगा ।

कुमार की माता **श्रीदेवी राणी** ने आसन से उठकर सामने जा कर गौतमस्वामी का सम्मान किया, तीन आवर्तन पूर्वक व दन, नमस्कार किया, प्रसन्न भावों से घर में ले जाकर आहार आदि वहोराया और उन्हें विदा किया । घर के बाहर आकर बालक एव ता ने प्रश्न किया कि आप कहाँ रहते हो ? गौतमस्वामी ने कहा- नगर के बाहर **श्रीवन** बगीचे में मेरे धर्माचार्य भगवान महावीर स्वामी विराजमान है, वहाँ हम रहते हक्त । कुमार ने गौतम स्वामी से पूछा कि मैं आपके साथ भगवान का दर्शन एव व दन(चरण स्पर्श) करने चलूँ ?

गौतमस्वामी की स्वीकृति मिलने पर कुमार भगवान की सेवा में पहुँचा । भगवान को तीन आवर्तन युक्त व दन नमस्कार करके वहीं बैठ गया । गौतमस्वामी भगवान को आहार दिखा कर यथास्थान चले गये । स योगवशात् उस समय भी कुछ परिषद् वहाँ जमा हो गई थी । भगवान ने विचित्र ढ़ ग से अर्थात् बालक भी समझ सके उस तरह धर्मोपदेश फरमाया ।

एव ताकुमार उपदेश सुनकर अत्य त हर्षित एव स तुष्ठ हुआ और बोला- माता पिता से पूछ कर मक्त आपकी सेवा में प्रव्रजित होना चाहता हूँ । फिर माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर अतिमुक्तकुमार यथासमय एव ता मुनि बन गया । आगम वर्णन कुछ स क्षिप्त कुछ विस्तृत होता है तथापि माता-पिता एव समस्त परिवार का इतनी छोटी उम्र के बालक की दीक्षा में सम्मत होने में तथा शुभ मुहूर्त, सा सारिक कर्तव्य आदि में समय तो लग ही जाता है । आगम अनुसार जिनशासन में गर्भकाल सहित ९ वर्ष और बाह्यव्यवहार के आठ वर्ष तीन महीने की उम्र में दीक्षा देना अनुमत है । अत: वैराग्य के बाद कुछ आवश्यक समय व्यतीत होने तक गर्भकाल सहित नौवे वर्ष की पूर्णता एव व्यवहार के साधिक आठ वर्ष करीब में एव ता की दीक्षा होना स्वीकारा जा सकता है । उम्र स ब धी स्पष्टीकरण मूलपाठ में नहीं होते हुए भी अन्य वर्णन क्रम से अनुमान करके ऐसा समझा जा सकता है ।

दीक्षित होने के बाद एव ता मुनि के प्रार भिक स यम स स्कार शास्त्र अध्ययन आदि आगे बढ़े। बालदीक्षित मुनि ने **११ अ गशास्त्रों** का अध्ययन, विविध तपस्याएँ, **भिक्षुपड़िमा** तथा गुणरत्न स वत्सर तप की आराधना की। अ त में एक महीने के स थारे से अनेक वर्षों की दीक्षा पर्याय का पालन कर **विपुलपर्वत** पर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

प्रश्न-७ : एव तामुनि ने दीक्षा लेने के बाद कच्चे पानी में पात्री को तिराया था ?

उत्तर- यहाँ अ तगड़ सूत्र अनुसार ऊपरोक्त वर्णन किया गया है। यहाँ दीक्षा के बाद का वर्णन स क्षिप्त पाठ रूप कथन है। श्री भगवतीसूत्र में भी किसी प्रस ग से एव तामुनि का वर्णन है। वहाँ इस प्रकार दर्शाया गया है कि-

एक दिन वर्षाकाल में वर्षा वरसने के बाद कुछ श्रमण शौच निवृत्ति के लिए नगर के बाहर जा रहे थे, एव ता भी साथ हो गया। नगर के बाहर कुछ दूरी पर उसे अपनी पात्री और जल देकर बिठा दिया और वे श्रमण कुछ आगे चले गये। कुमार श्रमण शौच निवृत्त होकर सूचित स्थान में आकर रुक गया और श्रमणों का इंतजार करने लगा। जहाँ वह रुका हुआ था वहाँ एक तरफ वर्षा का पानी म दगति से बहकर जा रहा था। उसे देख एव ता मुनि का क्षण भर के लिये बाल्यभाव जाग उठा। उसमें वह स यम अवस्था एव उसकी विधि को भूल गया। आसपास की मिट्टी ली, पानी के बहाव को रोक दिया, रुके हुए पानी में अपनी पात्री छोड़ दी और उसको धक्का देते हुए इस प्रकार बोलने लगा कि-"मेरी नाव तिर रही है, मेरी नाव तिर रही है।" इस प्रकार वह वहाँ खेलते हुए समय व्यतीत करने लगा। थोड़ी देर में अन्य श्रमण भी शौच निवृत्त होकर आ पहुँचे। दूर से ही उन्होंने कुमार श्रमण के खेलने की प्रवृत्ति को देख लिया। निकट आये तब तक एव तामुनि अपने खेल से निवृत्त होकर उनके साथ हो लिए।

श्रमणों के मानस में एव ता मुनि का वह दृश्य चक्कर काट रहा था। वे भगवान के पास पहुँचे और प्रश्न किया कि भ ते! आपका अ तेवासी शिष्य एव ता कुमार श्रमण कितने भव करके मोक्ष जायेगा ? भगवान ने उत्तर में कहा कि- हे आर्यो ! यह कुमार श्रमण एव ता इसी भव में मोक्ष जाएगा। आप लोग इससे कि चित् भी घृणा, कुतूहलभाव न करके, सम्यक् प्रकार से इसे शिक्षित करो और स यम क्रियाओं से इसे अभ्यस्त करो अर्थात् किसी प्रकार की गलती कर लेने पर हीन भावना या उपेक्षाभाव न लाते हुए

बाल श्रमण की बराबर सार स भाल, विवेक युक्त ज्ञान दान, सेवा आदि करो, किन्तु हीलना, निंदा, खि सना, गर्हा या अपमान आदि न करो।

भगवान के वचनों को स्वीकार करते हुए श्रमणों ने अपनी भूल स्वीकार की। श्रमण भगवान को व दना नमस्कार किया एव एव ता मुनि का ध्यानपूर्वक स रक्षण-स वर्धन करने लगे और भक्तिपूर्वक योग्य आहार-पानी आदि से उसकी वैयावृत्य करने लगे।

प्रश्न-८ : दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिये इतनी छोटी उम्र के बालक ने माता-पिता से किस तरह उत्तर-प्रत्युत्तर किये थे?

उत्तर- यहाँ अ तगड़ सूत्र मूलपाठ में यह स वाद दिया गया है। जिसका भाव इस प्रकार है-

श्रीदेवी- माता उसे उपेक्षा पूर्वक कहने लगी कि अभी तो तूँ नासमझ नादान है, अभी तूँ क्या जाने धर्म में और दीक्षा में। यों कह कर उसे टालने का व्यवहार किया। किन्तु एव ताकुमार वास्तव में निर्भीक बालक था। उसने अपरिचित गौतमस्वामी से भी हिचक नहीं रखी, तो माता के सामने कुछ भी स कोच वह क्यों करे। उसने तुर त ही अपनी बात रख दी।

एव ता- हे माता ! आप मुझे नासमझ कह कर टालना चाहती हो, किन्तु हे माता ! मक्त "जो जानता हूँ सो नहीं जानता हूँ और जो नहीं जानता हूँ वह जानता हूँ।" माता वास्तव में टालना चाहती थी कि तु एव ता के इन वाक्यों ने माता को उलझा दिया। वह भी इन वाक्यों का अर्थ नहीं समझ सकी और एव ता से ऐसे परस्पर विपरीत वाक्यों का अर्थ पूछने लगी। एव ता ने भगवान महावीर स्वामी से शिक्षा पाई थी और स्वय भी बुद्धि निधान होनहार हस्ती थी। माता का समाधान करते हुए उसने कहा-

एव ता- १. हे माता-पिता मक्त जानता हूँ कि जो जन्मा है सो अवश्य मरेगा, अतः मक्त भी मरूँगा अवश्य किन्तु "कब, कहाँ, किस तरह मरूँगा यह मक्त नही जानता हूँ। अर्थात् क्षणभ गुर यह विनश्वर मनुष्य शरीर कब छूट जायेगा, कब मृत्यु होगी, यह मक्त नहीं जानता हूँ। २. हे माता-पिता! मक्त यह नहीं जानता हूँ कि मरकर कहा जाऊँगा, किस गति या योनि में जन्मना पड़ेगा। किन्तु यह मक्त जानता हूँ कि जीव जैसा कर्म इस भव में करेगा। उसी के अनुसार उसे फल प्राप्त होगा। तदनुसार ही उसे वैसी गति और योनि में उत्पन्न होना होगा। अर्थात् जीव स्वकृत कर्मानुसार ही नरक, स्वर्ग आदि चतुर्गति में जन्मते हक्त, यह मक्त जानता हूँ।

अतः हे माता-पिता ! क्षण विनश्वर इस मानव भव मे शीघ्र धर्म व स यम का पालन कर लेना ही उपयुक्त है । ऐसा करने से ही क्षणिक इस मानव भव का अप्रमत्तता से उपयोग हो जायेगा और मरने पर भी जिससे सद्गति का ही परिणाम बनेगा अर्थात् स यम धर्म की आराधना से जीव स्वर्ग या मुक्तिगामी ही बनता है । अन्य सब दुर्गति के मार्ग अवरुद्ध हो जाते है । इसलिये हे माता-पिता ! मक्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षित होना चाहता हूँ आप मुझे आज्ञा(स्वीकृति)प्रदान करें । इस प्रकार एव ता ने अपने वाक्यों की सत्यता सिद्ध कर दी कि- १. जो मक्त जानता हूँ वह नहीं जानता हूँ और २. जो नहीं जानता हूँ वह मक्त जानता हूँ ***"ज चेव जाणामि, त चेव ण जाणामि और ज चेव ण जाणामि, त चेव जाणामि"***

अन्य प्रकार से भी माता-पिता ने उसे समझाने का और टालने का प्रयत्न किया । किन्तु एव ता की रुचि व लगन अ तर की समझ पूर्वक थी । उसका निर्णय सबल था । अतः माता-पिता उसके विचार परिवर्तित करने में निष्फल रहे । तब उन्होंने केवल अपने मन की स तुष्टी के लिये उसे एक दिन का राज्य दिया अर्थात् उसके राज्याभिषेक करने की खुद की होंस तमन्ना पूरी की । एव ता एक दिन के लिये राजा बना किन्तु बालक होते हुए भी उसकी दिशा बदल चुकी थी ।उस बाल राजा ने माता-पिता के पूछने पर अपनी दीक्षा के स ब धी आदेश दे दिया ।

प्रश्न-९ : एव तामुनि के इस तीसरे अध्ययन से क्या क्या ज्ञेय तत्त्व एव शिक्षा प्रेरणाएँ मिलती है ?

उत्तर- (१) भाग्यशाली हलुकर्मी जीवों को सहज ही सुस योग और धर्माचरण की प्राप्ति हो जाती है और सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा वे अपने उस सुस योग को सफल कर लेते हक्त । हमें भी मानवभव, शास्त्र श्रवण, मुनि सेवा आदि का सुअवसर प्राप्त हुआ है । उसे अधिक से अधिक सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । ज्ञान एव वैराग्य के द्वारा आलस्य, लापरवाही एव उपेक्षा के भावों को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

(२) एक नन्हा सा बालक भी जीवन और धर्म के सार पूर्ण तथ्य को सरलता से समझ सकता है और उसका सही विश्लेषण कर सकता है । तो क्या हम इस छोटी सी बात को भी हृदय गम नहीं कर सकते कि-जन्मा है उसे मरना अवश्य पड़ेगा, कब कैसे मौत आयेगी इसका किसी को कुछ पता नहीं है । जीव जैसे आचरण करेगा उसी के अनुसार भविष्य की गति होगी

यह भी निश्चित है । इस मामूली सी बात को हमें लक्ष्य देकर, बाल मुनि का आदर्श सामने रखकर समझने का प्रयत्न करना चाहिये एव योग्यता या अवसर के अनुसार जीवन सुधार में, धर्माचरण में और भविष्य को कल्याणमय बनाने में, यत्कि चित पुरुषार्थ बढ़ाते रहना चाहिये ।

(३) बुद्धिमत्ता, उपज और उत्साह- १. खेल छोड़ कर एक रास्ते चलते महात्मा से उसका परिचय पूछना किन्तु उनकी खिल्ली नहीं उड़ाना । **२.** भिक्षा की बात जानते ही अपने घर ले जाने का निवेदन करना । **३.** भिक्षा लेकर निकलते मुनि से विवेक पूर्वक उनका निवास पूछना । **४.** निवास और भगवान का परिचय मिलते ही तत्काल साथ ही चल देना । **५.** भगवान की सेवा में पहुँचकर सविधि व दन करना । **६.** शा ति से बैठ जाना । **७.** धर्म और स यम की रुचि को भगवान के समक्ष रखना । **८.** माता-पिता से स्वय ही आज्ञा प्राप्ति के लिये निवेदन करना । **९.** भगवान से मिले ज्ञान के सार के आधार से चमत्कारिक उत्तर देना । **१०.** बहते पानी में नाव तिराने के लिये पहले मिट्टी से पानी को रोक कर पात्री पानी में छोड़ना । ऐसा नहीं करते तो उसके पीछे-पीछे भागना पड़ता । **११.** श्रमणों को आते हुए देखकर उस खेल से तुर त निवृत्त होकर चलने के लिये तैयार हो जाना ।

(४) वर्षा के मौसम में भी स तो के शौच निवृत्ति के लिए बाहर जाने का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत अध्ययन में है ।

(५) बाल दीक्षा का एका त विरोध करना अनागमिक है । विवेक की सर्वत्र आवश्यकता स्वतः सिद्ध है । अनेका त सिद्धा त को पाकर किसी भी व्यवहार प्रवृत्ति में एकान्त आग्रह नहीं रखना चाहिये ।

८ वर्ष, १६ वर्ष, पिछली अन्तिम वय अर्थात् हजार वर्ष की उम्र में भी केवल १०-२० वर्ष स यम पालन के उदाहरण इसी आगम में है । सेठ, राजा, राणी, राजकुमार, माली के दीक्षित होने एव मोक्ष जाने के उदाहरण इस आगम में है । अन्य आगमों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एव शूद्र के स यम ग्रहण कर मोक्ष जाने का वर्णन है । अतः आगम आज्ञा के अतिरिक्त कोई भी एका त आग्रह रखना या करना भगवदाज्ञा में नही है । वह केवल व्यक्तिगत आग्रह ही रह जाता है ।

(६) उत्कृष्टाचार के नाम से अनुदारता, स कीर्णवृत्ति, घृणाभाव एव तुच्छता पूर्ण जो भी प्रवृत्तिया समाज में श्रमणों द्वारा की जाती है, उन्हें इस अध्ययन

की निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये- **१.** एव ता का गौतमस्वामी को खेल के मैदान में निम त्रण देकर साथ ले जाना **२.** आचार्य से भी विशिष्ट महत्वशाली गणधर पदवी वाले गौतमस्वामी की अ गुली पकड़कर चलना **३.** बच्चे को घर बताने साथ चलने देना **४.** उपाश्रय में भी साथ चलने की स्वीकृति देना **५.** कच्चे पानी का स घट्टा करने पर भी उसके साथ अभद्र व्यवहार नहीं करना **६.** भगवान के द्वारा भी बालमुनि को बुलाकर नहीं ड़ा टना, अपितु श्रमणों को ही सेवा भाव के लिये एव सारस भाल, शिक्षण, स रक्षण के लिए प्रेरणा करना ।

ये सब उदारतापूर्ण व्यवहार चि तन मनन करने योग्य है । इनसे उदार भावों की वृद्धि करने में प्रेरणा मिलती है और ऐसे उदार भावों के व्यवहार से कई जीवों को उन्नति करने का अवसर एव सुस योग मिलता है । साथ ही ऐसी वृत्ति से मानव में समता भाव की वृद्धि होती है ।

(७) माता ने एव ता को अकेले ही बगीचे में जाने दिया कुछ भी रोकटोक नहीं की । गौतमस्वामी या स त कोई उसे पुनः घर पहुँचाने नहीं आए । अतः नासमझ उम्र नहीं थी एव अ गुली पकड़ कर चलने की प्रकृति से उन्हें अधिक उम्र का भी नहीं माना जा सकता । सवा आठ वर्ष वाले बालक को दीक्षा देने का विधान भी आगम में है । अतः एव ता के मुनि बनने की उम्र आठ नव वर्ष के लगभग ही समझनी चाहिए । मूलपाठ में उम्र का अलग से कोई भी स्पष्टीकरण नहीं है ।

(८) इस अध्ययन से हमें भी जीवन में स यम ग्रहण की प्रेरणा लेनी चाहिये । एक बालक भी मानव भव का इतना मूल्या कन कर सकता है तो हम प्रौढ़ वय में पहुँचे है और श्रावक का दूसरा मनोरथ भी स यम लेने का सदा रहता ही है । अतः उसे सफल करने का भी कभी प्रयत्न करना चाहिये । ऐसे ऐसे आदर्श दृष्टा त सुनकर तो अवश्य ही जीवन में कोई नया मोड़ लाना चाहिये और आध्यात्म मार्ग में कदम आगे बढ़ाने के लिए दृढ़ स कल्प करना चाहिए ।

प्रश्न-१० : इस वर्ग के अ तिम १६ वें अध्ययन में क्या वर्णन है ?

उत्तर- इस शास्त्र के ९० जीवों में केवल एक ही राजर्षि का वर्णन है । वह वर्णन प्रस्तुत १६वें अध्ययन में इस प्रकार है-

वाराणसी नाम की नगरी थी । अलक्ष नाम का वहाँ राजा राज्य करता था । वह भगवान का परम भक्त श्रमणोपासक था । एक बार

श्रमण भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ । अलक्ष राजा कोणिक की भाँति अपने ऋद्धि एव परिवार सहित भगवान के दर्शन करने गया एव धर्मोपदेश सुना ।

उपदेश सुनकर राजा विरक्त हो गया । अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य का भार सौंपकर भगवान की सेवा में दीक्षित हो गया । स यम तप का पालन करते हुए अलक्ष राजर्षि ने **११ अ गों का** ज्ञान क ठस्थ किया । पूर्व वर्णित **भिक्षुपड़िमा** एव गुणरत्न स वत्सर तप का भी आराधन किया । अनेक वर्षों तक की स यम पर्याय का पालन कर वे राजर्षि एक महीने के स थारे से **विपुलपर्वत** पर सिद्ध हुए ।

शिक्षा :- अलक्ष राजर्षि ने पिछली वय में दीक्षा ली फिर भी ११ अङ्ग का अध्ययन क ठस्थ किया । इससे यह ध्रुव सिद्धा त मान्य करना चाहिए कि जिनशासन में दीक्षित प्रत्येक श्रमण श्रमणी के लिये आगम ज्ञान का क ठस्थ करना एक आवश्यक एव प्रमुख कर्तव्य माना जाता था । चाहे राजा दीक्षा ले या राणी । केवल अल्प उम्र(स यम पर्याय) वाले अर्जुन मुनि एव गजसुकुमाल मुनि के अध्ययन का वर्णन नहीं है । शेष सभी ने ११ अङ्ग या १२ अङ्ग का क ठस्थ ज्ञान किया था ।

वर्ग-७ : अध्ययन- १ से १३

प्रश्न-१ : इस वर्ग के १३ अध्ययनों में कितने और किन जीवों का वर्णन है ?

उत्तर- इस वर्ग के १३ अध्ययनों में श्रेणिक राजा की न दा आदि १३ राणियों का वर्णन है । जिन्होंने श्रेणिक की मौजुदगी में ही भगवान का उपदेश सुनकर दीक्षा ली थी । च दना आर्या की निश्रा में रहकर उसने ११ अ ग शास्त्रों का अध्ययन किया । विविध तप-स यम से आत्मा को भावित करती हुई गुणरत्न स वत्सर तप की आराधना की एव मासखमण तक की अनेक तपस्याएँ करते हुए २० वर्ष की दीक्षापर्याय में १ महीने के स थारे से सर्व कर्म क्षय कर उपाश्रय में ही सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई ।

साध्विया पहाड़ पर जाकर स थारा नहीं करती है । आतापना आदि विशिष्ट तप साधना भी वे उपाश्रय में रहकर ही करती है । भिक्षु की प्रसिद्ध १२ पड़िमाएँ अकेले रहकर की जाती है । अतः साध्वीयाँ वे

पड़िमाएँ नहीं करती है । साधु कोई भी अकेले रहकर ये पड़िमाएँ धारण कर सकते हक्त । उनके लिये गुरु आज्ञा के सिवाय पूर्वों के ज्ञान स ब ध की कोई कायदा शास्त्र में नहीं है । अन्य दत्ति पड़िमाएँ साध्वियाँ भी कर सकती है । जिनका वर्णन आठवें वर्ग में किया गया है ।

श्रेणिक की इन १३ राणियों के नाम– (१) न दा(यह श्रेणिक पत्नि श्रेष्ठि कुल की है एव प्रथम राणी है।) (२) नन्दवती (३) नन्दुत्तरा (४) न द श्रेणिका (५) मरुता (६) सुमरुता (७) महामरुता (८) मरुदेवा (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमानषिका (१३) भूतदत्ता ।

वर्ग-८ : अध्ययन- १ से १०

प्रश्न-१ : इस वर्ग के १० अध्ययन में किनका वर्णन है ?

उत्तर– इस शास्त्र का यह अ तिम और आठवाँ वर्ग है । इसमें भी श्रेणिक राजा की काली आदि १० राणियों का वर्णन है । ये राणियाँ श्रेणिक के काल कर जाने के बाद एव कोणिक चेड़ा के युद्ध में अपने कालकुमार आदि पुत्रों की मृत्यु के बाद, स सार से विरक्त होकर कोणिक की आज्ञा लेकर भगवान महावीर के पास में दीक्षित हुई थी । च दना आर्या के सानिध्य में स यम का अभ्यास एव विविध तपस्याओं की आराधना की थी । **११ अ गों का** अध्ययन(क ठस्थ ज्ञान) पूर्ण किया । इन दस राणियों के लिये गुणरत्न स वत्सर तप का कथन नहीं है । क्यों कि दसों ने नये नये विशिष्ट तप किये थे जिनका वर्णन सूत्र में विस्तार से है ।

दश राणियों के और उनके पुत्रों के नाम- (१) काली राणी- काल कुमार (२) सुकाली राणी- सुकालकुमार (३) महाकाली राणी- महाकाल कुमार (४) कृष्णा राणी-कृष्णकुमार (५) सुकृष्णा राणी-सुकृष्णकुमार (६) महाकृष्णा राणी- महाकृष्णकुमार (७) वीरकृष्णा राणी- वीरकृष्ण कुमार (८) रामकृष्णा राणी-रामकृष्णकुमार (९) पितृसेनकृष्णा राणी-पितृसेन कृष्णकुमार (१०) महासेनकृष्णा राणी-महासेनकृष्णकुमार । श्रेणिक की मृत्यु के बाद ये राणिया कोणिक के साथ राजगृही छोड़कर च पानगरी में रहती थी ।

प्रश्न-२ : काली आदि राणियों के वैराग्य दीक्षा में निमित्त कोणिक किस प्रकार बना था ?

उत्तर– च पानगरी में कोणिक राजा राज्य करता था । कोणिक, श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना राणी का आत्मज था । वह पिता श्रेणिक के काल कर जाने के बाद अपनी राजधानी राजगृही को बदलकर च पानगरी में आकर शासन स भालने लगा । अतः अब उसके राज्य की राजधानी च पानगरी थी । कोणिक राजा राज्य स चालन में योग्य एव कुशल राजा था । माता के प्रति भी उसकी विनय भक्ति थी एव भगवान महावीर स्वामी का भी वह परम भक्त था । धर्म के प्रति भी उसका अनुराग था । किन्तु पूर्व भव में तीव्र रस का निदान कर लिया था । उसके कारण इस भव में भी (नरकगामी होने से) उदय एव भवितव्यतावश कुस स्कार उसकी बुद्धि पर हावी हो जाते थे ।

पूर्वभव निमित्तक कुस स्कार– उन्हीं कुस स्कार के प्रबल प्रवाह में उसने पिता को कैद में रख दिया था, अल्प समय में ही माता चेलना की प्रेरणा से उसे सद्बुद्धि आ गई थी । किन्तु श्रेणिक की मृत्यु की भवितव्यता ऐसी ही थी कि कोणिक तो पिता की भक्ति से उनके पास उनके ब धन काटने जा रहा था कि तु भ्रमवश श्रेणिक ने उल्टा अर्थ लिया और अ गुठी में रहे जहर प्रयोग से अपने प्राण त्याग दिये । कोणिक को अत्य त पश्चात्ताप हुआ उसी दुःख के असह्य होने के कारण ही उसने राजगृही नगरी को छोड़ दिया था । च पानगरी में उसका शासन बड़ा ही शा ति से एव धर्मभाव से व्यतीत हो रहा था । फिर उसके ऊपर कुस स्कार हावी हो गये । हार और हाथी के लिए सगे भाइयों से एव नाना श्री चेड़ा राजा से युद्ध किया । उस युद्ध में उसके दस भाई काल कवलित हो गये । उन दसों की दस माताएँ अपने पुत्रों के मृत्यु दुःख से विरक्त होकर भगवान के पास दीक्षित हुई । उन्हीं दस राणियों का वर्णन इस आठवें वर्ग में किया गया है । ये कोणिक की छोटी माताएँ थी ।

काली राणी की विरक्ति–किसी एक समय विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी का च पानगरी में पदार्पण हुआ । उस समय कोणिक चेड़ा राजा से युद्ध करने के लिये कालकुमार आदि दस भाइयों को साथ लेकर गया हुआ था । दस दिन में एक-एक करके दसों ही भाई चेड़ा राजा के अमोघ बाण से मारे गये । काली राणी भगवान के समवसरण में गई । उपदेश श्रवण के अन तर उसने भगवान से पूछा कि हे भ ते ! मेरा पुत्र काल कुमार कोणिक के साथ युद्ध में गया है, मक्त पुनः उसे देख सकूँगी ? वह

सकुशल पुनः लौट पायेगा ? भगवान ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि तुम्हारा पुत्र युद्ध में चेड़ा के हाथ से मारा गया है और मरकर चौथी नरक में उत्पन्न हुआ है । यह सुनकर काली राणी को पुत्र वियोग का अत्य त दुःख हुआ । उसके पति वियोग और पुत्र वियोग दोनों का निमित्त कोणिक ही बना था । उसे स सार से पूर्ण विरक्ति हो गई ।

प्रश्न-३ : काली आदि १० राणियों ने विशिष्ट तप कौन से किये थे ?

उत्तर- (१) काली आर्या ने रत्नावली तप (२) सुकाली आर्या ने कनकावली तप (३) महाकाली आर्या ने लघुसि ह निष्क्रीड़ित तप (४)कृष्णाआर्या ने महासि ह निष्क्रीड़ित तप (५) सुकृष्णा आर्या ने ४ प्रकार की दत्ति परिमाण वाली भिक्षुपड़िमाएँ (६) महाकृष्णा आर्या ने लघु सर्वतोभद्र तप (७) वीरकृष्णा आर्या ने महासर्वतोभद्र तप (८) रामकृष्णा आर्या ने भद्रोत्तर तप (९) पितृसेनकृष्णा आर्या ने मुक्तावली तप (१०) महासेनकृष्णा आर्या ने आय बिल वर्धमान तप ।

प्रश्न-४ : प्रथम अध्ययन में काली रानी के "रत्नावली" विशिष्ट तप का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- रत्नावली नामक एक विशेष तप की काली आर्या ने आराधना की । जिसमें तपस्या की परिपाटी का चार लड़ा हार बना कर आत्मा को सुशोभित किया । उस तपस्या में उसे कुल पाँच वर्ष दो महीने बावीस दिन लगे । रत्नावली तपस्या के तप इस प्रकार हैं-

१. उपवास+बेला+तेला+आठ बेले । २. फिर उपवास+बेला+तेला से लेकर क्रम से सोलह तक । ३. फिर चौतीस बेले । ४. उसके बाद सौलह+प द्रह+चौदह यों क्रमशः उपवास तक । ५. फिर आठ बेले, ६. फिर तेला+बेला+उपवास ।

यह एक परिपाटी लड़ी पूर्ण हुई । यह सारी तपस्या लगातार की अर्थात् बीच में एक दिन पारणा करके अगले दिन अगली तपस्या प्रार भ कर दी गई । इनमें कभी भी बीच में दो दिन लगातार आहार नहीं किया जाता है । इस एक लड़ी में ३८४ दिन तप के ८८ दिन पारणे के कुल ४७२ दिन लगे अर्थात् एक वर्ष ३ महीने २२ दिन एक लड़ी में लगे । इस तरह चार बार सभी तपस्या करके चार लड़ी पूर्ण की जाती है । उसमें विशेषता यह होती है कि- **(१)** पहली परिपाटी में पारणे में सभी प्रकार का कल्पनीय आहार लिया जा सकता है । **(२)** दूसरी परिपाटी में धार

विगय का त्याग किया जाता है । केवल साग रोटी आदि जैसी तैयार है वैसी लेना कि तु अलग से घी दूध दहीं नहीं लेना, तेल की तली चीजें नहीं लेना और किसी भी प्रकार की मिठाइयाँ गुड़ शक्कर नहीं लेना, इसे **विगय वज्ज** तप कहते हक्त । इसमें अचित्त निर्दोष फल मेवे मुखवास का त्याग नहीं होता है । **(३)** तीसरी परिपाटी में पारणे में **निवी तप** किया जाता है । इसमें घी आदि विगयों के लेप मात्र का भी त्याग होता है अर्थात् चुपड़ी हुई रोटी और बघारा हुआ साग भी इसमें नहीं लिया जाता है । शेष किसी भी प्रकार उबला या सेका हुआ अचित्त आहार लिया जाता है । इसमें फल मेवे या मुखवास का भी त्याग होता है । **(४)** चौथी परिपाटी में ऊपरोक्त स पूर्ण तपस्या क्रम से करते हुए पारणे में आय बिल तप किया जाता है इसमें लूखा विगय रहित खाद्यपदार्थ पानी में धोकर अथवा पानी में कुछ देर रख कर फिर खाया जाता है ।

इस प्रकार काली राणी ने पाँच वर्ष, दो महीने, अट्ठावीस दिन निर तर तप किया जिसमें उसने १५३६ दिन चौविहार की तपस्या की ३५२ दिन आहार किया । आहार के दिनों में भी उसने आय बिल निवी तप भी किये । यों काली राणी ने कुल आठ वर्ष के दीक्षाकाल में विभिन्न तपस्याओं के अतिरिक्त यह रत्नावली तप किया ।

राजराणी होते हुए भी पिछली वय में दीक्षा लेकर काली आर्या ने शरीर का ममत्व छोड़ा और ऐसे विकट तपोमय जीवन के साथ शास्त्र ज्ञान भी ग्यारह अ गों का क ठस्थ किया और आठ वर्ष की अल्प दीक्षा पर्याय में स पूर्ण कर्म क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त किया । काली आर्या का जीवन तप स यम से धन्य धन्य हो गया । जिसके पति और पुत्र दोनों दुर्गति के महेमान बन गये, फिर भी उसने अपने जीवन को आर्तध्यान में नहीं लगाकर धर्म ध्यान में लगाया एव उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया । ऐसे आदर्श जीवन से प्रेरणा पाकर हमें भी अधिक से अधिक तप स यम एव ज्ञान की आराधना में अपना जीवन लगाकर दुर्लभ मनुष्य भव को सार्थक कर लेना चाहिये ।

प्रश्न-५ : अन्य ९ आर्याओं के विशिष्ट तप को किस प्रकार समझना ?

उत्तर- (२) कनकावली तप- रत्नावली तप से कनकावली तप में थोड़ा सा अ तर है । रत्नावली तप में जब एक साथ आठ बेले या ३४ बेले किये जाते हक्त । उसकी जगह इस कनकावली तप में आठ तेले और ३४ तेले

किये जाते हक्त । इसके अतिरिक्त कोई अ तर नहीं है । अतः सारी तपस्या एव पारणों का वर्णन रत्नावली तप के समान ही समझ लेना चाहिये । इसमें भी चार परिपाटी की जाती है पारणे में रत्नावली तप के समान ही नीवी आय बिल आदि किये जाते हक्त । ८+८+३४= ५०X४=२०० यों दो सौ बेले की जगह दो सौ तेले करने से कुल दो सौ दिन इस तपस्या में अधिक लगते हक्त अर्थात् ६ महिने २० दिन अधिक लगते हक्त । अतः इस कनकावली तप में १७३६ दिन तपस्या के हक्त जब कि रत्नावली तप में १५३६ दिन तपस्या के हक्त । पारणे के दिन दोनों तपस्याओं में ३५२ समान ही हक्त । इस प्रकार **सुकाली आर्या** ने नव वर्ष स यम मर्यादा का पालन किया अ त में एक महीने की स लेखना-स थारा करके स पूर्ण कर्मों को क्षय किया एव सिद्ध गति को प्राप्त किया ।

(३) लघुसि ह निष्क्रीड़ित तप– इस तपस्या की स ख्या के वर्णन करने में भी एक प्रकार से मानसिक क्रीड़ा होती है अर्थात् तपस्या करते एक कम करो फिर दो बढ़ाओं फिर एक कम करो फिर दो बढ़ाओ, यथा– उपवास +बेला+उपवास+तेला+बेला+चौला, फिर ३+५+४+६+५+७ उपवास फिर ६+८+७+९ उपवास इसके बाद एक अठाई तप मध्यम स्थानीय तप ।

फिर ९ से प्रार भ करके उल्टे क्रम से उपवास तक तप को नीचे उतारा जाता है ।अर्थात् ९+७+८+६+७+५+६+४+५+३+४+२+३+१+२+१ उपवास । यह एक परिपाटी पूरी होती है । इसी तरह तपस्या की चार परिपाटी की जाती है । इस तपस्या में कुल समय दो वर्ष अठाईस दिन(७४८ दिन)लगते हक्त । जिसमें तपस्या के दिन ६१६ होते हक्त और पारणे के दिन १३२ होते हक्त ।

महाकाली आर्या ने लघुसि ह निष्क्रीड़ित तप की सूत्र वर्णन अनुसार पालना आराधना की । शेष दीक्षा पर्याय में अन्य विविध तपस्याएँ की । कुल दश वर्ष इसने स यम का पालन कर आत्मकल्याण किया ।

(४) कृष्णा आर्या ने **महासि ह निष्क्रीड़ित तप** किया । जिसमें तपस्या करने का तरीका एक घटा कर दो बढ़ाना वह लघुसि ह निष्क्रीड़ित तप के समान ही है ।अ तर यह है कि इसमें तपस्या का क्रम सोलह तक चढ़ाना फिर बीच में १५ करके सोलह से लेकर एक उपवास तक उतारना होता है ।

लघुसि ह निष्क्रीड़ित में अधिकतम तपस्या नौ तक होती है और महासि ह निष्क्रीड़ित में अधिकतम सौलह की तपस्या होती है अतः इसमें

लगभग तीन गुना अधिक समय लग जाता है ।अर्थात् १९८८ दिन तपस्या के और २४४ दिन पारणे के और कुल २२३२ दिन इस महासि ह निष्क्रीड़ित तप में लगते हक्त ।

(५) सुकृष्णा आर्या ने चार भिक्षुपड़िमाएँ धारण की । उनके नाम इस प्रकार हक्त– (१) सप्त सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा (२) अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा (३) नव नवमिका भिक्षुप्रतिमा (४) दश दशमिका भिक्षुप्रतिमा । इन चारों पड़िमाओं में उपवास आदि करना जरूरी नहीं होता है । गोचरी में आहार लेने की दत्तियों का स ख्या से अभिग्रह किया जाता है । दत्ती का मतलब एक बार में, एक धार से, स लग्न रूप से जितना आहार या पानी लिया जाय या दिया जाय उसे एक दत्ती कहते हक्त । इसमें दाता एक बार में एक रोटी या एक चम्मच आहार दे देवे तो उसे एक दत्ती कहते हक्त वैसे ही पानी भी एक धार से जितना दे देवे उतना एक दत्ती होता है ।

इन भिक्षुप्रतिमाओं की विधि– सप्त सप्तमिका प्रतिमा में प्रथम सप्ताह में हमेशा एक दत्ती आहार और एक दत्ती पानी लेना । दूसरे सप्ताह में हमेशा दो दत्ती आहार और दो दत्ती पानी लेना, तीसरे सप्ताह में तीन दत्ती यों ही सातवें सप्ताह तक में सात दत्ती आहार और सात दत्ती पानी ग्रहण किया जा सकता है । इस प्रकार इस तप में ४९ दिन लगते हक्त ।

अष्ट अष्टमिका में आठ अठवाड़े लगते हक्त अर्थात् ६४ दिन लगते हक्त । इसमें एक से लेकर ८ दत्ती तक वृद्धि की जाती है । **नव नवमिका** में नव नवक लगते हक्त । इसमें पहले नवक में एक दत्ती और क्रमशः बढ़ाते हुए नवमें नवक में ९ दत्ती आहार एव नव दत्ती पानी लिया जाता है । यों इसमें कुल–८१ दिन लगते हक्त । **दस दसमिका** में दस दशक लगते हक्त । जिससे कुल १०० दिन होते हक्त । इसमें दत्ती की स ख्या एक से लेकर दस तक बढ़ाई जाती है अर्थात् पहले दशक(दश दिन) में एक दत्ती आहार और एक दत्ती पानी लिया जाता है । अ त में दसवें दशक में दस दत्ती आहार और दस दत्ती पानी लिया जा सकता है ।

इस तपस्या में कही गई दत्तियों से कम दत्ती आहार या कम दत्ती पानी लिया जा सकता है किन्तु अधिक एक भी दत्ती नहीं ली जा सकती ।

(६) लघु सर्वतोभद्र तप– इस तप में एक परिपाटी में ७५ दिन तपस्या, २५ दिन पारणा यों कुल १०० दिन लगते हक्त और चार परिपाटी में ४०० दिन लगते हक्त । इसमें उपवास से लेकर पाँच तक की तपस्या की जाती

है । अगली लड़ी पहली लड़ीके मध्यम अ क की तपस्या से प्रार भ की जाती है । तपस्या का क्रम इस प्रकार है –

(१) उपवास + बेला + तेला + चौला + प चोला
(१ २ ३ ४ ५)
(२) ३ + ४ + ५ + १ + २
(३) ५ + १ + २ + ३ + ४
(४) २ + ३ + ४ + ५ + १
(५) ४ + ५ + १ + २ + ३

यह एक परिपाटी है । चार परिपाटी और पारणे का क्रम रत्नावली तप के समान हक्त । **महाकृष्णा** आर्या ने यह तप किया ।

(७) महासर्वतोभद्र तप– इस तप में उपवास से लेकर सात उपवास तक की तपस्या लघुसर्वतोभद्र तप के समान की जाती है । इसकी एक परिपाटी में १९६ दिन तपस्या के ४९ दिन पारणे के यों कुल २४५ दिन होते हक्त । चार परिपाटी में कुल ९८० दिन अर्थात् २ वर्ष ८ महीने २० दिन लगते हक्त । तपस्या का क्रम इस प्रकार हक्त –

(१) १ + २ + ३ + ४ + ५ + ६ + ७
(२) ४ + ५ + ६ + ७ + १ + २ + ३
(३) ७ + १ + २ + ३ + ४ + ५ + ६
(४) ३ + ४ + ५ + ६ + ७ + १ + २
(५) ६ + ७ + १ + २ + ३ + ४ + ५
(६) २ + ३ + ४ + ५ + ६ + ७ + १
(७) ५ + ६ + ७ + १ + २ + ३ + ४

यों एक परिपाटी होती है । इसी प्रकार चार परिपाटी भी समझना । **वीरकृष्णा** आर्या ने यह तप किया ।

(८) भद्रोत्तर तप– इस तप में प चोले से लेकर नौ तक की तपस्या होती है । उपवास से चौले तक की तपस्या इसमें नहीं की जाती है । इसकी एक परिपाटी में ६ मास २० दिन और चार परिपाटी में २ वर्ष २ मास २० दिन लगते हक्त । इसमें तपस्या का क्रम इस प्रकार हक्त–

(१) ५ + ६ + ७ + ८ + ९
(२) ७ + ८ + ९ + ५ + ६
(३) ९ + ५ + ६ + ७ + ८
(४) ६ + ७ + ८ + ९ + ५
(५) ८ + ९ + ५ + ६ + ७

यह एक परिपाटी हुई । इस प्रकार चार परिपाटी की जाती हक्त। पारणों का क्रम पहले के समान आय बिल तक है । **रामकृष्णा** आर्या ने यह तप किया ।

मुक्तावली– पितृसेन कृष्णा राणी ने सोलह वर्ष स यम का पालन किया । उसने विशेष तप में मुक्तावली नामक तपस्या की । इस तप में उपवास से लेकर बढ़ाते हुए सोलह तक की तपस्या होती है प्रत्येक तपस्या के बीच में पुनः पुनः एक उपवास किया जाता है । फिर दुबारा सोलह उपवास से लेकर एक उपवास तक क्रमशः उतरते हुए तपस्या की जाती है । और प्रत्यके तपस्या के बीच में एक उपवास किया जाता है । यथा–

(१) उपवास + बेला + उपवास + तेला यों क्रमशः बढ़ते हुए उपवास + सौलह । **(२)** फिर बीच में एक उपवास । **(३)** फिर १६ +१ +१५ +१+१४+१ उपवास यों क्रमशः घटाते हुए अ त में बेला+उपवास ।

यह एक परिपाटी हुई । इसी तरह चार परिपाटी की जाती है । एक परिपाटी में ३४५ दिन लगते हक्त और चार परिपाटी में १३८० दिन अर्थात् ३ वर्ष १० महीने लगते हक्त, जिसमें पारणे के दिन कुल २४० है तपस्या के ११४० दिन हक्त । **पितृसेन कृष्णा** आर्या ने यह तप किया ।

(१०) आय बिल वर्धमान तप– इस तप में एक आय बलि से लेकर सौ आय बिल तक स लग्न किये जाते हक्त । पारणे की जगह उपवास किया जाता है । यथा– (१) एक आय बिल फिर उपवास, २ आय बिल फिर उपवास, ३ आय बिल फिर उपवास; यों बढ़ाते हुए ९८ आय बिल फिर उपवास, ९९ आय बिल फिर उपवास, फिर १०० आय बिल और एक उपवास ।

यह **एक परिपाटी से ही** आय बिल वर्धमान तप पूरा हो जाता है । इस तप में कुल समय १४ वर्ष, ३ महीना २० दिन लगते हक्त । जिसमें १०० उपवास किये जाते हक्त शेष १४ वर्ष और १० दिन आय बिल किये

जाते हक्त । इस स पूर्ण तपस्या के १४ वर्षों में कभी भी विगय या उसका लेप मात्र भी उपयोग नहीं किया जाता है ।

इस प्रकार **महासेन कृष्णा आर्या** ने १७ वर्ष की दीक्षा में साधिक १४ वर्ष तक तो इस तप की ही आगमविधि अनुसार आराधना की । शेष समय में भी मासखमण तप तक की विविध तपस्याएं की । शक्ति क्षीण हो जाने पर स लेखना स थारा ग्रहण किया । एक महीने तक स थारा चला । फिर अ तिम समय में चार घातीकर्म क्षय होने पर केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । उसके अन तर अल्प समय में आयु समाप्त होने से स पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई । जिस हेतु से स यम ग्रहण किया गया था एव पाँच महाव्रत पाँच समिति, तीन गुप्ति का पालन, लोच, न गे पैर चलना, स्नान नहीं करना, दा तौन नहीं करना आदि आचार एव नव वाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था, उस अपने प्रयोजन को सिद्ध किया ।

प्रश्न-६ : इन दसों आर्याओं की दीक्षापर्याय कितनी थी ?

उत्तर- पहली काली आर्या की ८ वर्ष की दीक्षापर्याय थी । दूसरी का ९ वर्ष, तीसरी का १० वर्ष, चौथी का ११ वर्ष, पाँचवीं का १२ वर्ष, छट्ठी का १३ वर्ष, सातवीं का १४ वर्ष, आठवीं का १५ वर्ष, नौवी का १६ वर्ष, दशवीं का १७ वर्ष का दीक्षा काल था । इस प्रकार आगे आगे के अध्ययन वाली आर्याओं का एक-एक वर्ष स यमकाल अधिक था ।

प्रश्न-७ : इस शास्त्र का उपस हार रूप विशिष्ट ज्ञातव्य एव आदर्श क्या है ?

उत्तर- इस प्रकार इस सूत्र में ९० जीवों ने स यम ग्रहण करके उसके छोटे बड़े सभी विधि विधानों का पूर्ण पालन किया एव अपने लक्ष्य में सफल हुए अर्थात् इन आत्माओं ने उसी भव में मोक्ष गति को प्राप्त कर लिया । इस अ तिम आठवें वर्ग में श्रेणिक की विधवा राणियों के उग्र तप पराक्रम का वर्णन किया गया है । जीवन भर उन्होंने राणी अवस्था की सुकुमारता में समय व्यतीत किया था । अ तिम अल्प वर्षों में अपने जीवन का एक अलौकिक परिवर्तन कर दिखाया । वास्तव में वैराग्य और स यम में आत्मा को तल्लीन बना देना चाहिए । दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि- अ तिम वय में भी स यम ग्रहण करने वाले को यदि तप स यम क्षमा और ब्रह्मचर्य अत्य त प्रिय है अर्थात् इन्हीं में आत्मा को एकमेक कर देता है वह शीघ्र ही कल्याण कर लेता है । काली आदि अनेक राणियों का तथा अन्य भी

अनेक जीवों के दीक्षा लेने का वर्णन आगमों में उपलब्ध है । इस आदर्श को सम्मुख रखकर प्रत्येक श्रावक को अपने दूसरे मनोरथ को सफल करने का प्रयत्न करना चाहिए अर्थात् जब भी अवसर मौका मिले, भावों की तीव्रता बढ़े, तब शीघ्र ही परिस्थितियों को सुलझा कर, स यम मार्ग में अग्रसर होना चाहिए ।

मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख एव अ तिम साधन- अ तगड़ सूत्र के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का अथवा स सार प्रप च से छूटने का प्रमुख साधन है- (१) सम्यग् श्रद्धा के साथ स यम लेना (२) शास्त्र क ठस्थ करना एव (३) तपस्या में अपनी सारी शक्ति लगा देना । मोक्ष का अ तिम साधन तप है । भावपूर्वक, वैराग्यपूर्वक और विवेकपूर्वक एव गुरु आज्ञापूर्वक किया गया तप कर्म रोगों का समूल नाश करने के लिये अचूक साधन रामबाण के समान है । अतः स यम एव अध्ययन के अतिरिक्त बाह्य और आभ्य तर दोनों प्रकार के तपों का मोक्ष प्राप्ति में अनन्य योगदान है ऐसा समझ कर प्रत्येक मोक्ष साधक को तपोमय जीवन जीना चाहिये ।

स पूर्ण सूत्र के आदर्श- (१) शास्त्र श्रवण एव धर्म श्रद्धा का सार है मानव जीवन में अवश्य स यम ग्रहण करना । **(२)** राजा और माली, सेठ और राजकुमार, बालक और युवा एव वृद्ध राणियों की दीक्षा से परिपूर्ण यह आदर्श सूत्र सभी को बिना किसी रोक-टोक के स यम का प्रबल प्रेरक है । **(३)** स यम के सुअवसर बिना तीन ख ड़ के स्वामी महाऋद्धिवान शक्ति स पन्न श्रीकृष्ण वासुदेव भी स्वय को अधन्य, अकृतपुण्य अर्थात् अभागा होने का अनुभव करते हक्त एव स सार में विशाल कार्य क्षेत्र होते हुए भी समय-समय पर भगवान की सेवा में उपस्थित होते रहते हक्त । वे अपने नागरिकजनों को स यम लेने की खुली प्रेरणा-घोषणा करके धर्म दलाली करते हक्त । उनके जीवन के ऐसे अनेक पहलू हक्त जो हमारे लिये आदर्श श्रोत हक्त। **(४)** सुदर्शन श्रावक की ग भीरता, दृढ़ता और उनकी धर्मानुरागता अनुकरणीय है । **(५)** एव ता बाल मुनि के स यम ग्रहण का वर्णन हमारे धर्म जीवन में आलस्य और कमजोरी या भय को हटाने में अत्य त प्रेरक प्रस ग है । **(६)** गजसुकुमाल राजकुमार का शादी हेतु रखी कन्याओं का त्याग, राजसी वैभव का त्याग और प्रथम दीक्षा दिन में अपूर्व क्षमा और समभाव का आदर्श, हमारे कषायों झगड़ों को एव कलुषता को दूर करने में एक श्रेष्ठतम मार्गदर्शक है तथा धैर्यवान, ग भीर और सहनशील बनने का परम

पथ प्रदर्शक है । **(७)** अर्जुनमाली की क्षमा भिक्षुओं को स यम जीवन के क्षण-क्षण में याद करने योग्य है । जिससे अनुपम समभाव समाधि का लाभ प्राप्त हो सकता है । **(८)** गौतमस्वामी और भगवान महावीर के एव ता के साथ किये गये व्यवहार से हमें अपने जीवन में उदारता एव विशालता को स्थान देना चाहिए । किसी से घृणा या तिरस्कार के भाव नहीं होने चाहिए । **(९)** समय लेकर सूत्रों का(आगम कथित क ठस्थ) ज्ञान अवश्य करना चाहिये । बाल वृद्ध सभी के लिये यह आवश्यक नियम है । प्रस्तुत सूत्र में अल्प दीक्षा पर्याय के कारण अर्जुनमाली और गजसुकुमाल को छोड़कर स्त्री, पुरुष बाल, वृद्ध सभी ने(८८ साधकों ने) शास्त्रों का विशाल क ठस्थ ज्ञान किया था ।

(१०) स यम जीवन में तपस्या का अत्यधिक सम्मान होना चाहिए । क्यों कि तप रहित या तप से उपेक्षित स यम जीवन वास्तविक फलदायी नहीं बन सकता है । ब्रह्मचर्य एव स्वास्थ्यरक्षा के लिये तथा इन्द्रिय एव मनो निग्रह के लिये उपवास आदि तपस्याएँ निता त आवश्यक है, ऐसा समझना चाहिये । तपस्या के बिना ये साधनाएँ अधूरी रह जाती है । तपस्या के अभ्यास से ही साधक का अ तिम जीवन स लेखना स थारे की सफलता को प्राप्त कर सकता है ।

९० जीवों की कुछ समानता विशेषता :-

(१) भिक्षुपड़िमा– ३३ आर्या+२ मुनि=३५ ने भिक्षु की १२ पड़िमा नहीं की थी । ९०-३५=५५ मुनियों ने १२ भिक्षुपड़िमा का पालन किया था । जिसमें २२ मुनि १४ पूर्वज्ञानी थे कि तु ३३ श्रमण ने ११ अ ग के ज्ञानी होते हुए भी १२ भिक्षुपड़िमाओं की आराधना की थी । **दो मुनि** में एक गजसुकुमाल ने केवल एक बारहवी भिक्षुपड़िमा धारण की थी । अर्जुन माली ने एक भी भिक्षुपड़िमा धारण नहीं की थी ।

(२) गुणरत्न स वत्सर तप– दो मुनि एव काली आदि १० आर्योओं ने यह तप नहीं किया था । ९०-१२=७८ साधु-साध्वियों ने यह तप किया था ।

(३) १४ पूर्वज्ञान– तीसरे वर्ग के १३-१(गजसुकुमाल)=१२ मुनि एव चौथे वर्ग के १० मुनि यों कुल २२ अणगारों ने १४ पूर्वों का श्रुत अध्ययन क ठस्थ किया था । अर्जुनमाली और गजसुकुमाल के अध्ययन का वर्णन नहीं है यों ९०-२४(२२+२)=६६ साधु-साध्वियों ने ११ अ ग का अध्ययन किया था ।

(४) ११ अ गज्ञानी ने भिक्षुपड़िमा– प्रथम वर्ग के-१०+दूसरे वर्ग के-८ + छट्ठे वर्ग के-१५ मुनियों ने यों कुल-३३ ग्यारह अ गशास्त्रों के पाठी श्रमणों ने एकल विहार के साथ समस्त भिक्षुपड़िमाएँ धारण की थी ।

(५) स थारा– ९० जीवों में से ८८ ने एक महीने का स थारा किया था । गजसुकुमाल ने स थारा नहीं किया था और अर्जुनमाली अणगार ने १५ दिन का स थारा किया था ।

प्रश्न-८ : गुणरत्न स वत्सर तप का विश्लेषण किस प्रकार है ? तथा १२ भिक्षुपड़िमा का कुल समय कितना होता है ?

उत्तर- गुणरत्न स वत्सर तप :-

तपस्या	स ख्या	दिन (पारणासहित)
उपवास	१५	३०
बेले	१०	३०
तेले	८	३२
चौले	६	३०
प चोले	५	३०
छः	४	२८
सात	३	२४
आठ	३	२७
नव	३	३०
दश	३	३३
ग्यारह	३	३६
बारह	२	२६
तेरह	२	२८
चौदह	२	३०
पद्रह	२	३२
सोलह	२	३४
	कुल दिन-४८०=१६ महीने	

भिक्षु की बारह पड़िमा–

पहली से सातवीं एक-एक महीना	= १ x ७ = ७ मास
आठवीं से दशवीं एक-एक सप्ताह	= १ x ३ = ३ सप्ताह
ग्यारहवीं–बेला	= २ + १ = ३ दिन
बारहवीं–तेला	= ३ + १ = ४ दिन
	योग– ७ मास २८ दिन

अ तगड़ सूत्र परिशिष्ट : विशिष्ट प्रश्नोत्तर

प्रश्न–१ : द्वारिका नगरी देवनिर्मित क्यों कही गई है ? देव निर्मित वस्तु कितने काल तक रह सकती है ?

उत्तर– क सवध के बाद ज्योतिषी के कहने से जरास ध के साथ युद्ध से बचने के लिये समुद्रविजयजी आदि यादवों ने अपना देश छोड़कर पश्चिमी समुद्र तट की तरफ जाने के लिये प्रस्थान किया । फिर निमित्तक के कथन अनुसार यथास्थान पड़ाव ड़ाला और कृष्णजी ने लवण समुद्र के मालिक सुस्थित देव को तेले के तप के साथ याद किया । देव आया, नगरी के लिये स्थान की पृच्छा करी, क्यों कि समुद्र नजदीक होने से नगरी को खतरा न रहे, पहले भी एक द्वारिका समुद्र में नष्ट हो चुकी थी । सुस्थित देव ने स्थान बताया अर्थात् म जूरी दी और अन्य अनेक वस्तुएँ भेंट देकर चला गया ।

उसने यह हकीकत शक्रेन्द्र को कही । तब शक्रेन्द्र ने कुबेर(वैश्रमण) देव को भेजा । (दूसरे वर्णन अनुसार कृष्ण ने कुबेर के लिए भी तेला किया था) कुबेर ने आकर नगरी की रचना एक ही रात्रि में कर दी और उसने भी अनेक वस्तुएँ कृष्ण वासुदेव और उनके भाई बलदेव को प्रदान करी । कृष्ण का राज्याभिषेक सभी यादवों ने मिलकर किया और फिर नगरी में प्रवेश किया । कृष्ण ने देवता की सूचनानुसार सभी को अपना अपना निवास स्थान दिया। देव ने जाते जाते नगरी पर अत्य त धन की, सोने-चा दी की वृष्टि भी कर दी । इस तरह पूरी नगरी समृद्धि से युक्त हो गई ।

देव के द्वारा वैक्रिय पुद्‌गलों से बनाई वस्तु १५ दिन से ज्यादा नहीं रहती है और औदारिक पुद्‌गलों को लेकर कारीगरी से रचना करने पर वह

वस्तु स ख्यात वर्ष तक रह सकती है । तो देव ने एक ही रात्रि में वैक्रिय शक्ति-स्फूर्ति के सहयोग से औदारिक पुद्‌गलों का स कलन करके द्वारिका नगरी का निर्माण किया था । अतः वह सेकड़ो वर्षो तक रही इसमें कोई अनहोनी बात नहीं थी । तीर्थंकर अरिष्टनेमि, कृष्णवासुदेव और बलराम-बलदेव सरीखें तीन-तीन पुण्यवान पुरुषों के महापुण्योदय से ऐसा सब देव स योग बन गया था ।

प्रश्न–२ : देवकी, क स, अतिमुक्तकुमार आदि का क्या स ब ध था ? क सवध क्यों हुआ?

उत्तर– राजा उग्रसेन का पुत्र क स था । अतिमुक्तकुमार मुनि क स के भाई थे । देवकी क स की बहेन थी । क स की शादी जरास ध की पुत्री जीवयशा के साथ हुई थी । अर्थात् क स जरास ध का जमाई था । अब वसुदेवजी के साथ देवकी के लग्न की तैयारिया चल रही थी । क स की पत्नि जीवयशा अपने नणंद की शादी में मद्यपान करके मस्त थी । उधर विचरण करते हुए अतिमुक्तकुमार मुनि गोचरी आये । जीवयशा के ये मुनि देवर लगते थे । देवर-भाभी का रिश्ता याद करके मद में ही मद में उसने मुनि के साथ असभ्य व्यवहार किया । तब मुनि ने ज्ञान से देखकर कह दिया कि जिसकी शादी में तू इतनी बेभान बनी है उसी का सातवाँ पुत्र तुझे विधवा बनाएगा, तू इतनी क्यों फूल रही है ! ऐसे वचन सुनते ही उसका नशा उतर जाता है । इस घटना की जानकारी उसने क स को दी । क स ने उपाय ढूढ निकाला । वसुदेवजी के साथ देवकी की शादी होने के बाद अपनी मित्रता और स्नेहपास में उन्हें लेकर उनसे पुत्रों की मा गणी कर ली और यथासमय जब देवकी गर्भवती होने लगी तब उन्हें भी जेल में रखने लगा । इस तरह ६ पुत्रों का उसने वध किया। पर तु कृष्ण के जन्म समय में वसुदेवजी ने अर्धरात्रि में हिम्मत करके जेल के एव नगर के दरवाजे खुल जाने से यमुना नदी पार जाकर गोकुल में कृष्णजी को अपने मित्र के यहाँ छोड़कर बदले मे उसकी पुत्री लेकर रातोरात वापिस जेल में आकर रह गये । यथा समय बड़े होने पर कृष्णजी ने क स का बदला लेने हेतु, भरी राजसभा में ही क स का वध किया । तब जीवयशा रूष्ट होकर अपने पिता जरास ध के पास गई और सारी शिकायत की । तब जरास ध की आज्ञा लेकर उसके पुत्र कालकुमार ने यादवों का पीछा किया । तब तक तो यादव सौराष्ट्र की सीमा में पहुँच गये थे और बीच में ही देव छलना से कालकुमार मारा

गया तब उसकी सेना लौट गई । यादव सुरक्षित रहे क्यों कि उनकी पुण्यवानी के उदय का समाय था । तीन पुण्यवान पुरुष वहाँ थे इसलिये जरास ध, कालकुमार और जीवयशा कोई भी क स का बदला नहीं ले सका ।

प्रश्न–५ : द्वारिका नगरी में इतने राजा जागीरदार, कुमार आदि का निवास कैसे स भव था ?

उत्तर– बड़ी राजधानी में आसपास के अनेक राजा-जागीरदारों के कोठी ब गले आज भी होते हैं । उसी तरह द्वारिका बड़ी राजधानी होने से वहाँ सभी का निवास स भव है । १२ x ९ योजन बराबर आज की दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसी बड़ी नगरी समझना । एक राजा के अनेक पुत्र अलग-अलग विभाजित हो जाते है, अलग-अलग राज्य में ब ट जाते है । व्यापारी पुत्र भी अलग अलग नगरी में व्यापार-फेक्टरी खोलकर रहते है । तो भी मूल निवास पिता के स्थान में उनकी गिनती होती हे । करोड़ों यादवकुमार अनेकों यदुव शी कुमार समझना । सभी कृष्णजी आदि के पुत्र हो ऐसा नहीं समझना । यदुव श तो उस समय अति विशाल था । इस तरह समझ लेने पर कोई अस भवित मानना नहीं पड़ेगा।

प्रश्न–४ : गजसुकुमाल और सोमिल के वैर का क्या स ब ध था ? सोमिल और उसकी बेटी सोमा का भविष्य क्या हुआ ?

उत्तर– अ तगड़सूत्र के पाठ अनुसार लाखों भव पुराने कर्मों का गजसुकुमाल ने कर्जा चुकाकर मुक्ति प्राप्त कर ली थी । कथावर्णन अनुसार गजसुकुमाल के जीव ने शौक्य माता के रूप में सौमिल के बालक रूप जीव के मस्तक पर गरमागरम रोटला ब धवाकर प्राण हरण करवाये थे और उसकी खुशी, आत्मस तुष्टि मानी थी । वे चिकने कर्म बाकी थे उनको क्षय करने का निमित्त मात्र यहाँ अणगार अवस्था में था क्यों कि यही उनका चरम भव था । सोमिल का स्मशान के पास से निकलना हुआ और प्रत्यक्ष में अपनी कुँवारी पुत्री को दोष बिना छोड़कर दीक्षा ले ली, यह दृश्य निमित्त बना । उसी कारण से सोमिल ने बदला लिया । व्यवहार में, प्रगट में उसने अपनी पुत्री को छोड़ने का बदला लिया पर तु वास्तव में अ तर ग कारण वे पुराने निकाचित कर्म उदय में आये और सोमिल को भी पूर्व भव का उदय योग्य समय पूर्ण होने से कर्म उदय में आये जिससे बदला लेना हुआ, यह निश्चय और ज्ञानियों की दृष्टि का कथन है । सोमिल ने स्थूल दृष्टि से वर्तमान का और सूक्ष्म दृष्टि से पूर्वभव का बदला लिया था । गजसुकुमाल ने

तो दीक्षा लेकर स पूर्ण कर्मक्षय करने के लिये ही जिनाज्ञा से यह स्मशान का रस्ता लिया था । इस तरह जीवों के कर्मों के हिसाब से यथासमय अनेक स योग मिल जाते है, हाला कि उस समय दोनों में से किसी को भी जातिस्मरण ज्ञान या कोई विशिष्ट ज्ञान नहीं था । सोमिल तो मरकर नरक में गया, आगे भव भ्रमण करेगा । उसके बाद का खुलासा अप्राप्य है । सोमिल की पुत्री का वर्णन अ तगड़ का विषय नहीं होने से आगे का वर्णन नहीं मिलता है । स भवतः पिता सौमिल एव गजसुकुमाल की मृत्यु निमित्त से एव भगवान के उपदेश श्रवण से तथा कृष्ण द्वारा द्वारिका विनाश की सूचना से अनेकों के साथ सौमिल पुत्री ने भी दीक्षा लेकर देवगति प्राप्त की होगी । ऐसा अनुमान मात्र किया जा सकता है ।

प्रश्न–५ : कृष्णजी ने हाथी पर बैठे-बैठे ईंट कैसे रखी होगी ?

उत्तर– घर के बाहर ईंटों का ऊंचा ढ़ेर था । उसमें से ईंट सहज से उठाई जा सकती है । घर के बाहर से घर के अ दर ही पहुँचाई थी इतना ही पाठ है । अतः हाथ ल बाकर, फेंककर भी ड़ाल सकते है और वैक्रिय शक्ति तो उनको प्राप्त ही थी । वास्तव में मुख से आदेश दिये बिना राजकर्मचारियों को स केत मात्र देने का यह एक उनका तरीका था और जो आगे भगवान को सहाय के लिये दृष्टा त तरीके उपयोग करके कृष्ण को समझाने में काम आने वाला था । सार यह है कि पुण्य एव ऋद्धि-शक्तिशाली कृष्ण के लिये एक ईंट को ढ़ेर से उठाकर घर की बाहरी सीमा से अ दर की सीमा में पहुँचाना कोई मुश्किल काम नहीं था ।

प्रश्न–६ : जैनेत्तर शास्त्रों में गजसुकुमार के जन्म आदि स ब धी कोई चर्चा विषय क्यों नहीं है?

उत्तर– अन्य धर्मशास्त्रों के बनने का समय, उद्देश्य, तरीका बहुत भिन्न है । जिसमें अपने जैनधर्म की अनेक होनहार घटनाएँ– एव ता, शैलक, हरिकेशी सैकड़ो स त सतिया , कृष्ण की पटराणियों की दीक्षा, मुक्ति, मल्लिभगवती, द्रौपदी हरण, कृष्ण का अमरक का गमन, दो वासुदेवों का मिलन आदि कई घटना वर्णन जैन सिद्धा तो की अपनी व्यक्तिगत विशेषता है । अन्य धर्मशास्त्रों में कृष्ण के अन्य ६ भाई तथा गजसुकुमाल का वर्णन नहीं है, किसी भी धर्म या दर्शन की अपनी-अपनी विशेषताओं के आधार पर एव अपने ध्येय के आधार पर वर्णन किया जाता है ।

गजसुकुमाल की घटना कृष्ण के अ तिम जीवन के समय में हुई

थी और १६ वर्षों में ही पूर्ण हो गई थी । फिर थोड़े ही समय में द्वारिका विनाश आदि घटनाएँ हुई है ।

प्रश्न–७ : भगवान महावीर राजगृही नगरी में पधार गये थे तो फिर अर्जुनमाली एव यक्ष का उपद्रव कैसे रहा ?

उत्तर– भगवान जहाँ भी पधारते है, विचरते है वहाँ २५ योजन तक कोई नया उपद्रव नहीं होता है, और पुराना हो तो भी किसी तरह स योग मिल-मिलाकर समाप्त हो जाता है । राजगृही में भगवान के आने के महिनों पूर्व का उपद्रव था । वह भी भगवान के आने के निमित्त से ही सुदर्शन का दर्शनार्थ हठ करके जाना और देव का भाग जाना घटित हुआ । यह भी स्वीकारना योग्य होगा कि भगवान के राजगृही में आने के बाद कोई भी हत्या नहीं हुई होगी, शायद प्रभु उसी दिन ही पधारे हों । देव उपद्रव भी समाप्ति पर ही था । उसमें भी कोई निमित्त मिलना आवश्यक होता है । ऐसा तो नहीं मानना कि भगवान के चरण पड़ते ही चमत्कारवत् एकक्षण में सब परिवर्तन हो जाय । अर्जुनमाली के कल्याण का एव उसका प्रभु चरणों में पहुँचना आदि भी स योग मिलने थे । इसलिये भगवान के पधारने के कुछ समय-घ टों बाद उपद्रव समाप्त हो गया, वह भगवान के अतिशय का ही प्रभाव था अन्यथा देव का मुद्गर रुकने का कोई कारण नहीं था ।

प्रतिप्रश्न– भगवान के समोवसरण में गोशालक ने आकर दो साधुओं की हत्या की थी उसमें अतिशय लागू नहीं पड़ा था ? **उत्तर–**अन तकाल से कुछ अच्छेरे–आश्चर्यजनक घटनाएँ होती है, जिनका कथन स्थाना ग सूत्र में है । उसमें भगवान महावीर के स ब धित पाँच अच्छेरे है और पाँच अन्य है । तो गोशालक का उपद्रव, यह भी लोक की आश्चर्यजनक घटना ही थी । भगवान का अतिशय यहाँ लागू नहीं हुआ था यही लोक की अनहोनी घटना कही गई है । वास्तव में यह अतिशय से विपरीत ही हुआ था इसीलिये शास्त्र में उसे अनहोनी घटना गिना गया है । ऐसी आश्चर्यभूत घटना अन तकाल से कभी कहीं लोक में होती है । इसके सिवाय भगवान के अतिशय सर्वत्र लागू पड़ते हक्त । इस प्रकार के अच्छेरे भी अन तकाल से हुण्ड़ावसर्पिणी के कारण घटित होते है ।

प्रश्न–८ : शास्त्र वर्णित पोलासपुरी नगरी एक ही थी या दो थी ?

उत्तर– एक पोलासपुरी नगरी का वर्णन, कृष्ण वासुदेव के वर्णन में उसकी माता देवकी की शादी के प्रस ग का है । जहाँ अतिमुक्तकुमार क स के

भाई मुनि ने भविष्य वाणी करके जीवयशा से अपना पि ड़ छुड़ाया था । वह सब वर्णन २२ वें तीर्थंकर के शासन काल से पूर्व का था ।

दूसरा वर्णन पोलासपुरी में बालमुनि एव ता अणगार का है । यह समय श्रमण भगवान महावीर के शासनकाल का है । इन दोनों समयों में ८४–८५ हजार वर्षों का अ तर है । इतने समय में नगर-नगरियों के कितने ही परिवर्तन या नामसाम्यता कुछ भी हो सकते है। अतः दोनों नगरी पोलासपुरी एक थी या अन्य, यह आगम वर्णन से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इसके लिये इतिहास की सही समीक्षा करनी आवश्यक होती है । जो अपने आगम का विषय नहीं होने से उसके लिये आगमाधार से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । ***(वैसे दोनों अलग अलग होनी सिद्ध होती है, क्यों कि अतिमुक्तक वाली पोलाशपुरी वर्तमान दिल्ही हस्तिनापुर के पास होनी चाहिये और एव ता वाली वर्तमान बिहार प्रा त में होनी सिद्ध होती है ।)***

प्रश्न–९ : अर्जुनमाली ६+१=७ व्यक्तियों की घात करता था तो क्या उसके अतिरिक्त को छोड़ देता था ?

उत्तर– अ तगड़सूत्र के मूलपाठ से यह स्पष्ट होता है कि वह ६ पुरुष एव १ स्त्री यों सात जीवों की घात करता हुआ राजगृही नगरी के बाहर भ्रमण करता था । देवी उपद्रव में ऐसी धुन सवार हो सकती है तदनुसार जब तक वह ६ पुरुष और १ स्त्री को नहीं मार पाता तब तक इधर-उधर घूमता रहता था । उसे अपनी धुन अनुसार स योग मिल ही जाता, तभी वह विश्राम लेता था । उसके बाद कोई उसके पास से होकर जाता तो वह उसे ड़राता या कुछ भी करता पर तु मारता नहीं । अपनी धुन जितना ही मारक कृत्य वह दैविक विवशता(प्रभाव) से करता था ।

प्रश्न–१० : कृष्ण के कितने पुत्र दीक्षित हुए एव मोक्ष गये ? और भी किसी शास्त्र में वर्णन है ?

उत्तर– अ तगड़सूत्र के चौथे वर्ग में प्रद्युम्न और शा ब दो ही कृष्ण के पुत्रों के दीक्षित होने का वर्णन है । रुक्मिणी और जाँबवती उनकी माताएँ थी । अन्य सात जालिकुमार आदि तो कृष्ण के सगे और चचेरे भाई थे । एक अनिरुद्धकुमार कृष्ण का पौत्र था जो प्रद्युम्न-वेदर्भी का पुत्र था ।

इसके सिवाय निरयावलिका सूत्र में कृष्ण वासुदेव के भाई बलराम के पुत्रों की दीक्षा आदि का वर्णन पाँचवें वर्ग में है पर तु कृष्ण के दो पुत्र और एक पौत्र का वर्णन अ तगड़ सूत्र में है, अन्य पुत्रों का वर्णन नहीं है ।

आठ पटराणियों का और दो पुत्रवधुओं की दीक्षा एव मुक्ति का वर्णन यहाँ अ तगड़सूत्र में है ।

प्रश्न–११ : क्या भगवान महावीर स्वामी केवलज्ञान के बाद आहार-निहार करते थे ?

उत्तर– भगवतीसूत्र शतक–२ में भगवान को **'उन दिनों नित्याहारी थे'** ऐसा स्क धक के प्रकरण में है । इससे स्पष्ट है कि भगवान आहार भी करते थे तथा फरसनानुसार तपस्या भी करते थे । आहार स ब धी भगवान का अन्य वर्णन नहीं है । सि हा अणगार से भगवान ने औषध रूप आहार म गवाकर अपने हाथ में लेकर किया था । इसी तरह भगवान को जब भी आहार की फरसना होती तब कोई भी अणगार, गणधर आदि से म गवाकर अपने हाथ में लेकर ही करते थे । निहार का तो औदारिक शरीर होने से आहार के साथ अवश्य भावी स ब ध है । अतः मल-मूत्र की बाधा होने पर भगवान योग्य भूमि में एका त में जाकर निवृत्त हो लेते थे । उसमें कोई प्रकार की व्यवस्था भ ग नहीं होती थी । बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा भी शरीर के कारण तो यथास्थान अकेले ही जाकर मल-मूत्र त्याग करते ही है । यह तो औदारिक शरीर की प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यक प्रवृत्ति है ।

प्रश्न–१२ : श्रेणिक के काल करने के बाद कोणिक ने च पानगरी को अपनी राजधानी बनाई थी तो क्या राजगृही को खाली कर दी थी ? वर्तमान में च पानगरी कहाँ है?

उत्तर– कोई भी राजा अपनी राज्य सीमा की किसी भी बड़ी नगरी को अपनी राजधानी बना सकता है उसमें पूरी नगरी को खाली करने की आवश्यकता नहीं होती है । राजा एव उनका परिवार तथा मुख्य कर्मचारी म त्री आदि का जाना जरूरी होता है । बाकी तो उस नगरी में भी सभी राजा के अधीनस्थ लोग ही होते है । वहाँ के लोग ही वहाँ काम आते है और राजगृही नगरी भी उसी के अधीनस्थ नगरी रही थी । वहाँ की सभी स पदा भी उसकी अपनी ही रही थी । केवल उसने अपना निवास राजभवन आदि परिवर्तित किये थे राजगृही में भी अन्य अधीनस्थ राजा को या च पा के राजा को नियुक्त कर दिया होगा ।

हजार दो हजार वर्ष में कितने ही परिवर्तन होते रहते है इसमें भाग्य से ही कोई नगरी उसी अवस्था में उसी नाम से रहती है । अन्यथा या तो नगरी नष्ट हो जाती अथवा बदल जाती, राजा लोग नष्ट भ्रष्ट कर

देते, लूट लेते अथवा वैसा ही नाम अन्य नगरीयों का दे दिया जाता है; इत्यादि कारणों से इतिहास के विषय में आगम में कोई खास वर्णन नहीं मिलता । लोगों की कल्पनाएँ एक पक्षीय चि तन की होती है । अतः हमें आगम वर्णन के सिवाय ऐसे इतिहास के वर्णन के आग्रह में नहीं पड़ना ही हितावह है । सच्चा स गत इतिहास स्पष्ट हो तो हमें अस्वीकार करने की भी जरूरत नहीं है और खास प्रमाणिकता न हो तो उसके आग्रह में पड़ने में धार्मिक आध्यात्मिक जीवन में उसका कोई लाभ नहीं है । वर्तमान में देखते देखते ही मद्रास का चेन्नई अटपटा नाम चलाया गया है । जब कि मद्रास नाम अति प्राचीन(पाँड़वो के समय का) और सु दर ही था । इसी तरह मु बई नाम कहाँ से आया ? इतिहास और आगम वर्णनों में यह नाम कहीं भी नहीं है । आगम में कच्छ देश और कोस बी नगरी आती है । आज कच्छ तो है कोस बी नगरी नहीं दिखती । सौराष्ट्र और द्वारिका नगरी का नाम तो आज सही मिलता है पर वास्तविक द्वारिका तो नष्ट हो चूकी थी । अतः यह नये नामकरण वाली द्वारिका है । अतः आगमिक गामों नगरों को अभी उस नाम से खोजना अनावश्यक श्रम होता है ।

प्रश्न–१३ : आगम में साध्वियों के ११ अ ग का अध्ययन ही आता है, आज तो जितने भी शास्त्र है वे सभी साधु-साध्वी समान रूप से पढ़ रहे है तो आगम मर्यादा क्या है ?

उत्तर– आगमकाल में अन्य कोई भी ज्यादा शास्त्र होते ही नहीं है, आवश्यक सूत्र और द्वादशा गी=१२ अ गसूत्र ही होते है । तब सैकड़ों साधु-साध्वी ११ अ गशास्त्रों का अध्ययन ही कर पाते थे ।१२वाँ अ ग बहुत कठिन, भ ग गणित, विद्यासाधना से युक्त एव अनेक प्रकार की शारीरिक साधनाओं के साथ अध्ययन किया जाता था जो हरेक सामान्य साधु के बस की बात नहीं थी । तो साध्वीओं के लिये तो उसका अध्ययन कठिनता आदि अनेक अपेक्षाओं से दुरुह और ज्ञानियों की दृष्टि से अशक्य भी था । अतः साध्वी के लिये ११ अ ग का विधान ही उपयुक्त माना गया है । साध्विओं में दृष्टि-वाद पढ़ाने वाली भी कोई साध्वी नहीं होती थी । उनकी प्रवर्तिनी आदि भी ११ अ ग की जानकार ही होती थी । साधुओं को तो गणधर पढ़ाते थे उन्हें तो १२ अ ग पूर्वभव की लब्धि से होते थे । साध्वियों को पूर्वभव की लब्धि से ११ अ ग ही होते है और साधुओं की वाचना में नियमित रूप से साध्वियाँ सम्मिलित नहीं होती थी । कदाचित् कहीं प्रश्न चर्चा या सत्स ग में साध्वियाँ

उपस्थित होती थी । अतः उनके ११ अ ग की ही पर परा चलती थी । तथा उनके लिये दृष्टिवाद के अध्ययन की कोई आवश्यकता तीर्थंकरों ने नहीं समझी है । केवलज्ञान तो सबसे बड़ा ज्ञान है, वह साध्वियों को कर्मक्षय से स्वतः होता है, अध्ययन का विषय वह ज्ञान नहीं है । यहाँ तो अध्ययन की योग्यता-सुविधा में उनके लिये ११ अ ग की उपयोगिता दर्शाई गई है इतना ही समझना चाहिये । वर्तमान में अनेक सूत्र ११ अ ग में से या १२ वें अ ग मे से स पादित कर सरलीकृत कर दिये गये हक्त । उसमें साध्वियों को अध्ययन करने में कोई अनुपयुक्तता नहीं होने से उन सभी शास्त्रों का अध्ययन वह कर सकती है ।

प्रश्न–१४ : आठवें वर्ग में वर्णित श्रेणिक की दस राणियों ने दीक्षा एक साथ ली थी क्या ?

उत्तर– शास्त्र में वर्णन करने का तरीका क्रमिक होता है, जैसे कि राजा स्नानादि करके भगवान की सेवा में पहुँचे, फिर राणी स्नानादि करके भगवान की सेवा में पहुँची, राजा को ही सम्मुख रखते हुए परिषद में राजा के साथ बैठी, वगेरे वर्णन क्रमिक होते हुए भी दोनों साथ ही तैयार होकर जाने का समझा जा सकता है । उसी तरह श्रेणिक की १० राणियाँ साथ में ही दर्शन करने आयी होगी, साथ में ही एक के बाद दूसरी ने यों दसों ने अपने पुत्र के युद्ध में से वापिस आने स ब धी प्रश्न किया । पुत्रों की मृत्यु एव नरक में जाने का वर्णन भगवान के श्रीमुख से सुनकर दसों राणिया विरक्त हुई । फिर कोणिक के युद्ध से वापिस आ जाने पर उसकी हाजरी में सभी की साथ में दीक्षा हुई; ऐसा समझना उपयुक्त होता है ।

उम्र की अपेक्षा सभी की एक-एक से क्रमशः एक एक वर्ष अधिक थी । इसलिये एक-एक वर्ष बाद में स लेखना स थारा करके मोक्ष में गई । क्यों कि आयुष्य तो अपना अपना जैसा लाये है तभी पूरा होता है कि तु एक ही घर में दशों के पुत्र १० दिन में मर गये तो दीक्षा, वैराग्य अलग-अलग समय में मानना योग्य नहीं होता है । अतः साथ में दीक्षा होना मानना ही स गत प्रतीत होता है ।

॥ अन्तकृत दशा ग सूत्र स पूर्ण ॥

अनुत्तरोपपातिक सूत्र

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– ग्यारह अ ग शास्त्रों में यह नौवाँ अ गसूत्र है, अतः इसके रचनाकार गणधर भगव त है । इसका परिमाण २९२ श्लोक प्रमाण माना गया है ।

इस शास्त्र में तीन वर्ग एव उनमें क्रमशः १०, १३, १० यों कुल ३३ अध्ययन है । जिसमें ३३ भव्यात्माओं का जीवन अ कित है । दो वर्गों में श्रेणिक राजा के पुत्रों का और तीसरे वर्ग में धन्ना श्रेष्ठी आदि विविध आत्माओं का स यम ग्रहण कर मुक्त होने तक का वर्णन है । पर तु वर्तमान स यम साधना से ये ३३ ही आत्माएँ अनुत्तर(श्रेष्ठ) विमान स ज्ञक देव विमानों में उत्पन्न हुए हक्त । आगे फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम आराधना करके समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष जायेंगे ।

यह शास्त्र कथा प्रधान अ गसूत्र है । इस पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की है । जो स क्षिप्त है । अर्वाचीन व्याख्या साहित्य हिंदी स स्कृत एव गुजराती भाषा में अनेक जगह से प्रकाशित उपलब्ध है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र में विशिष्ट एव प्रमुख पात्र कौन है ?

उत्तर– (१) इस सूत्र के विशिष्ट पात्र इस प्रकार है– भगवतीसूत्र एव निरयावलिका सूत्र वर्णित वेहल्ल और वैहायस दोनों कोणिक के सगे भाइयों का अर्थात् चेलणा राणी के पुत्रों का दीक्षित होने का तथा दूसरे एव तीसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने का कहा गया है ।

(२) श्रेणिक के पुत्र एव श्रेष्ठी पुत्री न दा राणी के आत्मज अभयकुमार का भी वर्णन है । जिसमें यह दर्शाया गया है कि अभयकुमार भगवान महावीर के पास दीक्षित होकर स यम तप की आराधना करके ५ वर्ष के दीक्षा पर्याय एव एक महीने के स थारे से आराधक बन कर विजय नामक प्रथम अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए ।

(३) तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में श्रेष्ठीपुत्र धन्ना मुनि का विशिष्ट एव रोचक विस्तृत वर्णन है, जिसमें उनके तपस्या से कृश बने शरीर का अल कारिक भाषा में उपमाओं से परिपूर्ण वर्णन किया गया है तथा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में भगवान ने १४००० श्रमणों में धन्ना अणगार की स यम आराधना

को उस समय सर्व श्रेष्ठ, महादुष्कर, कठिनतम, महानिर्जरा वाली कहा है ।

प्रश्न-३ : इस सूत्र वर्णित पात्रों की नाम साम्यता और उसका समन्वय किस प्रकार है ?

उत्तर- धारिणी, लष्टद त एव वेहल्ल ये तीन नाम इस शास्त्र में दुबारा आये हैक्त । जिसमें से **धारिणी** नाम की श्रेणिक की दो राणिया थी ऐसा समझना उपयुक्त होता है । प्रथम वर्ग की धारिणी माता के सात पुत्रों का वर्णन है । द्वितीय वर्ग की धारिणी माता के १३ पुत्रों का वर्णन है । अलग-अलग दोनों वर्गों में वर्णित धारिणी माता को एक नहीं किया जा सकता है । एक करने पर नई-नई उलझने, श काएँ उत्पन्न होती है जिनका समाधान हो नही पाता है ।

लष्टद त नाम भी प्रथमवर्ग एव दूसरे वर्ग यों दोनों में आया है । प्रथम वर्ग में सातमा अध्ययन लष्टद त का है जिसने १२ वर्ष दीक्षापर्याय का पालन किया था । दूसरे वर्ग के लष्टद त ने १६ वर्ष दीक्षा का पालन किया था । प्रथम वर्ग का लष्टद त चौथे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है और दूसरे वर्ग का लष्टद त दूसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है । दोनों लष्टद त श्रेणिक के पुत्र थे । इस नाम साम्यता से भी दोनों की माता धारिणी भिन्न-भिन्न थी, यह स्पष्ट होता है । क्यों कि एक ही माता-पिता की स तान के एक समान नाम नहीं दिये जाते हक्त । अ तगड़सूत्र में भी इसी प्रकार के विषय का स्पष्टीकरण किया गया है । देखे- इसी पुस्तक में पृष्ट ६९-७० पर ।

वेहल्ल नाम पहले और तीसरे दो वर्गों में आया है । पहले वर्ग का वेहल्ल श्रेणिक और चेलना राणी का पुत्र है । इसकी **दीक्षा पर्याय १२ वर्ष** की है एव यह तीसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है । जब कि तीसरे वर्ग के वेहल्ल के माता पिता का नाम स्पष्ट नहीं मिलता है । राजगृहीनगर का कथन है एव **६ महीने की दीक्षापर्याय** से सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाने का कथन है । अतः ये दोनों **वेहल्ल** भी अलग-अलग है । स क्षेप में- प्रथम वर्ग का वेहल्ल श्रेणिक राजा और चेलना राणी का पुत्र होना सूत्र पाठ से स्पष्ट है तथा तीसरे वर्ग के वेहल्ल का दीक्षा महोत्सव उसके पिताने किया था, इतना ही सूचन मूलपाठ में है कि तु माता-पिता के नाम का कोई स्पष्टीकरण पाठ में नहीं है ।

समझना यह है कि सरीखे नाम एव स क्षिप्त पाठों के वर्णन में अनुमान से कुछ भी कल्पित करके उसकी पर परा चला देने एव उसे ही

आग्रह युक्त धारणा बना देने से उलझन युक्त तत्त्व खड़े रहते हक्त । तथा अलग-अलग वर्गों के व्यक्तिओं के माता-पिता दोनों को एक कर देने से भी नामों स ब धी उलझने खड़ी रहती है । इसलिये जितना स्पष्ट वर्णन मिलता है उतना ही कथन करने से तथा अलग वर्ग के व्यक्तिओं के माता-पिता दोनों को एक नहीं कर देने से अर्थात् माता को अलग और सरीखे नाम वाली मान लेने से उलझन वाले प्रश्न खड़े नहीं रहते हक्त ।अ तगड़ सूत्र और इस अनुत्तरोपपातिक सूत्र में इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि अलग वर्ग के वर्णित व्यक्तियों को सगे भाई या एक माता-पिता की स तान मानने की भूल कभी नहीं करनी चाहिये ।

प्रश्न-४ : तीनों वर्गों के ३३ अध्ययनों में आये साधको के नाम परिचय आदि स क्षिप्त में किस प्रकार है ?

उत्तर- तीनों वर्गो के साधको को, वर्ग के विभाजन से स क्षेप में तालिका द्वारा दर्शाया जाता है, यथा-

प्रथम वर्ग के १० साधक :-

क्रम	नाम	पिता	माता	दीक्षा	अनुत्तरविमान
१	जालिकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	१-विजय
२	मयालि	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	२-वैजय त
३	उपजालि	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	३-जय त
४	पुरिषसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	४-अपराजित
५	वारिसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
६	दीर्घद त	श्रेणिक	धारिणी	१२ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
७	लष्टद त	श्रेणिक	धारिणी	१२ वर्ष	४-अपराजित
८	वेहल्लकुमार	श्रेणिक	चेलना	१२ वर्ष	३-जय त
९	वेहायस	श्रेणिक	चेलना	५ वर्ष	२-वैजय त
१०	अभयकुमार	श्रेणिक	न दा	५ वर्ष	१-विजय

विशेष- (१) ये सभी राजगृही में भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षित हुए । (२) सभी ने विपुल पर्वत पर एक महीने के स थारा की आराधना की । (३) ग्यारह अ गशास्त्रों का अध्ययन और गुणरत्न स वत्सर विशिष्ट तप सभी का समान था ।

दूसरे वर्ग के १३ साधक :-

क्रम	नाम	पिता	माता	दीक्षा	अनुत्तरविमान
१	दीर्घसेनकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	१-विजय
२	महासेनकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	१-विजय
३	लष्टद तकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	२-वैजय त
४	गूढ़द तकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	२-वैजय त
५	शुद्धद तकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१२ वर्ष	३-जय त
६	हल्लकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	३-जय त
७	द्रुमकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	४-अपराजित
८	द्रुमसेनकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	४-अपराजित
९	महाद्रुमसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
१०	सि हकुमार	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
११	सि हसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
१२	महासि हसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध
१३	पुण्यसेन	श्रेणिक	धारिणी	१६ वर्ष	५-सर्वार्थसिद्ध

तीसरे वर्ग के १० साधक :-

क्रम	नाम	पिता	माता	नगरी	दीक्षा	अनुत्तरविमान
१	धन्य	-	भद्रा	काक दी	९मास	सर्वार्थसिद्ध
२	सुनक्षत्र	-	भद्रा	काक दी	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
३	ऋषिदास	-	भद्रा	राजगृह	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
४	पेल्लक	-	भद्रा	राजगृही	अनेक वर्ष	सर्वार्थसिद्ध
५	रामपुत्र	-	भद्रा	साकेत	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
६	च द्रिम	-	भद्रा	साकेत	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
७	पृष्टिम	-	भद्रा	वाणिज्यग्राम	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
८	पेढ़ालपुत्र	-	भद्रा	वा.ग्राम	अनेकवर्ष	सर्वार्थसिद्ध
९	पोट्टिल	-	भद्रा	हस्तिनापुर	अनेक वर्ष	सर्वार्थसिद्ध
१०	वेहल्ल	-	भद्रा	राजगृही	छमास	सर्वार्थसिद्ध

पहले दूसरे वर्ग के तेवीस कुमारों का आठ-आठ राजकन्याओं के साथ पाणि-ग्रहण हुआ था। विशेष तप, अध्ययन, स थारा का वर्णन जालिकुमार के समान है। **तीसरे वर्ग में** वर्णित धन्यकुमार आदि दसों का ३२ श्रेष्ठि कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था। पिता मौजूद नहीं होने से ९ का दीक्षामहोत्सव उनके राजाने किया था। दसवें वेहल्ल कुमार का दीक्षा महोत्सव उसके पिता ने किया। दसों ने आजीवन बेले-बेले का तप एव पारणे में आय बिल किया तथा ११ अ ग का अध्ययन, विपुल पर्वत पर एक महीने का स थारा किया।

प्रश्न-५ : धन्ना आदि अणगारों ने पारणे में आय बिल कैसे किया था ?

उत्तर- इस तीसरे वर्ग के सभी अणगारों का तप वर्णन एक समान है। सभी ने आजीवन बेले-बेले पारणा करने का नियम दीक्षा के दिन ही भगवान से विनयपूर्वक ग्रहण किया था। साथ ही में पारणे स ब धी विशेष अभिग्रह किया था कि- (१) बर्तन चम्मच या हाथ आदि खाद्यपदार्थ के लेप वाले होंगे तो उसी से भिक्षा लेउँगा। निर्लेप हाथ चम्मच या बर्तन से लेकर देने वाले से भिक्षा नहीं लूँगा। (२) खाद्यपदार्थ भी **उज्झितधर्मा** अर्थात् गृहस्थ के बचा-खुचा फेंकने योग्य, ऐसा मिलेगा तो लूँगा; सु दर, मनोज्ञ, गृहस्थों के खाने के काम में आने वाला होगा वह नहीं लूँगा। फेंकने योग्य भी आहार गृहस्थ के देने पर लूँगा। इस प्रकार का अभिग्रह प्रत्याख्यान जीवन भर के लिये कर लिया था। अभिग्रह में स्वतः मिलने पर ही लिया जाता है। उसमें मा गा भी नहीं जाता है और गृहस्थ को कुछ भी कहे बिना वह स्वतः स्वेच्छा से वैसा आहार देवे तो लिया जाता है। अन्यथा सहज ही, आगे चल दिया जाता है।

इस प्रकार का उज्झित धर्मा आहार और पानी बहुत घूमने पर भी स्वतः स्वाभाविक मिलना और गृहस्थ द्वारा देना अत्य त मुश्किल होता है। अतः उन्हें पारणे में भी कभी कहीं आहार मिलता तो पानी नहीं मिलता। कभी पानी मिल जाता तो आहार नहीं मिलता। वे मुनि सहज समभाव से मर्यादित समय एव मर्यादित घरों में भिक्षार्थ पर्यटन करके वापिस आ जाते। जो भी मिला या नहीं मिला उसी में पूर्ण स तुष्ट रहकर तपस्या के भावों में और कर्म क्षय करने की मस्ती में शरीर से निरपेक्ष निर्मोह होकर स यम जीवन का निर्वाह करते थे।

अपने समय के भगवान के समस्त श्रमणों में ये मुनि त्याग-तप, वैराग्य, कर्मक्षय की मस्ती आदि गुणों के कारण सर्वश्रेष्ठ करणी करने

वाले स त थे । ऐसा स्वय प्रभु महावीर ने श्रेणिक राजा के पूछने पर उत्तर में फरमाया था कि हे श्रेणिक ! मेरे १४ हजार श्रमणो में अभी (महान दुष्कर क्रिया और महान निर्जरा करने वाले) सर्वश्रेष्ठ सर्वाधिक करणी वाले अमुक अणगार हक्त । अर्थात् अलग-अलग समय में इन दसों स तों का भगवान ने नाम लेकर उक्त कथन किया था ।

इस अध्ययन के सभी मुनियों ने बेले-बेले तप और आय बिल युक्त पारणा किया था और एक महीने के स थारे की विपुलपर्वत पर आराधना की थी । विपुलपर्वत राजगृही नगरी के समीप में था । आज भी वहीं है ।

प्रश्न-६ : धन्ना अणगार आदि के तपोमय शरीर के अ गोपाँगों की उपमाएँ किस प्रकार दी गई है ?

उत्तर- तपोमय शरीर का वर्णन अनेक सूत्रों में अनेक तपस्वी साधकों के प्रस ग से आलेखित हुआ है । तथापि धन्ना अणगार का वर्णन इस शास्त्र में जो आलेखित हुआ है वह अत्य त विशेषता भरा है । वह विशेषता यह है कि धन्ना अणगार के प्रत्येक अ गोपा ग का हूबहू उपमाओं से उपमित करते हुए खुलासावार वर्णन किया गया है । अन्यत्र सभी के तपोमय शरीर का सामान्य रूप से एकाद उपमा युक्त वर्णन है । यह वर्णन मुख्यतः इस प्रकार है- (१) भगवती सूत्र में **स्क धक** सन्यासी का (२) उपासकदशा सूत्र में **आन द** आदि का (३) अ तगड़ सूत्र में **काली** आदि का वगैरह विविध आगम वर्णन यथाप्रस ग उपलब्ध है, जो इस प्रकार है-

काली आर्या के या स्क धक अणगार के अथवा आन द श्रावक के उस(उदार) महान, विपुल(दीर्घकालीन विस्तीर्ण शोभा स पन्न) प्रयत्न साध्य (गुरु प्रदत्त),बहुमानपूर्वक ग्रहित, कल्याणकारी, आरोग्यजनक-शिव, धन्य रूप,म गल-पाप विनाशक, श्री स पन्न, तीव्र, उदार, उत्तम और महाप्रभावक उत्कृष्ट तपस्या के कारण उनका शरीर सूख गया, रूक्ष हो गया, मा स-खून रहित हो गया, हड्डिओं पर शीर्फ चमड़ी रह गई, जिससे हड्डियाँ बोलने लगी, आवाज करने लगी, शरीर कृश हो गया, नसें सामने दिखने लगी । जिस तरह सूखे लकड़े, सूखे पत्ते या सूखे कोयलों से भरी गाड़ी में चलते समय, रूकते समय जैसी आवाज आती है उस तरह उन तपस्वीओं के शरीर की हड्डिया , चलते समय, खड़े रहते समय आवाज करने लगी । वे अपने आत्मबल से ही चलते, उठते, बैठते थे, इतनी दुर्बलता आ गई थी कि बोलते समय भी थकान लगती, बोलने के पहले भी मक्त भाषा बोलूँ, ऐसा विचार

करने मात्र से भी खेद होता था । तो भी वे तपस्वी तपोपूत-तप से पुष्ट शरीर वाले थे । मा स, खून की अपेक्षा वे शुष्क शरीर वाले थे तो भी राख से ढ़की अग्नि के समान वे तपतेज, तपशोभा से अत्य त सुशोभित हो रहे थे ।

प्रस्तुत सूत्रगत धन्ना अणगार का उपमा युक्त विशेष वर्णन :-

ऊपरोक्त तीन सूत्रों में आये हुए पाठ के अतिरिक्त धन्ना अणगार के वर्णन में उपमा युक्त अ गोपा गो के वर्णन का सार इस प्रकार है-

(१) पाँव- वृक्ष की सूखी छाल, खड़ाउ, पुरानी पगरखी समान ।

(२) पाँव की अ गुलिया- धूप में सुखाई हुई चना, मूँग और उड़द की फली के समान ।

(३) ज घा(पिंड़ी)- कौआ, क क, ढ़णिक पक्षी की ज घा के समान ।

(४) घुटने- काली(कोयल)पर्व, मयूरपर्व, ढ़णिकपर्व(स धि)समान ।

(५) उरु(साथल)- धूप में सूखी मूरझाई हुई बोर, शल्यकी, शाल्मलि की कोंपल समान ।

(६) कमर- ऊँट, वृद्ध बैल, वृद्ध भेंस के पाँव के समान

(७) उदर(पेट)- सूखी हुई मशक, चणा सेकने की कम ऊँड़ी चपटी कड़ाही, कठोतरी के समान ।

(८) पसलियाँ- तासलियों की, हाथ के प जों की और खूँटियों की प क्ति समान ।

(९) पीठ- मुकुट के किनारे, गोल चपटे पत्थर और लाख के गोले की प क्ति समान

(१०) वक्षःस्थल- छबड़ी का तला, वाँस-खपच्चिओं का प खा, ताड़पत्र का प खा समान

(११)भुजा- शमी की, व्हाया की(गरमाला)और आगस्तिक वृक्ष की सा गरी के समान

(१२) हाथ(हथेली)- सूखा छाणा, वड़ का और पलाश का सूखा पत्ता समान

(१३) हाथ की अ गुलियाँ- धूप में सूखाई हुई चना, मूँग और उड़द की फली के समान

(१४) गरदन- छोटे घड़े की ग्रीवा, लोटे की ग्रीवा, सुराही की ग्रीवा समान,

(१५) हिचकी– सूका तु बा फल, हिंगोटा का फल, आम की सूखी गोटली समान

(१६) होठ– सूखी जलों, श्लेश(राल)गोली,अलता की गोली के समान

(१७) जीभ– वड़ के, पलाश के और साग वृक्ष के पत्तों के समान

(१८) नाक– धूप में सूखाये आम्र,आ वला, बीजोरा फल की फाँके(ल बे टुकड़े) समान

(१९) आँख– वीणा या बाँसुरी के छिद्र तथा प्रभात के निस्तेज तारे समान

(२०) कान– मूला, काकड़ी, करेला की कटी हुई पतली-ल बी छाल समान

(२१) मस्तक– सूखा-कच्चा तू बा, आलु, तरबूच के समान

विशेष :- (१) ये सभी चीजें सूखी और मुरझाई हुई समझना । (२) अस्थि रहित अ ग–पेट,कान,जीभ और होठ में हड्डी का कथन नहीं करना । (३) **गात्रयष्टी**(पूर्ण शरीर)– इस तरह खून, मा स रहित सूखा, भूखा–भूख के कारण निर्बल और कृश होने से रूक्ष पाँव वगैरह दिखते थे । कमर करोड़रज्जू और पेट चिपके हुए होने से पाँसलिया दिखती थी । रूद्राक्ष की माला की मणियें गिन सके वैसी करोड़रज्जू की स धियें थी । ग गा तर गों के समान हाड़का दिखने वाला वक्षःस्थल, ल बे साँप समान भुजाएँ ढ़ीली लगाम समान लटकते अग्रहस्त, काँपता मस्तक, ग्लान मुखकमल, फूटे मुख वाले घड़े के समान आँखे ऊँड़ी गई हुई ऊँड़ी कुप्पी के समान दिखती थी ।

दीर्घ तप से इस प्रकार क्षीण शरीर के कारण वे धन्य अणगार शरीर बल से नहीं, आत्मबल से चलते, खड़े रहते, बैठते-उठते थे । बोलने में और बोलने का विचार करते समय भी उन्हें कष्टानुभव होता था । चलते समय उनका शरीर कोयलों से भरी चलती गाड़ी के समान खड़-खड़ आवाज करता था । तो भी तपतेज से देदिप्यमान और तप लक्ष्मी से सुशोभित उनका शरीर अत्य त प्रभावित आकर्षक लगता था ।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में शास्त्रकार ने तपस्या द्वारा शरीर पर होने वाला परिणाम विस्तार पूर्वक साहित्यिक भाषा में दर्शाया है । जिसका आशय तपस्या और तपस्वी के प्रति अहोभाव उत्पन्न करके मोक्षार्थी साधकों में

तपस्या के स स्कारों को पुष्ट करने का है । प्रत्येक मोक्षाभिलाषी साधक शरीर के प्रति इस प्रकार मोहत्याग करके, कष्ट सहिष्णु बनकर, आचारा ग कथित–**आवीलए, पवीलए, निप्पीलए** सिद्धा त के अनुसार साधना करके मानव तन की प्राप्ति को पूर्ण सार्थक करे ।

अ तगड़ सूत्र में सभी (९०) मोक्षाराधकों का, उपासक दशा सूत्र में सभी (१०) श्रमणोपासक पर्याय के आराधकों का एव इस शास्त्र में सभी (३३) अणुत्तर विमान योग्य आराधना करने वाले साधकों का जीवन गु थन कर शास्त्रकारों ने कथा साहित्य के द्वारा भव्य जीवों पर परम उपकार किया है जिसकी प्राप्ति का हमें अत्य त अहोभाव रखकर अपने जीवन को किसी भी उत्तम और उत्कृष्ट आराधनामय बनाकर अलभ्य–शुभस योग मानव भव और वीतराग धर्म का अनुपम सदुपयोग कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–७ : इस सूत्र में विशिष्ट गूढ़ार्थ भरे शब्द कौन-कौन से प्रयुक्त हुए हक्त ?

उत्तर– विशिष्ट शब्द– (१) श्लेष गुटिका=चिपकाने का पदार्थ (२) चाउर त= चारों दिशाओं में भरतक्षेत्र के अ त तक । (३) छट्ठ –छट्ठेण = निर तर बेले के तप का पर्यायनाम (४) आय बिल= स पूर्ण रसों का त्याग रूप तप । एक लूखा पदार्थ पानी से खाना (५) स सृष्ट= खाद्यपदार्थ से खरड़े, भरे हाथ वगैरह (६) **उज्झितधर्मा**=मात्र फेंकने के योग्य, घर में अनुपयोगी खाद्यपदार्थ (७) उच्च, निम्न, मध्यम कुल=स पत्ति की अपेक्षा सामान्य, मध्यम, धनाढ्य वर्ग (८) **बिलमिवपनगभूएण** =स्वाद की आसक्ति बिना खाना (९) **सामाइयमाइयाइ** =प्रतिक्रमण सहित ११ अ ग आदि (१०) **उक्कमेण सेसा**=उल्टे क्रम से पुनः सभी तप ।

॥ अनुत्तरोपपातिक सूत्र स पूर्ण ॥

प्रश्नव्याकरण सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : प्रश्नव्याकरण सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– वर्तमान में उपलब्ध ११ अ गसूत्रों में यह दसवाँ अ गसूत्र है । अ गसूत्र होने से इस सूत्र के रचनाकर्ता गणधर प्रभु ही कहे जाते है । इसमें दो विभाग है–आश्रव विभाग और स वर विभाग । दोनों ही विभागों में पाँच-पाँच अध्ययन होने से कुल १० अध्ययनमय यह एक ही श्रुतस्क ध है । उपलब्ध यह सूत्र १२५६ श्लोक परिमाण माना गया है ।

इस सूत्र के प्राचीन व्याख्याकार आचार्य अभयदेवसूरिजी है । उनकी स स्कृत टीका उपलब्ध है । अर्वाचीन व्याख्याएँ इस सूत्र पर स स्कृत, हिंदी, गुजराती में उपलब्ध होती है । लुधियाना, अहमदाबाद, सैलाना, ब्यावर और राजकोट से इस सूत्र पर विस्तृत व्याख्या सहित प्रकाशन हुआ है । आगम भाषा दृष्टि से यह कठिन शास्त्र है तथापि वर्तमान में आचार शास्त्र होने से प्रकाशन युग में इसका प्रचार एव पठन-पाठन विशेष हुआ है । स क्षिप्त सारा श योजना में यह आगम ५५ पृष्ठों में और परिशिष्ट सहित कुल ८० पृष्ठों में लघु पुस्तक रूप में प्रकाशित उपलब्ध है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के इस नामकरण में क्या अपेक्षा रही हुई है ?

उत्तर– इस सूत्र का मौलिक नाम **पण्णा वागरण** है । जिसके दो प्रकार से अर्थ हो सकते है– (१) प्रश्न और व्याकरण अर्थात् प्रश्नोत्तरमय यह शास्त्र है अथवा जिसमें आये अनेक प्रश्नोत्तर प्रसिद्ध है अथवा विद्या प्रयोग के माध्यम से इसमें पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है । (२) पण्णा=प्रज्ञा और व्याकरण=विकास, विस्तार । जिसके अध्ययन से विशिष्ट प्रकार की बुद्धि का विकास होता है, वह शास्त्र प्रश्नव्याकरण है अर्थात् इस शास्त्र में धर्ममय बुद्धि के विकास योग्य भाँति-भाँति के बहुत सारे विषय भरे हुए होने से भी **पण्णावागरण** नामकरण उपयुक्त रहा है । कालान्तर से प्रश्न विद्याओं के कारण **पण्णा** से **पण्हावागरण** बना दिया गया लगता है ।

प्रश्न–३ : वर्तमान में प्राप्त इस सूत्र को गणधर रचित कह सकते है ?

उत्तर– स्थाना ग सूत्र समवाया ग सूत्र और न दी सूत्र में इस शास्त्र का जो

परिचय मिलता है, वह गणधर रचित शास्त्र का है । कि तु तदनुसार इसमें कुछ भी नहीं है । इस शास्त्र में आज जो विषय उपलब्ध है वह ऊपरोक्त तीनों सूत्रों से सम्मत नहीं है । वर्तमान में जो विषय प्राप्त है वह सारा विषय गणधर रचित नहीं कि तु आचार्य रचित है, ऐसा आभास होता है । फिर भी इस स ब ध में कोई भी इतिहास स केत नहीं होने से और यह विषय गणधर रचित दसवें अ ग आगम के नाम से रचा गया होने के कारण श्रुतिपर परा से इसे अ गआगम कहा जाता है, जो अपेक्षा विशेष से "रूढ़ सत्य" (व्यवहार सत्य) में समाविष्ट होता है । अतः हम व्यवहार–भाषा से इसे गणधर रचित कहतेहक्त ।

अनुमान या परिशेष आदि नयों की विचारणा से यह उपलब्ध स्वरूप वाला सूत्र देवर्धिगणी आचार्य के लेखन समय में निर्धारित किया गया या करवाया हुआ है जो सर्व बहुश्रुत सम्मत शास्त्र है और इसका वर्णित विषय तथा प्रत्येक वाक्य समस्त जिनवाणी रूप गणधर रचित अन्य आगमों से सम्मत एव पूर्ण अनुमत है । अतः इस उपलब्ध आगम को इसके विषय स्वरूप से और बहुश्रुत आचार्यों की प्रकृष्ट श्रद्धा से दसवें अ ग आगम के रूप में आज के बुद्धिवादी युगमें भी एक मत से स्वीकारा जा रहा है । तात्पर्य यह है कि श्वे॰ जैन के सभी फिरके अपने मान्य आगमों की स ख्या में इस आगम को इसी रूप में आज भी अ ग आगम में बिना किसी तर्क या हिचकिचाट के मान्य कर रहे हक्त । अन्य चिंतन-विचारणा से यह शास्त्र गणधर रचित ही है, ऐसा भी कहा जा सकता है ।

प्रश्न–४ : गणधर रचित इस आगम का विषय स्वरूप कैसा था ? एव उस समस्त धर्म **प्रज्ञा के विकास वाले विषय का क्या हुआ ? विलुप्त-विस्मृत हो गया या उसे विलुप्त कर दिया गया है ? वे विषय आज किस रूप में उपलब्ध है या नहीं है ?**

उत्तर– गणधर रचित द्वादशा गी के विषय का परिचय व्यवस्थित रूप से **समवाया ग** सूत्र एव **न दी** सूत्र में है । वहाँ क्रम प्राप्त इस सूत्र का भी दसवें अ ग शास्त्र के रूप में विषय परिचय स्पष्ट दिया गया है। **स्थाना ग** सूत्र के दसवें स्थान में इस सूत्र के दस अध्ययन कहे गये है और वहाँ उन अध्ययनों के नाम भी दिये है । उन नामों के आधार मात्र से इस सूत्र के कितने ही विषयों का परिज्ञान होता है ।

इन तीन श्वेता बर जैन सूत्रों के सिवाय दिग बर जैनों के भी दो

ग्र थों में इस सूत्र के विषय का निर्देश मिलता है । (१) जयधवला में (२) तत्त्वार्थवार्तिक में ।

इस प्रकार गणधर रचित प्राचीन प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषय में ऊपरोक्त पाँच आगमों में जो परिचय मिलता है, वह इस प्रकार है–

(१) न दी सूत्र में– प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक सौ आठ प्रश्न है । एक सौ आठ अप्रश्न(प्रश्न बिना के उत्तर) हक्त और १०८ प्रश्नाप्रश्न अर्थात् विविध प्रश्न और तत्स ब धी उत्तर है । जैसे कि– अ गुष्ट प्रश्न, बाहुप्रश्न अद्दाग(दर्पण) प्रश्न । अर्थात् १०८+१०८+१०८=३२४ प्रकार की प्रश्न विद्याएँ हैं । अन्य भी विचित्र सैकड़ों विद्याएँ है । इसके सिवाय नागकुमार और सुवर्णकुमार देवों के साथ हुए मुनियों के दिव्य स वाद भी है । यह विषय निर्देश है । फिर आगे के वर्णन में इस अ ग का आकार बताते हुए कहा है कि यह एक श्रुत स्क ध है अर्थात् इसमें मुख्य बड़े विभाग नहीं है । इसमें ४५ अध्ययन हक्त, ४५ उद्देशनकाल हक्त ४५ समुद्देशन काल हक्त ।

(२) समवाया ग सूत्र में– प्रश्नव्याकरण **दशा** सूत्र में स्वसमय परसमय प्रज्ञापक प्रत्येक बुद्धों के विविधार्थक(अनेकार्थ वाली) भाषा द्वारा कहे गये वचन है । आचार्य भाषित अनेक अतिशय, विद्या, लब्धि वगैरह, ज्ञानादि गुण, उपशम आदि भावों का अनेक प्रकार से विस्तृत वर्णन है । जगत का हित करने वाले वीर महर्षियों के द्वारा कहे गये विविध प्रकार के विस्तृत सुभाषित वचन है । दर्पण, अ गूठा, भुजा, असि, मणि, वस्त्र और सूर्य; इनको आश्रय करके अनेक महाप्रश्न विद्याओं के कथन है । मन से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने वाली विद्या, अधिष्ठायक देव सहाय की मुख्यता से अनेक गुणों को(उत्तरों को) प्रगट करने वाली विद्या, जो खुद के वास्तविक और द्विगुण प्रभावक उत्तरों से जनता को विस्मित करे । इन विद्याओं के चमत्कारों से और सत्य वचन से लोगों के हृदय में दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है कि भूतकाल में जिनशासन में स यमतप के धारक उत्तमज्ञानी तीर्थंकर भगव त हुए हक्त; जिन्होंने दुरधिगम दुरवगाह सर्वज्ञ सम्मत, अबुधजन प्रबोधकारक, प्रत्यक्ष प्रतीति कारक प्रश्नों के अनेक गुण वाले और महान अर्थवाले(जिनप्रणीत) उत्तर इस सूत्र में कहे हक्त ।

यह शास्त्र एक श्रुतस्क ध है(इसमें ४५ अध्ययन हक्त ।) ४५ इसके उद्देशनकाल और ४५ समुद्देशन काल हक्त ।

(३) स्थाना ग सूत्र में– प्रश्नव्याकरण दशा सूत्र के दश अध्ययन है यथा–

(१) उपमा (२) स ख्या (३) ऋषिभाषित (४) आचार्य भाषित (५) महावीर भाषित (६) क्षोमकप्रश्न (७) कोमलप्रश्न (९) आदर्शप्रश्न (९) अ गुष्ठ प्रश्न (१०) बाहुप्रश्न ।

(४) तत्त्वार्थवार्तिक दिग बर ग्र थ में–प्रश्नव्याकरण सूत्र में अनेक आक्षेप और विक्षेप के द्वारा, हेतु और नय के आश्रित प्रश्नों के उत्तर दिये गये हक्त। लौकिक, वेदिक आदि शब्दों के अर्थ का निर्णय किया गया है। **(आक्षेप–** ***विक्षेपेर्हेतुनयाश्रिताना प्रश्नाना व्याकरण प्रश्नव्याकरण । तस्मि ल्लौकिक वेदिकानामर्थाना निर्णयः)***

(५) जयधवला दिगम्बर ग थ में– प्रश्नव्याकरण सूत्र में आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, स वेगिनी और निर्वेदनी, इन चार कथाओं का तथा प्रश्नों के आधार से, नष्ट, मुष्टि, चि ता, लाभ, अलाभ, सुख-दुःख और जीवन-मरण का वर्णन किया गया है । (पण्हावागरणं णाम अ ग अक्खेवणी, विक्खेवणी, स वेगणी, णिवेदणी णामाओ चउव्विह कहाओ । पण्हादो णट्ठ-मुट्ठि-चि ता-लाहालाह-सुहदुक्ख-जीविय-मरणाणि च वण्णेति ।)

विचारणा–निष्कर्ष– इन सभी परिचयों के आधार से यह स्पष्ट हो जाता है कि गणधर रचित प्रश्नव्यारण सूत्र में आकर्षक प्रश्न-उत्तर या प्रश्न विद्या स ब धी निरूपण अवश्य थे । उसी की प्रधानता से इस शास्त्र का नाम प्रश्न-व्याकरण रखा गया है । तथापि मात्र प्रश्न-उत्तर ही थे ऐसा नहीं माना जा सकता । क्यों कि उसमें अन्य अनेक विषय भी बहुत थे । जैसे कि–(१) उपमा स ब धी वर्णन भी था (२) स ख्या स ब धी निरूपण भी था (३) आचार्यभाषित नामक विषय स कलन भी था (४) प्रत्येक बुद्ध ऋषि-महर्षि भाषित प्रकरण भी था एव महावीर भाषित नामक प्रकरण भी था । यह बात स्थाना ग और समवाया ग दोनों सूत्रों से सम्मत और पुष्ट होती है ।

न दी सूत्र अनुसार प्रायः प्रश्न उत्तर वाला विषय ही था, अन्य विषयों का यहाँ कुछ कथन नहीं है । तथापि यहाँ ४५ अध्ययन और ४५ उद्देशन-समुद्देशन काल का कथन हुआ है । अतः ऐसा समझ सकते है कि परिचय के शब्दों में मुख्य रूप से मात्र प्रश्न निरूपक शब्द ही दिये है । अन्य विषयों को गौण किया है और ४५ अध्ययन कहने से उन अन्य विषयों का स कलन भी हो जाता है ।

दिग बर ग्र थ **जयधवला** के अनुसार इस शास्त्र में चार प्रकार की धर्मकथाओं का स कलन था और अ त में कुछ प्रश्न और उत्तर निमित्त

ज्ञान स ब धी तथा मुष्ठि आदि रूप प्रश्नविद्या स ब धी ज्ञान भी था। **जयधवला** का यह कथन कुछ तर्क स गत भी इसलिये है कि छट्ठा सातवाँ आठवाँ नौवाँ अ गसूत्र कथाप्रधान है और ग्यारहवाँ अ ग सूत्र भी कथा प्रधान है तो बीच में यह दसवाँ अ ग भी कथा-उपदेशप्रधान ही रहा होगा। तथापि प्रश्न विद्याओं एव चमत्कार के विषय की आकर्षकता के कारण वह विषय ज्यादा प्रसिद्धि में और चर्चा में रह गया और कथा उपदेश विषय चर्चा में अधिक नहीं आया। तथापि स्थाना ग सूत्र और समवाया ग सूत्र अनुसार इसमें आचार्यों, प्रत्येक बुद्धों, ऋषियों-महर्षियों के और महावीर के उपदेश वचन भी बहुत है और उपदेश विषय विविध कथाओं से परिपूर्ण भी हो सकते हक्त।

इस प्रकार यह शास्त्र छट्ठे से ग्यारहवें अ गशास्त्र के समान कथा उपदेश प्रधान भी था और अति विशाल भी था। कि तु प्रश्न विद्याओं के चमत्कार, दुरुपयोग आदि स भावनाओं के कारण इसमें परिवर्तन आवश्यक समझकर पूर्वाचार्यों ने यथासमय किया होगा।

स भवत: शास्त्र लेखन समय में देवर्धिगणी की प्रमुखता में इस सूत्र के **आयरियभासियाइ** प्रकरण में रहे पाँच आश्रव पाँच स वर के विषय को ज्यों का त्यों रख दिया होगा। प्रश्न विद्याओं स ब धी विषय को लेखित नहीं किया होगा। **प्रत्येक बुद्ध ऋषिभाषित** प्रकरण को ऋषिभाषित शास्त्र के रूप में अलग रख दिया होगा और उसका नाम भी न दीसूत्र में दे दिया गया है। **महावीर भाषित** प्रकरण को उत्तराध्ययन सूत्र रूप में रख दिया गया और पीछे से पर परा में कल्पना द्वारा उसे महावीर स्वामी की अ तिम देशना रूप में किसी ने प्रसिद्ध कर दिया। वास्तव में वह प्रश्नव्यारण का ही विभाग है और उससे मुक्त किया गया है। प्रश्नव्याकरण में **महावीर भासियाइं** अध्ययन के ३६ उद्देशक रूप विभाग होंगे। स्वत त्र शास्त्र हो जाने से वे ३६ अध्ययन रूप में निखरित हुए हैं। जैसे कि **निशीथ अध्ययन** आचारा ग सूत्र का एक अध्ययन था। जब उसे अलग शास्त्र रूप में रख दिया गया या लिख दिया गया तो वह २० अध्ययन या उद्देशक युक्त शास्त्र हो गया है। पूर्व में वह एक अध्ययन ही था। इसी तरह ऋषिभाषित प्रकरण में ४५ विषय विभाग थे जो आज ऋषिभाषित उपलब्धशास्त्र में ४५ अध्ययन के रूप में है।

वर्तमान में- ऊपरोक्त स कलन के अनुसार एव इतिहास वेत्ता पूज्य पुण्य-विजयजी म०सा० आदि चि तकों के अनुसार आज यह प्रश्नव्याकरण सूत्र

विभिन्न रूप में उपलब्ध है, यथा- **(१)** ऋषिभाषित कालिक आगम, न दी में जिसका नाम है। **(२)** उत्तराध्ययन सूत्र कालिक आगम। ये दोनों सूत्र कालिक सूत्रों की सूचि में है और इन दोनों के कर्ता का नाम आजतक भी नहीं मिला है। इसी से भी ये प्रश्नव्याकरण कालिक सूत्र के ही विभाग है यह मानना दोष रहित होता है। **(३)** वर्तमान का ५ आश्रव ५ स वर विषय भी इसी प्रश्नव्याकरण सूत्र में आचार्यभाषित प्रकरण रूप में था, वही रख दिया गया होने से वह प्रश्नव्याकरण सूत्र छोटे रूप में हो गया है, ऐसा स्वीकारना उपयुक्त होता है। इसी बात को **आचार्य तुलसी** ने भी लाडनूँ से प्रकाशित प्रश्नव्याकरण सूत्र मूलपाठ की **भूमिका** मेंस भावना रूप से स्वीकार किया है। **(४)** अवशेष प्रश्नविद्या आदि का विषय मौखिक रूप में कुछ समय शिष्य प्रशिष्यों में चलते रहे होंगे। कालान्तर से किसी ने जयपाहुड़ नामक व्याख्या ग्र थ की रचना करके उसमें उन विद्याओं के अ श का समावेश किया। वह ग्र थ भी हस्तलिखित रूप में अहमदाबाद की एल.डी. इन्स्टीटयूट में सुरक्षित है एव प्रकाशित भी हुआ है।

इस प्रकार प्राचीन गणधर रचित इस प्रश्नव्याकरण आगम के आज चार प्रारूप उपलब्ध है- (१) प्रश्नव्यारण सूत्र आश्रव स वरमय वर्णन वाला। (२) ऋषिभाषित सूत्र। यह भी प्रकाशित अर्थ सहित उपलब्ध है (३) उत्तराध्ययन सूत्र। (४) जयपाहुड़-प्रश्नव्याकरण।

प्रश्न-५ : जयपाहुड़ के स ब ध में विशेष स्पष्टीकरण क्या है ?

उत्तर- देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के समय शास्त्र लेखन में प्रश्नविद्याओं को लिपिबद्ध नहीं किया गया था। तो भी क ठस्थ ज्ञान रूप में जिन्हें भी स्मृति में था, वह पर परा में कुछ कुछ चलता ही रहा है उसे भुलाया तो नहीं जा सकता। तथा कोई कोई गुरु अपने किसी न किसी शिष्य को स क्षिप्त विस्तृत किसी न किसी रूप में देते रहे हो यह भी अस भव नहीं, स भव है। अत: कालान्तर से किसी ने अवशेष उस विषय को लिपिबद्ध भी अपने पास किया होगा। जो स्वत त्र ग्र थ रूप में लिपिबद्ध होते होते पर परा से श्रमणों के पास और फिर भ ड़ारों में सुरक्षित रहा होगा।

इसी के फल स्वरूप ग्र थ भ ड़ारों में उसकी प्रतियाँ उपलब्ध होती है। जेसलमेर के खरतर गच्छ के आचार्य शाखा के भ ड़ार में **जयपाहुड़ प्रश्नव्याकरण** नामक ग्र थ की एक ताड़पत्रीय प्रति थी जो स वत १३३६ की चेत्र वदी एकम की लिखी हुई थी। मुनि श्री जिनविजयजी ने उसे

स शोधित-स पादित कर स वत २०१५ में सि घी जैन ग्र थमाला के ग्र था क ४३ के रूप में प्रकाशित करवाया । उसकी प्रस्तावना में उन्होंने यह भावा श लिखे हक्त– "प्रस्तुत ग्र थ अज्ञात तत्त्व और भावि का ज्ञान प्राप्त करने कराने का विशेष रहस्यमय शास्त्र हक्त । यह शास्त्र जिस मनीषी या विद्वान को अच्छी तरह से अवगत हो, तो वह उसके आधार से किसी भी प्रश्नकर्ता के लाभ-अलाभ, शुभ-अशुभ, सुख-दु:ख एव जीवन-मरण आदि की बातों के स ब ध में बहुत निश्चित एव तथ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।"

मूल ग्र थकार ने तो इस ग्र थ का नाम **जय पाहुड़** दिया है और अ त में उन्होंने **प्रश्नव्याकरणं समाप्तम्** लिखा है । व्याख्याकार ने प्रार भ में इस तरह लिखा है– ***महावीराख्य सिरसा प्रणम्य प्रश्नव्याकरण शास्त्र व्याख्यामि*** । व्याख्या के अ त में लिखा है– ***इति जिनेन्द्र कथित प्रश्न चूड़ामणि सार शास्त्र समाप्तम् ॥***

जिनरत्न कोश के पृष्ठ १३३ में भी इस नाम वाली प्रति का उल्लेख है । तथा वहाँ यह भी सूचित किया है कि ख भात के शा तिनाथ भ ड़ार में इस (जयपाहुड़ प्रश्नव्याकरण) शास्त्र की कई प्रतिया है । ***(जिनरत्न कोश= प्राचीन ग्र थ भ ड़ारों के पुस्तकों की सूची का प्रकाशित ग्र थ)***

इन सब उल्लेखों एव विचारणाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन प्रश्नव्याकरण शास्त्र भिन्न-भिन्न विभागों में ब ट गया और पृथक-पृथक नाम वाले चार ग्र थ(शास्त्र)बन गये । आज का उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र भी उसी में का ही एक विभाग है ।

एक विचारणा के अनुसार प्रार भ में यह शास्त्र सभी स त सतियों के अध्ययन वाला होने से ज्ञातासूत्र से लेकर विपाकसूत्र तक सभी कथा शास्त्र ही होने से यह शास्त्र भी धर्म बुद्धि-प्रज्ञा का विकास-विस्तार करने वाली विविध कथाओं का भ ड़ार ही रहा होगा । वीर निर्वाण के कुछ शताब्दि बाद जब विद्या चमत्कार का युग या बोलबाला आया होगा तब पूर्वज्ञानी किसी बहुश्रुत ने **पण्णावागरण** नाम साम्यता रूप में कुछ प्रश्न विद्याओं के विषय को अ त में रखा होगा । जो कभी महत्त्वशील लगने से पीछे से आगे आया होगा और फिर लिपिबद्ध करने के समय अनावश्यक लगने से सर्व सम्मति से उसको लेखन में नहीं रखा होगा । तथा दस अध्ययनों वाले शास्त्रों के बीच होने से इसे भी **प्रश्नव्याकरणदशा** नामकरण करने हेतु मात्र दस अध्ययन रूप आचार्यभाषित दस विभाग वाला **आश्रव-सवर**

का विषय रखकर उपदेशी विषय वाले उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित को अलग करके न दीसूत्र में उनका स्वत त्र नाम भी दे दिया गया । लेखन युग होते हुए भी इन सब निर्णयों का इतिहास लेखन वातावरण नहीं होने से इस परिवर्तन का कुछ भी लिखित स केत नहीं किया गया । इतिहास सबधी प्राप्त सभी स भावनाएँ बहुत बाद के इतिहास युग की कल्पनाएँ है, जो प्राप्त सामग्री के आधार पर बुद्धि से की गई है । उसकी सत्यता समझ में आना वह तो पाठकों की अपनी-अपनी बुद्धि और अनुभव तथा ग्रहणशक्ति के ऊपर आधारित है ।

प्रश्न–६ : उत्तराध्ययन सूत्र तो भगवान महावीर की अ तिम देशना है उसे प्रश्नव्याकरण का विभाग क्यों कहा ?

उत्तर– भगवान ने अ तिम आराधना रूप स थारे के समय सुखविपाक और दु:खविपाक के ५५–५५ अध्ययन फरमाये थे ऐसा उल्लेख समवाया ग सूत्र के ५५वें समवाय में उपलब्ध है । कि तु ३६वें समवाय में उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन भगवान ने मोक्ष जाते हुए अ तिम स थारे के समय फरमाने का कथन वाला पाठ भी नहीं है । तथा आचारा ग-सूयगड़ा ग सूत्र में जहाँ भगवान की साधना स ब धी वर्णन है वहाँ भी यह उत्तराध्ययन फरमाने की बात नहीं है और हमारे ३२ आगम के मूलपाठ में कहीं भी वैसी बात नहीं है । कि तु प्रश्नव्याकरण सूत्र के अध्ययनों के दस नामों में स्थाना ग सूत्र में **महावीर भासियाइ** नामक अध्ययन का स्पष्ट कथन है ।

यदि महावीर स्वामी ने अ तिम देशना में अर्थ रूप में फरमाया हो तो उसका सूत्र रूप में गु थन तो गणधर ही करेंगे । क्यों कि उस समय दो गणधर मौजूद थे । गणधरों की मौजूदगी में अन्य किसी को सूत्र गु थन का प्रस ग उपस्थित कैसे होगा ? और उत्तराध्ययन के लिये आज तक किसी ने गणधर रचित कहा लिखा भी नहीं है और अन्य किस साधु ने सूत्र रूप में रचा है यह भी नाम नहीं मिलता है ।

जब कि प्रश्नव्याकरण में **महावीर भासियाइ** के नाम से अध्याय होना स्थाना ग सूत्र से स्पष्ट है । आज वह अध्याय है नहीं तो परिशेष न्याय से वह अध्याय उत्तराध्ययन रूप ही है, ऐसा मानने में कोई बाधा क्यों होती है ? जब कि न दी सूत्र में उसे कालिक सूत्र कहा गया है । देवर्द्धिगणि के लेखन समय में उसे अ गसूत्र से उद्धृत करके(निशीथ के समान) रख दिया गया है । अत: उसे अ ग आगम रूप में नहीं बताकर

अ ग बाह्य कालिक आगम में बताया है क्यों कि अ ग आगम से उसका निर्यूहण कर दिया गया है ।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी के व्यवहार सूत्र में अनेक सूत्रों के वाचना-अध्ययन स ब ध की कथन है, यदि उत्तराध्ययन सूत्र भगवान के निर्वाण समय में बन गया होता तो उसका नाम आचार्य भद्रबाहु स्वामी शास्त्र के अध्ययन में क्यों छोड़ते अर्थात् सबसे पहले उसे ही देना चाहिये था पर तु ऐसा है नहीं । यह उत्तराध्ययन सूत्र का रूप भद्रबाहु स्वामी के पहले होने का कोई आधार उपलब्ध होता भी नहीं है । इतिहास पर परा में तो बिना आधार के कल्पना मात्र से किसी ने अ तिम देशना रूप चला दिया । कि तु उसका मौलिक अता-पता कुछ भी नहीं कि किसने सूत्र रूप में गू था । कल्प सूत्र में इस विषय का कथन हो तो वह शास्त्र रूप में १३वीं १४वीं शताब्दि के पहले अस्तित्व में था नहीं, यह बात स्पष्ट की जा चुकी है क्यों कि तब तक उस पर किसी भी व्याख्याकार ने कलम नहीं चलाई है और उसमें कई बिना सुमेल की बातें भी है । इसीलिये ३२ आगम में उसे अपने पूर्वाचार्यों ने गिना भी नहीं है ।

इसलिये प्रश्नव्याकरण के अवशिष्ट ४ रूपों में से ही एक रूप उत्तराध्ययन सूत्र है जो गणधर रचित आगम से आचार्यों द्वारा उद्धृत होने से कालिक भी है । ऐसा मानने में उत्तराध्ययन सूत्र का कुछ भी सम्मान नहीं घटता है और इसे महावीर भाषित कहा जाने में कोई बाधा भी नहीं है । क्यों कि वह उसी नाम के अध्ययन रूप में था जैसे कि निशीथ अध्ययन से निशीथ सूत्र कहलाया, वैसे यह भी महावीर भाषित सूत्र कहा जा सकता है कि तु पूर्वाचार्यो ने उचित समझकर इसका नया नामकरण उत्तराध्ययन सूत्र रूप कर दिया है तो वह नाम भी श्रेष्ठ अध्ययनों का स कलन रूप होने से सार्थक ही है ।

प्रश्न-७ : ऋषिभाषित सूत्र यदि प्रश्नव्याकरण का अ ग है तो उसे ३२ सूत्र में या ४५ सूत्र में क्यों नहीं माना जा रहा है ?

उत्तर- आज के उपलब्ध ऋषिभाषित में ४५ अध्ययन है जो प्रश्नव्याकरण का प्रथम विभाग रहा होगा उसी कारण से सूत्रों में प्रश्नव्याकरण के ४५ अध्ययन ४५ उद्देशन-समुद्देशन काल कहे गये हक्त । वे प्रमुख और प्रार भ के विभाग की अपेक्षा हो सकते हक्त । अतः ऋषिमहर्षि या प्रत्येकबुद्ध भाषित नामक ४५ अध्ययनों का स ग्रह रूप यह ऋषिभाषित सूत्र है । उसमें त्याग-

वैराग्य, तत्त्वज्ञान, सदुपदेश के सिवाय अन्य कोई भी विषय नहीं है । कि तु जब प्रश्नव्याकरण सूत्र ४ विभागों में विभक्त हो गया तब एक तो प्रश्नव्याकरण रूप में आश्रव-स वरमय प्रचलित रहा । दूसरा उपदेशी श्रेष्ठ अध्ययन रूप में उत्तराध्ययन सूत्र भी क ठस्थ पर परा में प्रचलित रहा ।

तीसरा यह ऋषिभाषित विभाग क ठस्थ पर परा से छूट कर लेखन मात्र में रह गया । जिससे लेखन काल में इसमें **त ध** अर्थात् तकार धकारमय रूप क्लिष्ट उच्चारण वाला बनता गया और उसका उच्चारण उत्तराध्ययन जैसा मृदु-लघु रहा नही । जिससे वह न दीसूत्र की आगम सूचि रूप और हस्तप्रत रूपों में ही विशेष रूप से भ ड़ारों में रहा । क ठस्थ पर परा से प्रायः छूट गया होने से प्रसिद्धि में परिचय में नहीं रहा । इस कारण स्थानकवासी श्रमण पर परा में क ठस्थ न होने से और लोकाशाह के समय वह अप्रसिद्ध आगमप्रत प्राप्त न होने से ३२ की उपलब्ध स ख्या में नहीं स्वीकारा गया ।

श्वेता बर मूर्तिपूजक समुदाय में जब ४५ आगम की स ख्या कायम की गई । तब कितने ही समय तक ऋषिभाषित आगम को ४५ की स ख्या में कालिक सूत्र होने से और उपलब्ध होने से स्वीकारा जाता रहा है । कि तु बाद के आचार्यों द्वारा १० प्रकीर्णकों के गिनने के आग्रह में और छोटे-छोटे आगम को गिनने की रूचि से इस बड़े आगम को ४५ में गिनना छोड़ा जाने लगा है । जिससे वर्तमान में उनकी ४५ की गिनती में यह आगम भले नहीं गिनते पर तु मुनिश्री पुण्य विजयजी ने पुराने आचार्य के ग्र थ में जो ४५ आगम की गिनती उन आचार्य के नाम से दर्शाई है, उसमें ऋषिभाषित सूत्र का ४५ में स्पष्ट उल्लेख है । उस गिनती में के १-२ और भी आगमों को वर्तमान के मूर्तिपूजक लोगों ने गिनना छोड़ दिया है । उन्हें छोड़कर दूसरे गिन लेने का कोई कारण नहीं दिखता है ।

इस प्रकार अपनी ही पूर्व पर परा में गिने जाने वाले आगम को उन्होंने मनमाने छोड़ना और दूसरे गिन लेने का रवैया रखा है । इसलिये कई उनके विद्वान स त लिखते हक्त कि ४५ आगम का एक सही निश्चित रूप कह पाने के लिये कोई ठोस आधार नहीं मिल पाता है । इस तरह स ख्या में ४५ कहने में अनेक मतमता तर मिलते आ रहे हक्त, ऐसा मूर्तिपूजक स्वय स्वीकारते हक्त । सार यह है कि यह ऋषिभाषित सूत्र एक समय ४५ आगमों में गिना जाता रहा है और न दी की कालिक सूत्र सूची में इसका

नाम है और इसके अन्य कोई रचनाकार का नाम नहीं मिलता है । इससे भी प्रश्नव्याकरण के ४ रूपों से एक विभाग रूप में इसे मान्य करने में कोई भी अयोग्य होने जैसा या विरोधजनक कुछ भी नहीं होता है । बल्कि वह स्वय आगम पाठ से आधारित होता है । आचार्य उमास्वाति के तत्त्वार्थ सूत्र में तथा जयधवला दिगम्बर ग्र थ में भी उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित दोनों का नाम एक साथ मिलता है । जिससे जयधवला के कर्ता वीरसेन आचार्य और उमास्वाति आचार्य के समक्ष ये दोनों शास्त्र होना स भव है ।

तेराप थी आचार्यश्री तुलसी के उद्धृत वाक्य– "उक्त आगम ग्र थों में प्रस्तुत (प्रश्नव्याकरण) सूत्र का जो विषय वर्णित है वह आज उपलब्ध नहीं है । आज जो उपलब्ध है उसमें पाँच आश्रव और पाँच स वर का वर्णन है, जिसका **न दी में** कोई उल्लेख नहीं है । स्थाना ग-समवाया ग में आचार्य भाषित आदि अध्ययनों का उल्लेख है तथा जयधवला में आक्षेपिणी आदि धर्मकथाओं का उल्लेख है । **इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत आगम में उपलब्ध(आश्रव-स वर रूप)** विषय भी प्रश्नों के साथ प्राचीन समय में रहा हो और प्रश्न आदि को लिपिबद्ध नहीं किया हो तब आश्रव-स वर का यह विषय प्रस्तुत आगम रूप में बचा हो । न दी चूर्णिकार ने भी आश्रव-स वर के उपलब्ध विषय का उल्लेख किया है ।"

आगम प्रभाकर पूज्यश्री पुज्यविजयजी म०सा० के स पादित न दीसूत्र की प्रस्तावना के वाक्य(प्रकीर्णक स ब धी):– "अहीं पहेला जणाव्या मुजब दश प्रकीर्णक सूत्रोना निश्चित नामनी कोई पर परा नथी मलती," "बाकी ऊपर जणाव्या प्रमाणे दस प्रकीर्णकोना नामनो कोई निश्चित आधार आज सुधी मल्यो नथी, ए एक हकीकत छे" **"विक्रमना चौदमा शतकमा थयेला आचार्य श्री प्रद्युम्नसुरीश्वरजीए रचेला–** विचार सार प्रकरणमा आगमोना पिस्तालीस नाम जणाव्या छे, तेमा पण दस प्रकीर्णकोनो स्पष्ट **उल्लेख नथी"** । प्रकाशित **विचार सार प्रकरण ग्र थ** में ४५ आगमों का उल्लेख इस प्रकार है– (१) आचारा ग से लेकर (११) विपाक सूत्र (१२) उववाई से लेकर (२३) वण्हिदशा (११ अ ग+१२ उपाँग=२३) (२४) द्वीप सागर प्रज्ञप्ति (२५) बृहत्कल्प (२६) निशीथ (२७) दशाश्रुतस्क ध (२८) व्यवहार सूत्र (२९) उत्तराध्ययन (३०) ऋषिभाषित (३१) दशवैकालिक (३२) आवश्यक सूत्र ।

(३३) त दुलवैतालिक (३४) च द्रावेद्यक (३५) गणिविद्या (३६) नरक विभक्ति (३७) आतुर प्रत्याख्यान (३८) गणधरावली (३९) देवेन्द नरेन्द्रा (४०)मरणविभक्ति (४१)ध्यानविभक्ति (४२)पाक्षिक सूत्र (४३) न दीसूत्र (४४)अनुयोगद्वारसूत्र (४५) देवेन्द्र स स्तव । ये ४५ सूत्रहै ।

ये ४५ आगम के नाम उक्त ग्र थ की गाथा–३४४ से ३५१ तक में दिये है । जिसे आगम प्रभाकर मुनिश्री पुज्यविजयजी स पादित श्री महावीर जैन विद्यालय मु बई से ईस्वी सन १९८४ में प्रकाशित प्रकीर्णक सूत्र मूल पाठ की पुस्तक की प्रस्तावना पृष्ठ–२१ में देखा जा सकता है ।

इस ऊपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि ऋषिभाषित सूत्र विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में(अर्थात् लोकाशाह के पूर्व भी) ४५ आगम में गिना जाता रहा है । वर्तमान में ४५ आगमों के नाम स कलन भी भिन्न हो गये है और प्रकीर्णक के नामों की निश्चित पर परा तो कभी हुई ही नहीं है, ऐसा उक्त उद्धरण में स्वीकारा गया है ।

आश्रव द्वार

प्रथम अध्ययन : हिंसा

प्रश्न–१ : आश्रव के कितने प्रकार है ?

उत्तर– आत्मा में कर्म आने के हेतु रूप मार्गों को आश्रव द्वार कहा गया है । स ख्या की अपेक्षा उसके विविध प्रकार से भेद किये गये है– **(१)**कर्म के कारणभूत सामान्य तत्त्व की अपेक्षा **आश्रव** १ है। ***स्थाना ग*** । **(२)** मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग इनकी अपेक्षा आश्रव पाँच कहे गये है तथा हिंसा, झूठ, चोरी(अदत्त)कुशील, परिग्रह की अपेक्षा भी आश्रव **पाँच** कहे गये है। **(३)** श्रोतेन्द्रिय आश्रव से लेकर स्पर्शेन्द्रिय आश्रव, ये पाँच तथा छट्ठा नोइन्द्रिय आश्रव । **(४)** पाँच इन्द्रिय एव मन, वचन, काया से आठ आश्रव स्थान है । **(५)** श्रोतेन्द्रिय आदि **आठ** तथा सूई कुशाग्र आश्रव एव उपकरण आश्रव ये दश आश्रव है ।

(६) बीस आश्रव– ५ हिंसादि आश्रव, ५ मिथ्यात्वादि आश्रव, ५ इन्द्रिय स ब धी आश्रव, ३ योग स ब धी आश्रव; ये १८ हुए । १९. सूई कुशाग्र आश्रव २०. उपकरण स ब धी आश्रव । **(७) सत्तावन आश्रव–**

५ मिथ्यात्व, १२ अव्रत, २५ कषाय, १५ योग=५७ । प्रस्तुत शास्त्र में हिंसादि पाँच आश्रव का अनेक पहलुओं से विश्लेषण किया गया है, यथा- (१) हिंसादि के स्वरूपदर्शक विशेषण (२) हिंसादि के समान अर्थ वाले पर्यायनाम (३) हिंसादि के आश्रयभूत जीवादि (४) हिंसादि के कर्ता (५) हिंसादि के प्रयोजन (६) हिंसादि की प्रवृत्ति और हिंसादि का परिणाम ईहभविक परभविक । जिसमें नरकादि गतियों के दुःख; इत्यादि विषय स्पष्ट किये गये हक्त ।

प्रश्न-२ : हिंसा के स्वरूप दर्शक विशेषण और पर्यायनाम कौन-कौन से हक्त ?

उत्तर- प्रस्तुत सूत्र में हिंसा के स्वरूप को दर्शाने वाले २२ विशेषण दिये गये हैं, यथा- (१) पाप-हिंसा अठारह पाप में एक पाप है । (२) प्रच ड़-उग्र, प्रच ड़ होने से जीव, हिंसा के कृत्यों को करता हक्त । (३) रौद्र-परिणामों में रौद्रता आने से हिंसा की जाती है । इस प्रकार अन्य विशेषण भी समझ लेने चाहिये ।जो विवेचन के स स्करण में एव सारा श में समझाये गये हक्त ।

हिंसा के पर्यायवाची समानार्थक नाम ३० कहे गये हैं, यथा- (१) प्राणवध (२) उन्मूलन (३) अविश्वास आदि सभी नाम स ज्ञा वाले शब्द मूल पाठ में कहे गये हक्त और उनका अर्थ भी विवेचन युक्त स स्करण से तथा सारा श से जान लेना चाहिये ।

प्रश्न-३ : हिंसा की प्रवृत्ति किन पर और किस तरह की जाती है ?

उत्तर- हिंसा, त्रस, स्थावर जीवों की होती है उसमें स्थावर, पृथ्वी आदि पाँच हक्त और त्रस बेइन्द्रियादि चार हक्त । जिसमें प चेन्द्रिय में तिर्यंच और मनुष्य दो प्रकार है । तिर्यंच में जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प पाँच प्रकार है ।मनुष्य में स मूर्च्छिम और गर्भज दो प्रकार है ।

इन जीवों की हिंसा, विवेक शून्यता से, स्ववश या परवशता से, क्रोध-आवेश से या अन्यकषाय-मान, माया, लोभ, रागद्वेष, स्वार्थ, मोह के वशीभूत होकर, हँसी-विनोद और हर्ष-शोक के आधीन होकर तथा कितने ही अज्ञानी प्राणी **धर्मलाभ के भ्रम** से भी त्रस, स्थावर प्राणियों की हिंसा करते हक्त ।

हिताहित के विवेक से रहित मा साहारी अनार्य प्राणी प चेन्द्रिय त्रस जीवों की घात करते रहते हक्त । जो प्राणी अशुभ परिणाम-लेश्या

वाले होते हक्त वे भी सन्नी-असन्नि, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों का हनन करते रहते हक्त ।

प्रश्न-४ : किन किन प्रयोजनों से जगत के प्राणी हिंसा करते रहतेहक्त ?

उत्तर- पापी प्राणी अनेक कारणों, हेतुओं, प्रयोजनों को लेकर निजस्वार्थ वश त्रस या स्थावर प्राणियों की हिंसा करते रहते हक्त, यथा- **(१)** चमड़ा, मा स, खून, नख, दा त, आ त, सींग आदि शरीर अवयवों के लिए प चेन्द्रिय जीवों का घात करते हक्त ।**(२)** शहद के लिये मधुमक्खियों का हनन करते हक्त **(३)** शरीर की सुविधा के लिये खटमल, मच्छर आदि का हनन करते हक्त । इसी प्रकार अपने स्वार्थ के लिये चुहे, उदई(दीमक), अनाज के जीव, सर्प, कुत्ते, बिच्छु आदि प्राणियों का विनाश करते हक्त ।**(४)** रेशम आदि वस्त्रों के लिये अनेकानेक द्विन्द्रिय कीड़ों की घात करते हक्त ।**(५)** अन्य अनेक प्रयोजनों से त्रस प्राणियों की घात करते हक्त तथा पृथ्वी, पानी आदि स्थावर जीवों के आश्रय में रहे हुए अनेक त्रस जीवों की जाने या अनजाने हिंसा करते रहते हक्त । वे अज्ञानी प्राणी इन असहाय त्रस-स्थावर जीवों को एव स्थावर के आश्रय में रहे त्रस जीवों को नहीं जानते हक्त । कई प्राणियों का वर्ण आदि आश्रयभूत पृथ्वी आदि के समान ही होता है । अतः इनमें से कई तो नेत्रों से भी दिखाई नहीं देते हक्त ।

स्थावर जीवों की हिंसा का प्रयोजन- (१) खेती के लिए; कुआ, बावड़ी, तालाब व झील बनाने के लिए; मकान निर्माण कार्य के लिए; बर्तन, उपकरण बनाने के लिए तथा आजीविका के लिए कई प्रकार के खनिज पदार्थों का उत्पादन या व्यापार करने के लिए पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा की जाती है ।**(२)** स्नान, भोजन बनाने, पीने, धोने आदि सफाई की प्रवृत्तियों में, गृह कार्यों में, गमनागमन, नावादि में चलने या जल में तैरने आदि से अप्काय के जीवों की हिंसा की जाती है । पानी स्वय जीवों के शरीर से बना होता है उसके उपयोग से उन जीवों का विनाश होता है ।**(३)** भोजन बनाने, दीपक आदि जलाने एव प्रकाश करने के लिये या ठ ड़ी में तापने के लिये एव किसी भी पदार्थ को जलाने के लिये अग्निकाय के जीवों की विराधना(हिंसा) की जाती है ।**(४)** धान्यादि को साफ करने, हवा करने, फूँक देने, झूला, वाहन का उपयोग करने या अन्य कार्य एव शारीरिक विविध प्रवृत्तियों से वायुकाय की विराधना की जाती है ।**(५)**अनेक उपकरण, शस्त्र, मकान एव भोजन सामग्री तथा

औषध भेषज आदि के लिये वनस्पति जीवों की विराधना की जाती है। इस प्रकार स सार के समस्त प्राणी जीवन की विविध आवश्यकताओं के लिये स्थावर जीव, पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा एव वनस्पति के जीवों की हिंसा करते रहते हक्त ।

प्रश्न–५ : ऊपरोक्त विविध हिंसाकारी आचरणों का परिणाम-फल जीव को किस प्रकार भुगतना पड़ता है ?

उत्तर– उक्त विविध हिंसा कृत्यों में स लग्न जीव उन कृत्यों का जीवनभर त्याग नहीं करता है एव उसी हिंसक अवस्था में ही मर जाता है तो उसकी दुर्गति होती है, जिससे वह नरक गति में या तिर्यंच गति(पशु योनि) में उत्पन्न होता है जहाँ स पूर्ण जीवन दुःख ही दुःख में व्यतीत करता है ।

नरक के दुःख– (१) वहाँ सदा घोर अ धकार रहता है । (२) उम्र कम से कम दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है । (३) भूमि का स्पर्श एक साथ हजार बिच्छु ड़ क देवे वैसा होता है । (४) सर्वत्र भूमि पर मा स, रूधिर, पीव, चर्बी आदि घृणास्पद वस्तुओं जैसे पुदगलों का कीचड़ सा बना रहता है ।(५) भवनपति जाति के परमाधामी देव जाकर वहाँ नैरयिकों को औपद्रविक दुःख देते रहते हक्त और वे देव उसमें ही आन द मानते हक्त ।(६) अन्यान्य गलियों के कुत्तों की तरह वे नैरयिक एक दूसरे को देखते ही झगड़ते हक्त और आपस में वैक्रिय शक्ति से दारूण दुःख देते हक्त ।(७) नरकावास सदा उष्ण एव तप्त रहते हक्त और कई नरकावास महाशीतल बर्फ की चट्टानों से भी अत्यधिक शीत होते हक्त । (८) वहाँ नैरयिक सदा महान असाध्य राज रोगों से ग्रसित रहते हक्त । बुढ़ापे से भी सदा व्याप्त रहते हक्त ।(९) तलवार की धार के समान भूमि का स्पर्श तीक्ष्ण होता है । (१०) वहाँ लगातार दुःख रूप वेदना चालू रहती है, पलभर के लिए भी नैरयिकों को चैन नहीं मिलता है । (११) वहाँ सदैव दुस्सह दुर्गन्ध व्याप्त रहती है । (१२) शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाने पर भी वे मरते नहीं है पुनः शरीर जुड़ जाता है किन्तु वेदना भय कर होती रहती है । (१३) वहाँ उन्हें कोई भी शरणभूत नहीं होता है । स्वय ही अपने कृत कर्मों को परवश होकर और रो-रो कर भोगते हक्त । शारीरिक और मानसिक महान व्यथा से पीड़ित होते रहते हक्त ।

परमाधामी देवों द्वारा दिया जाने वाला दुःख– (१) ऊपर ले जाकर

पटक देते हक्त । (२) शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके भाड़ में पकाते हक्त । (३) रस्सी से, लातों से, मुक्कों से मारते हक्त । (४) आँते, नसें, आदि बाहर निकाल देते हक्त ।(५) भाला आदि में पिरो देते हक्त ।(६) अ गोपा गों को फाड़ देते हक्त, चीर देते हक्त । (७) कड़ाही में पकाते हक्त । (८) नारकी जीव के शरीर को ख ड़ ख ड़ करके उस मा स को गर्मागर्म करके उसे ही खिलाते हक्त ।(९) तलवार की धार सरीखे तीक्ष्ण पत्तों के ऊपर गिरा कर तिलतिल जैसे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर देते हक्त ।(१०) तीखे बाणों से हाथ, कान, नाक, मस्तक आदि विभिन्न शरीरावयवों को भेद देते हक्त । (११) अनेक प्रकार की कु भियों में पकाते हक्त । (१२) बालू रेत में चने की तरह भून ड़ालते हक्त ।(१३) मा स, रूधिर, पीव, उबले ता बे, शीशे आदि अत्युष्ण पदार्थों से उबलती उफनती वैतरणी नदी में नैरयिकों को फेंक देते हक्त ।(१४) वज्रमय तीक्ष्ण क टकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर इधर से उधर खींचते है तब वे करूण आक्र दन करते हक्त । (१५) दुःख से घबराकर भागते हुए नैरयिकों को बाड़े में ब द कर देते हक्त । वहाँ वे भयानक ध्वनि करते हुए चिल्लाते हक्त ।

रोटी की तरह सेका जाता है, टुकड़े टुकड़े करके बलि की तरह फेंक दिया जाता है, फंदा ड़ाल कर लटका दिया जाता है । सूली में भेद दिया जाता है । भर्त्सना की जाती है, अपमानित किया जाता है । पूर्व भव के पापों की घोषणा करके वधक को दिए जाने वाले सैकड़ों प्रकार के दुःख दिए जाते हक्त ।

दुःख से स तप्त नारक जीव इस प्रकार पुकारते हक्त– "हे ब धु ! हे स्वामिन ! हे भ्राता ! अरे बाप ! हे तात ! हे विजेता ! मुझे छोड़ दो, मक्त मर रहा हूँ, मक्त दुर्बल हूँ, मक्त व्याधि से पीड़ित हूँ, आप क्यों निर्दय हो रहे हो, मेरे ऊपर प्रहार मत करो और थोड़ा सा स तो लेने दो, दया कीजिए, रोष ना कीजिए, मक्त जरा विश्राम ले लूँ, मेरा गला छोड़ दीजिए, मक्त मरा जा रहा हूँ" इस तरह दीनता पूर्वक प्रार्थना करता है ।

परमाधामी उसे लगातार पीड़ा पहुँचाते हक्त । प्यास से पीड़ित होकर पानी मा गने पर तप्त लोहा सीसा पिघाल कर देते हक्त और कहते हक्त लो ठ ड़ा पानी पीओ और फिर जबरदस्ती मुँह फाड़ कर उनके मुख में सीसा उ ड़ेल देते हक्त । इस तरह परमाधामी उन्हें घोरातिघोर मानसिक शारीरिक दुःख और वाचिक प्रताड़ना करते रहते हक्त ।

ज्वाजल्यमान तप्त लोहमय रथ में बैल की जगह जोत कर चलाया जाता है, भारी भार वहन कराया जाता है, क टकाकीर्ण मार्ग में, तप्त रेत में चलाया जाता है ।

वे नारकी जीव स्वय भी विविध शस्त्रों की विकुर्वणा करके परस्पर अन्य नैरयिकों के महा दुःखों की उदीरणा करते रहते हक्त ।

भेड़िया, चीता, बिलाव, सि ह, व्याघ्र, शिकारी कुत्ते, कौवे आदि के रूप बनाकर भी नैरयिकों पर परमाधामी देव आक्रमण करते रहते हक्त । शरीर को फाड़ देते हक्त, नाखूनों से चीर देते हक्त, फिर ढ़ क क क गिद्ध बने नरकपाल उन पर झपट पड़ते हक्त । कभी जीभ खेंच लेते हक्त, कभी आ खे बाहर निकाल देते हक्त । इस प्रकार की यातनाओं से पीड़ित नारक जीव कभी ऊपर उछलते हक्त, कभी चक्कर काटते हक्त एव कि कर्तव्य विमूढ़ बन जाते हक्त । इस प्रकार वे नारक जीव अपने पूर्वकृत हिंसक प्रवृत्तियों का दारूण फल भोगते हक्त ।

इन भयानक करूणाजनक यातनाओं को जानकर विवेकी पुरुष को मानव भव में बेभान बन कर हिंसा कृत्यों में तल्लीन नहीं होना चाहिये । किन्तु सावधान होकर अहिंसक जीवन जीने का दृढ़ स कल्प करना चाहिये ।

तिर्यंच योनि(पशु जीवन) के दुःख– पापों से भारी बने जीव तिर्यंच योनि में भी दुःखों से व्याप्त रहते हक्त । प्राणियों में परस्पर जन्मजात वैर भाव होते हक्त । कुत्ता, बिल्ली, चूहा, तीतर, बाज, कबूतर आदि जीव के भक्षक बने रहते हक्त । रात दिन एक दूसरे को ताकते रहते हक्त । हिंसक मा साहारी प्राणी तो अन्य जीवों के भक्षण से ही अपना उदर पोषण करते हक्त । कई जीव भूख प्यास व्याधि की वेदना का कुछ भी प्रतिकार नहीं कर पाते । कई पशुओं को गर्म शलाकाओं से ड़ा भा जाता है, मारपीट की जाती है, नपु सक बनाया जाता है, भार वहन कराया जाता है एव चाबुकों से मार मार कर अधमरा कर दिया जाता है । इन सारी यातनाओं को चुपचाप सहन करना पड़ता है । उद्द ड़ता करने पर और अधिक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है । कई मा साहारी लोग पशुपक्षियों का अत्यन्त निर्दयता पूर्वक वध करते हक्त । बकरे, मुर्गे, गाय, भेड़ आदि के मा स को बेचने का ध धा करने वाले कसाई भी इनका प्राणा त प्रतिदिन करते रहते हक्त । इस प्रकार मूक पशु भयावह यातनाओं को भोगते हक्त ।पशु

जीवन मात्र ही कष्टों से परिपूर्ण है । कई जीव मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पत गा आदि चौरेन्द्रिय योनि में दुःख पाते हक्त । कई कीड़ी मकोड़े आदि तेइन्द्रिय जीव बनकर अज्ञानदशा में दुःख पाते ही रहते हक्त । इसीतरह लट, गि ड़ोला, कृमि आदि द्वीन्द्रिय योनि में जीव दुःख पाते हक्त । पाँच स्थावर पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा व वनस्पति की विविध योनियों में जीव बेभान अवस्था में दुःख भोगते रहते हक्त ।

पाप कर्म से भारी बने जीव मनुष्य भव को प्राप्त करके भी अ धे, ल गड़े, कुबड़े, गूगे, बहरे व कोढ़ आदि रोगों से व्याप्त हीना ग विकला ग, कुरूप, कमजोर, शक्ति-विकल, मूर्ख, बुद्धि-विहीन, दीन-हीन, गरीब होकर दुःख भोगते हक्त । इस प्रकार हिंसक जीव कुगतियों में भ्रमण कर दुःख भोगते रहते हक्त ।

अध्ययन– २ : मृषावाद(झूठ)

प्रश्न–१ : मृषावाद-असत्य का स्वरूप क्या है और उसके पर्याय वाची शब्द कितने कहे हक्त ?

उत्तर– दूसरा आश्रव द्वार है–असत्य वचन, मिथ्या वचन । यह गुण गरिमा रहित, हल्के च चल उतावले लोगों द्वारा बोला जाता है । यह व्यथोत्पादक, दुखोत्पादक, अपयशकारी एव वैरोत्पादक है । हर्ष-शोक, राग-द्वेष और मानसिक स क्लेश को देने वाला, शुभ फल से रहित, धूर्तता और अविश्वसनीय वचनों की प्रचुरता वाला, नीचजनों से सेवित है, यह नृश स–क्रूर एव निंदित है व अप्रीतिकारक है । समस्त साधुजनों और सत्पुरूषों द्वारा निंदित है, दूसरों को पीड़ा करने वाला है, कृष्ण लेश्या वाले इसका प्रयोग करते हक्त । यह दुर्गतिवर्धक एव चिर परिचित है, निर तर साथ चलने वाला है, भव भ्रमण कराने वाला है । इसका कठिनाई से अ त होता है अर्थात् मुश्किल से छूटता है ।

असत्य के पर्यायवाची शब्द– १. अलीक २. शठ ३. अन्याय(अनार्य) ४. मायामृषा ५. असत्क ६. कूड़कपट–अवस्तुक ७. निरर्थक–अपार्थक ८. विद्वेष–गर्हणीय ९. अनृजुक–सरलता रहित १०. माया–चारमय ११. व चना १२. मिथ्या पश्चात् कृत्य–पीछे कर देने योग्य त्याज्य १३. साति–अविश्वास कारण १४. उछन्न–स्वदोष पर गुण आच्छादक १५. उत्कूल–

सन्मार्ग से गिरा ने वाला १६.आर्त्त १७. अभ्याख्यान १८. किल्विष १९. वलय-चक्करदार, गोलमान २०. गहन २१. मन्मन-अस्पष्ट २२. नूम-ढ़ कने वाला २३. नियड़ि-छिपाने वाला २४. अप्रत्यय २५. असमय २६. झूठी प्रतिज्ञा का कारण २७. विपक्ष २८. अपधीक-निंदित मति से उत्पन्न, २९. उपधि अशुद्ध-मायाचार से अशुद्ध ३०. अपलोप-वास्तविक स्वरूप का लोपक । इन नामों से असत्य के अनेक रूप प्रकट होते हक्त ।

प्रश्न-२ : झूठ कौन बोलते हक्त और क्यों बोलते हक्त ?

उत्तर- झूठ बोलने वाले- (१) पापी, स यम विहीन, अविरत, कपट, कुटिल, कटुक, च चल चित्त वाले, क्रोध लोभ हास्य भय के अधीन बने, व्यापारी, जुआरी, व्यसनी, शिल्पी, चोर, चुगलखोर, कारीगर, ठग, धूर्त, ड़ाकू, राजकर्मचारी, साहूकार, ऋणि, अविचारक, बुद्धिमान, मूरख, मिथ्यामति, कुलि गी, निर कुश यदा तदा बोलने वाले, ये लोग सभी असत्य बोलने वाले हक्त ।

(२) नास्तिकवादी-शून्यवादी, प चस्क धवादी, बौध, मनजीववादी, वायु-जीववादी, अ ड़े से स सारोत्पत्ति मानने वाले, सअद्भाववादी, ईश्वर कर्तुत्ववादी, एकात्मवादी, अकर्तृत्ववादी, यदृच्छावादी, स्वभाववादी, विधिवादी, नियतिवादी, पुरूषार्थवादी, कालवादी । ये सभी मिथ्या-वादी हक्त, एका त भाषण करने या अनर्गल अतर्कस गत भाषण करने से मिथ्याभाषी है ।

(३) अनेक प्रकार के मिथ्या आक्षेप लगाने वाले, ईर्ष्या द्वेष वश स्वार्थवश झूठ बोलते हक्त । ये गुणों की परवाह न कर असत्य भाषण के कुशल, दूसरों के दोषों को मन से कल्पित कर बोलने वाले, अत्यन्त दृढ़कर्मों से आत्मा को वेष्टित करते हक्त ।

(४) कई लोग धन के लिए, कन्या के लिए, भूमि के लिए, पशुओं के लिए झूठ बोलते हक्त । झूठी साक्षी देते हक्त । इस प्रकार अधोगति में ले जाने वाला मिथ्याभाषण करते रहते हक्त ।

(५) कई लोग पापकारी सलाह या पाप कार्यों से प्रेरणात्मक वचन बोल कर हिंसा को प्रोत्साहन देते हक्त उनके वे हिंसक वचन भी असत्य वचन कहे गये हक्त । क्यों कि परपीड़ाकारी वचन सत्य नहीं कहे जा सकते ।

(६) कई लोग जिम्मेदारी से, नासमझी से, लोभ से या क्रूरता से अथवा स्वार्थ से हिंसक आदेश उपदेश निर्देश करते हक्त, वह भी असत्य वचन की गिनती में आता है । इस में त्रस स्थावर सभी जीवों के घातक आदेश प्रत्यादेश का समावेश होता है । (७) युद्ध स ब धी सारे आदेश प्रत्यादेश भी अलोक वचन में समाविष्ट है । (८) ये सब असत्य एव हिंसक वचन क्रिया की अपेक्षा द्वितीय आश्रव है और जीव को विविध गतियों में विभत्स यातनाओं को देने वाले हक्त ।

प्रश्न-३ : असत्य भाषण करने वालों को उसका क्या परिणाम मिलता है ?

उत्तर- मृषावाद का भयानक फल- (१) सभी प्रकार के ऊपरोक्त असत्य वचन हिंसक वचन असत्याक्षेप आदि का प्रयोग करने वाले, प्रथम आश्रवद्वार में विस्तार से कही गई नरकादि दुर्गतियों की यातनाएँ दीर्घकाल तक प्राप्त करते हक्त । उसके अतिरिक्त भी अनेक अवस्थाएँ प्राप्त करते हक्त ।

(२) वे मनुष्य भव में पराधीन जीवन एव भोगोपभोग की सामग्री से रहित जीवन पाते हक्त । उनकी चमड़ी बिवाई, दाद, खुजली आदि से फटी रहती है, पीड़ित रहती है । कुरूप और कठोर स्पर्श वाले होते हक्त । अस्पष्ट और विफल वाणी वाले होते हक्तरतिविहीन मलिन और सारहीन शरीर वाले होते हक्त, उनका सत्कार नहीं होता है, वे दुर्गन्ध से व्याप्त, अभागे, अका त, अनिष्ट स्वर वाले, धीमी और फटी आवाज वाले होते हक्त । वे दूसरों के द्वारा सताये या चिढ़ाये जाते हक्त । वे जड़, बधिर, गू गे, अ धे और तोतले बोलने वाले होते हक्त । विकृत इन्द्रियों वाले एव कुल गोत्र या कार्य से नीच होते हक्त । उन्हें नीच लोगों का नौकर या दास बनता पड़ता है । सर्वत्र निंदा एव धिक्कार के पात्र होते हक्त, वे दुर्बुद्धि होते हक्त, लौकिक और लोकोत्तर आगम सिद्धा तों के श्रवण एव ज्ञान से रहित होते हक्त और धर्म बुद्धि से भी रहित होते हक्त ।

(३) इस प्रकार ये झुठाबोले लोग कर्म विपाक से असत्य की अग्नि में जलते हुए अधिकाधिक अपमान निंदा दोषारोपण चुगली फूट को प्राप्त करते हक्त । गुरूजनों, ब धुओं, स्वजनों, मित्रों द्वारा तीक्ष्ण वचनों से अनादर पाते हक्त ।मन को स ताप देने वाले, जीवन पर्यन्त नहीं मिटने वाले, आरोपों, मिथ्या आरोपों को प्राप्त करते हक्त । मर्मवेधी तर्जनाओं,

झिड़कियों और तिरस्कर को प्राप्त करते हक्त । मृषावाद के परिणाम स्वरूप उन्हें अच्छा भोजन वस्त्रादि भी नसीब नहीं होता है ।

(४) तात्पर्य यह है कि मृषावादी कहीं पर भी आदर सम्मान नहीं पाते । शरीर से वचन से आकुल व्याकुल रहते हक्त । झूठे दोषारोपण प्राप्त कर स ताप स क्लेश की ज्वालाओं में निर तर जलते रहते हक्त । दीनता दरिद्रता उनका भवोभव पीछा नहीं छोड़ती है । लोगों के भी घृणा निंदा के पात्र बने रहते हक्त । ऐसे दारूण दुःख अनेक भवों तक भुगतने पड़ते हक्त ।

(५) इस प्रकार मृषावाद के कटुक परिणाम को जानकर विवेकी पुरुषों को मन की क्षणिक झूठी स तुष्ठी देने वाले असत्याचरण को पूर्ण रूपेण तिला जली देनी चाहिए ।

अध्ययन- ३ : अदत्तादान

प्रश्न-१ : अदत्तादान-चोरी का स्वरूप क्या है और उसके पर्यायवाची शब्द कितने कहे गये हक्त ?

उत्तर- जो वस्तु वास्तव में अपनी नहीं है, परायी है, उसे उसके स्वामी की स्वीकृति अनुमति के बिना लेना एव अपने अधिकार में कर लेना, अदत्तादान है, चौर्यकर्म है । यह तीसरा अधर्मद्वार या आश्रवद्वार है ।

अदत्तादान-चोरी का स्वरूप- यह दूसरों के हृदय को जलाने वाला, मरण भय युक्त है । पर धन में मूर्छा लोभ ही इसका मूल है । रात्रि रूप अकाल में सेव्य है । चोर के निवास छिपने के स्थान भी पर्वत गुफादि विषम होते हक्त । कलुषित अधोगति दायक बुद्धि वालों का, अनार्य पुरुषों का यह आचरण है । कीर्ति प्रतिष्ठा को धूमिल करने वाला, राजा आदि के द्वारा विपत्ति द ड़ दिया जाने वाला, मनुष्यों को ठगने वाला, धोखा देने वाला, निर्दयता पूर्ण कृत्य है । राजपुरुष, चौकीदार, कोतवाल, पुलिस आदि से रोका जाने वाला साधु पुरुषों से निंदित गर्हित है । प्रियजनों, मित्रों में वैरभाव, वैमनस्य, फूट पैदा कराने वाला कृत्य है । अनेक लड़ाई-झगड़े, युद्ध-स ग्राम का जनक है । दुर्गति देने वाला भवभ्रमण कराने वाला, चिरकाल से परिचित दुष्त्याज्य है । अ त में परिणाम में भय कर दुःखदाई है ।

अदत्तादान के पर्यायवाची शब्द- १. चौरिय २. परहड़ ३. अदत्त ४. क्रूर कर्म ५. परलाभ ६. अस जम ७. परधन गृद्धि ८. लोलुपता ९. तस्करत्व १०. उपहार ११. हस्त लघुत्व-कुत्सित हाथ, उठाऊ हाथ १२. पापकर्म १३. स्तेन्य १४. हरण विप्रणास १५. परधन ग्राहक १६. धनलु टक १७. अप्रत्यय १८. अवपीड़-पीड़ोत्पादक १९-२१. आक्षेप-प्रक्षेप-सविक्षेप-पर वस्तु पर झपटना, छीनना, फेंक देना ईधर उधर कर देना, नष्ट कर देना २२. कूटता-बेईमान २३. कुलमसि(कल ककारी) २४. का क्षा-तीव्र इच्छा, चाहना १५. लालपना प्रार्थना-निंदित लाभ की अभिलाषा २६. व्यसन-विपत्तियों का कारण २७. इच्छामूर्च्छा २८. तृष्णागृद्धि २९. निकृति कर्म-कपटाचरण ३०.अपराक्ष-दूसरों की नजर बचाने का कृत्य ।

प्रश्न-२ : चौर्यकर्म किस प्रकार और किस हेतुओं से किये जाते हक्त ?

उत्तर- चौर्य कर्म के विविध प्रकार- (१) कोई छिपकर चोरी करते, कोई सामने से प्रहार आक्रमण करके, म त्र प्रयोग करके भी चोरी करते, कोई धन लूँटते, कोई पशु तो कोई स्त्रियों या पुरुषों का अपहरण करते । कोई राहगीरों को लूँटते तो कोई शस्त्रों के बल राजा खजानों को लूँटते ।

(२) अपार धन, स पत्ति, एश्वर्य के स्वामी राजा लोग भी अस तोष वृति के शिकार होकर दूसरों के धन की लालसा से एक दूसरे राज्य पर आक्रमण कर महास ग्राम के द्वारा जनस हार करवा कर दूसरों का धन लूँटकर आन द मानते हक्त । यह धन के लोभ की अ धता है, उनके विवेक नेत्र ब द हो जाते हक्त ।

(३) कई ज गल में पहाड़ों में अटवी में रहने वाले सैकड़ों सशस्त्र चोर होते हक्त । इनके सेनापति भी होते हक्त । ये आसपास के राज्यों में चोरिया करते रहते हक्त । मनुष्यों की घात करते हक्त । समय पर राजसैन्य का सामना करके परास्त करते हक्त ।

(४) कई ड़ाकू लोग पर धन के लिये जहाँ तहाँ आक्रमण करते हक्त, समुद्री ड़ाकू भी लूँटमार करते हक्त, जहाजों को भी नष्ट कर देते हक्त ।

(५) कई दया से शून्य हृदयी, परलोक की परवाह नहीं करने वाले, गाँव, नगर आदि को ही लूँट खसोट मारकाट कर उजाड़ कर देते हक्त ।

(६) ये विविध प्रकार के चोर पाप कर्मों का स चय करते हक्त जिसको नरक गति में भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता है । ज गल आदि में भटकते

फिरते हक्त । वहाँ पर भी वे भूख-प्यास थकान से पीड़ित होते हक्त, कभी मा स, शव(मुर्दा) क दमूल आदि जो मिला खाकर गनीमत समझते हक्त, वे सदा घबराए, चि तित, भयाक्रा त और आकुल व्याकुल बने रहते हक्त ।

(७) इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि यहाँ इस आश्रवद्वार में स्थूल चौर्यकर्म का वर्णन है जिसका कि श्रावक त्याग करता है । किन्तु श्रमण के त्याग करने योग्य सूक्ष्म अदत्त का यहाँ कथन नहीं किया गया है । उस अदत्त से भी कर्मब ध और आश्रव होता ही है किन्तु यहाँ जिस बीभत्स पाप आश्रव की और स्थूल अदत्त चौर्य कर्म की अपेक्षा है उसमें अतिचार रूप स्तेन्य कर्म या सूक्ष्म अदत्त का समावेश नहीं है ।

प्रश्न–३ : चौर्यकर्म का इसभविक परभविक कटु परिणाम क्या हक्त?

उत्तर– चौर्य कर्म का इसभविक दुःख परिणाम– (१) चौर्य कर्म करते हुए जब पकड़ लिया जाता है तब ब धनों से बाँधा जाता है, मारा-पीटा जाता है, अधिकारियों को सौंपा जाता है, कारागार में ठूँस दिया जाता है । वहाँ ड़ा ट फटकार, गर्दन पकड़ना, धक्के देना, पटकना, ताड़ना-तर्जना आदि की जाती है । वस्त्र छीन लिए जाते हैं हथकड़ी, बेड़ी, खोड़ा, सा कल से बाँधा जाता है । पींजरों, भोंयरों में जकड़ कर ड़ाल दिया जाता है । अ गों में कीले ठोक देना, बैलों की जगह जोतना या गाड़ी के पहियों से बाँध देना, ख भे से चिपकाना, उलटा लटकाना इत्यादि ब धनों आदि से पीड़ित किए जाते हक्त ।

(२) सुईयाँ चुभोई जाती है, वसूले से शरीर को छीला जाता है । क्षार पदार्थ लाल मिर्च आदि छिड़के जाते हक्त । लोहे के नोकदार ड़ ड़े उनके छाती, पेट, गुदा और पीठ में भोंक देते हक्त । इस तरह चौर्य कर्म करने वालों के अ ग-प्रत्य ग चूर-चूर कर दिए जाते हक्त । यमदूतों के समान कारागार के कर्मचारी मारपीट करते हक्त । इस प्रकार वे म द पुण्य अभागे चोर जेल में थप्पड़ों, मुक्कों, चर्म-पट्टों, तीक्ष्ण-शस्त्रों, चाबुकों, लातों, मोटे रस्सों, बेतों के सेकड़ों प्रहारों से पीड़ित होकर मन में उदास, खिन्न हो जाते हक्त, मूढ़ बन जाते, उनका टट्टी, पेशाब, बोलना, चलना-फिरना ब द कर दिया जाता है । इस प्रकार की यातनाएँ वे अदत्त चौर्य कर्म करने वाले पापी प्राप्त करते हक्त ।

(३) ये चोर १. इन्द्रियों का दमन नहीं कर सकने से, इन्द्रियों के दास बनने से २. धन लोलुप होने से ३. शब्दादि स्त्री विषयों में आशक्त होने से

तृष्णा में व्याकुल होकर धन प्राप्ति में ही आन द मान कर चौर्य कर्म करते हक्त किन्तु जब राजपुरुषों द्वारा पकड़ लिए जाते हक्त तब उन्हें प्राण द ड़ की सजा दी जाती है । नगर में प्रसिद्ध स्थलों व चौराहों पर लाकर मार पीट की जाती है ।

(४) घसीटा जाता है, फाँसी पर ले जाया जाता है दो काले वस्त्र पहनाए होते हक्त, विविध प्रकार से अपमानित किया जाता है । कोयलें के चूर्ण से पूरा शरीर पोत दिया जाता है, तिल-तिल जितने खुद के शरीर के टुकड़े काट कर जबरन खिलाए जाते हक्त, इस प्रकार नगर में घूमा कर नागरिक जनों को दिखाया जाता है, पत्थर आदि से पीटा जाता है, फिर उन अभागों को सूली में पिरो दिया जाता है जिससे उसका पूरा शरीर चिर जाता है । वध स्थान में कईओं के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हक्त, वृक्ष की शाखाओं पर टा ग दिया जाता है, हाथों पैरों को कस कर बाँध दिया जाता है, पर्वत पर से फेंक दिया जाता है, हाथी के पैर के नीचे कुचल कर कचूमर कर दिया जाता है । कईयों के कान, नाक, दा त, अ ड़कोश उखाड़ दिए जाते हक्त, जीभ खींचकर बाहर फेंक दी जाती है । किसी के अ गोपा ग काट कर देश निकाला दे दिया जाता है । कई चोरों को आजीवन कैद में रखकर यातना दी जाती है और अ त में वे वहीं मर जाते हक्त । इतनी दुर्दशा यहाँ मनुष्य लोक में चोर भोगते हक्त । यदि वे चोर पहले ही ऐसी यातनाओं की कल्पना कर लेते और चौर्यकर्म न करते तो दुःखी नहीं होना पड़ता । वहाँ उन्हें कोई भी शरण नहीं देता है । इतने से भी क्या हुआ अभी तो उनको नरकादि दुर्गतियों की वेदना भोगना और अवशेष रहता है । वहाँ से वह बुरी मौत मरकर क्लिष्ट आर्त परिणामों से नरक गति में उत्पन्न होता है । प्रथम आश्रव में ही कही गई बीभत्स वेदनाओं को वहाँ नरक में भोगता है । फिर क्रमशः भवोभव नरक तिर्यंच गति में दुःख भोगता ही रहता है । अवशेष कर्म वाला वह कभी मनुष्य भी बनता है तो वहाँ सुख भोग सामग्री एव धन आदि उसे लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलता है । कड़ा श्रम उद्यम करने पर भी सदा असफलता ही हाथ लगती है । न उन्हें सुख नसीब में होता न, शा ति । केवल दुःख और दीनता में ही जीवन व्यतीत करता है ।

(५) इस प्रकार अदत्तादान के पाप से भारी कर्मा बने वे बेचारे विपुल दुःखों की आग में झुलसते रहते हक्त । ऐसे अदत्त पाप और उसके विपाक परिणाम को जानकर विवेकी पुरुषों को सुखी होने के लिये परधन धूल बराबर

समझ कर नेक नीति से प्राप्त स्वय की स पत्ति में ही स तुष्ट और सुखी रहना चाहिये । मौत स्वीकार करना पड़ जाय तो भी चौर्य कर्म को स्वीकार नहीं करना चाहिये ।

अध्ययन- ४ : अब्रह्मचर्य

प्रश्न-१ : अब्रह्मचर्य का वास्तविक स्वरूप क्या है और इसके पर्याय-वाची नाम कितने कहे गये हैं ?

उत्तर- चौथा आश्रवद्वार है-अब्रह्म कुशील । इसका देवों में, मनुष्यों में, पशुओं में, यों समस्त स सार के प्राणियों में साम्राज्य है अर्थात् सभी प्राणी इसकी कामना अभिलाषा से व्याप्त है । यह प्राणियों को फँसाने में कीचड़ के समान है, पाश एव जाल के समान है । आत्मा को पतित करने वाला, अनेक अनर्थों का मूल, दोषों का उत्पादक, स सार का वर्द्धक है । मोहकर्म की स तति को बढ़ाने वाला, तप-स यम का विघातक, बाधक, आत्मशक्ति से कायर एव निम्न जनों द्वारा सेवित, जरा-मरण, रोग-शोक का भाजक है, वीतराग एव वीतराग के मार्ग पर चलने वाले श्रमण श्रमणियों के लिये त्याज्य एव निंदित है । वध ब धन की दशाओं को प्राप्त कराने वाला, परिवार-परिचय और स सार-प्रवाह का वर्द्धक एव पोषक है । अनादि परिचित अभ्यस्त दूषण है, आत्म विकार रूप है । दृढ़ मनोबल एव स कल्प होने पर भी कठिनाई से इसका अ त होता है अर्थात् इसका त्याग करना और उसमें सफल होना अत्य त दुष्कर है । स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपु सक वेद इसके चिन्ह है, अलग-अलग रूप है । कर्तव्य के बोध को, हिताहित के विवेक को नष्ट करने वाला है । बुद्धि को विपरीत या भ्रष्ट करने वाला है, अधर्म का मूल एव मोक्ष साधना का बिलकुल विपक्ष विरोधी है ।

अब्रह्म के तीस पर्यायवाची शब्द- (१) अब्रह्म (२) मैथुन (३) चर त (सर्वत्र व्याप्त) (४) स सर्गिक (५) सेवनाधिकार (६) स कल्पी (७) स यम बाधक (८) दर्प-इन्द्रियों के पुष्ट होने से उत्पन्न होने वाला (९) मूढ़ता (१०) मनःस क्षोभ (११) अनिग्रह (१२) विग्रह (१३) विघात (आत्मगुण नाशक) (१४) विभ ग (१५) विभ्रम(बुद्धि विभ्रम) (१६) अधर्म (१७) अशीलता (१८) ग्राम धर्म तृप्ति-इन्द्रिय पोषक (१९) रतिक्रीड़ा (२०) राग-चि ता (२१) कामभोग मार (२२) वैर (२३) रहस्य (२४) गुह्य (२५)

बहुमान(बहुत मान्य है) (२६) ब्रह्मचर्य विघ्न (२७) व्यापत्ति-आत्मा के स्वभाविक गुणों का विनाशक (२८) विराधना (२९) प्रस ग(आशक्ति का कारण) (३०) कामगुण ।

ये तीस इसके गुण निष्पन्न नाम हक्त । इन पर विचार करने से अब्रह्मचर्य के स्वरूप का, इसके उत्पन्न होने के कारणों का तथा उससे होने वाली हानियों का बोध हो जाता है ।

जब शरीर पुष्ट होता है, इन्द्रिया बलवान बन जाती है तो कामवासना के विकार भावों को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है । अतः ब्रह्मचर्य की आराधना करने वालें साधकों को विविध तपश्चर्या द्वारा इन्द्रियों पर निय त्रण रखना, शरीर को बलिष्ट नहीं बनाना, जिव्हेन्द्रिय को काबू में रखना और पौष्टिक आहार का वर्जन करना अनिवार्य है ।

प्रश्न-२ : अब्रह्मचारी या स्त्री ल पट पुरुषों का परिचय किस प्रकार दर्शाया गया हैं ?

उत्तर- अब्रह्मसेवी-कामवासना के च गुल में फँसे हुए मोहित मति चारों जाति के देव- भवनपति, व्य तर, ज्योतिष्क, वैमानिक तथा मनुष्य और तिर्यंच- जलचर, थलचर, खेचर ये सभी स्त्री पुरुष के रूप में परस्पर मैथुन(अब्रह्म) सेवन करते हक्त और आत्मा को मोहनीय कर्म के ब धन में ग्रस्त करते हक्त ।

मनुष्यों में महाऋद्धि एश्वर्य के स्वामी राजा चक्रवर्ती वासुदेव, बलदेव, मा ड़लिक राजा आदि विपुल भोगोपभोग की सामग्री से सम्पन्न, जीवनभर कुशील का सेवन करके भी अतृप्त रहकर ही मरण को प्राप्त होते हक्त । इनकी उम्र उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है । युगलिक मनुष्य जिनकी उम्र ३ पल्योपम की उत्कृष्ट होती है उसमें भी सारी उम्र यौवन अवस्था रहती है, उनके रोग बुढ़ापा, व्यापार, कृषि आदि कोई विघ्न नहीं होते हक्त । अस ख्य वर्षों तक विषय भोगों का सेवन करके भी अतृप्त अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करते हक्त ।

स्त्री के निमित्त से पुरुष को और पुरुष के निमित्त से स्त्री को विकार भावों की उत्पत्ति होती है । कोई अति लुब्ध बने परस्त्री में आसक्त होकर गुप्त रूप से अब्रह्म का सेवन करते हक्त । परस्त्री ल पटता प्रकट होने पर बुरी तरह मारे जाते हक्त । मैथुन वासना में आसक्त पशु भी आपस में लड़कर एक दूसरे को मार देते हक्त । परस्त्रीगामी, अपने नियम, समाज

की मर्यादा, आचार-विचार को भ ग कर देते हक्त । यहाँ तक कि धर्म स यम में लीन ब्रह्मचारी पुरुष भी मैथुन स ज्ञा के वशीभूत होकर क्षण भर में चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हक्त । बड़े-बड़े यशस्वी और प्रसिद्ध ब्रह्मचारी भी कुशील सेवन से अपयश अपकीर्ति के भागी बन जाते हक्त । परस्त्रीगामी अपना इहलोक परलोक दोनों ही बिगाड़ देते हक्त अर्थात् सर्वत्र भयाक्रा त एव दुःख ही दुःखमय अवस्था में पहुँचकर काल व्यतीत करते हक्त, यथा– रावण, मणिरथ, पद्मरथ आदि । ये शीघ्र मृत्यु को पाकर नरकगामी बने ।

प्राचीन काल में अब्रह्म के कारण स्त्रियों के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुए हक्त, खून की नदिया बही है । यथा– सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, क चना, अहिल्या, स्वर्णगुलिका, विधुन्मती, रोहिणी आदि । इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक सैकड़ों कलह द्वन्द भी मैथुन एव स्त्रियों के निमित्त से हुए हक्त और होते ही रहते हक्त ।

प्रश्न–३ : अब्रह्मचर्य–परस्त्रीगमन का परिणाम क्या होता है ?

उत्तर– मोह के वशीभूत प्राणी अब्रह्म में आसक्त होकर मृत्यु समय अशुभ परिणामों से नरक तिर्यंच गति में जाता है । जहाँ विभिन्न दारूण वेदनाओं का अनुभव करता है । चार गति २४ द ड़क रूप स सार अटवी में बार बार परिभ्रमण करता है । अब्रह्म का फल अतिशय दुःखजनक है । क्षणमात्र का दिखने का सुख है और अपार दुःखों का भाजन है ।

परस्त्रीगामी प्राणी अब्रह्म के सेवन से अपनी शा ति भ ग करते हक्त, निंदित होते हक्त, बुरी तरह मारे जाते हक्त, नरकगति के मेहमान बनते हक्त, आगे भी भवोभव अब्रह्म की तृष्णा में पड़े रहते हक्त एव भोग सामग्री से प्रायः व चित ही रहते हक्त । दीर्घकाल पर्यन्त अनेक प्रकार की भीषण एव दुस्सह यातनाओं के भागी बनते हक्त । ***[दुःख विपाक सूत्र में भी अब्रह्मचर्य का दारूण विपाक अनेक कथाओं में दिया गया है ।]***

अध्ययन– ५ : परिग्रह

प्रश्न–१ : परिग्रह का स्वरूप क्या है और उसके पर्यायवाची नाम कितने कहे गये हक्त ?

उत्तर– पाँचवाँ अधर्मद्वार आश्रवद्वार "परिग्रह" है । जमीन-जायदाद, धन-स पत्ति, खेती, सोना-चा दी, हीरा-जवाहरात, मकान-दुकान, स्त्री-पुत्र आदि

कई रूपों में स सार के प्राणियों के पीछे परिग्रह लगा हुआ है । खुद का शरीर और कर्म भी जीव का परिग्रह है । इन परिग्रह स्थानों में लाभ के साथ साथ लोभ स ज्ञा की वृद्धि होती रहती है । सारे जगत का धन भी किसी लोभी व्यक्ति को मिल जाय तो उसे स तोष नहीं हो सकता । जैसे कि अग्नि में ज्यों ज्यों घी आदि सामग्री ड़ालते जाएँगे वह बढ़ती ही जाएगी ।

यह परिग्रह राजा महाराजाओं से सम्मानित है । अनेक लोगों का हृदय वल्लभ है, अत्य त प्यारा है । मुक्ति प्राप्ति में अर्गला के समान है । ममत्व का मूल है । पापों का, अन्यायों का जनक है । लोभा ध व्यक्ति हिताहित का विवेक खो बैठता है । भाई-भाई में, मित्र-मित्र में, पिता-पुत्र में और सेठ-नौकर में, यह वैर की वृद्धि कराने वाला है । हिंसा के ता ड़व महास ग्राम का निमित्त है । छोटे बड़े सामान्य क्लेश कदाग्रह तो परिग्रह के निमित्त से यत्र-तत्र होते ही रहते हक्त ।

परिग्रह के तीस पर्यायवाची शब्द– (१) परिग्रह (२) स चय (३) चय (४) उपचय (५) निधान (६) सम्भार(म जूषा) (७) स कर (८) आदर (९) पिंड़ (१०) द्रव्यसार (११) महेच्छा (१२)प्रतिब ध (१३) लोभात्मा (१४) महर्धिका (१५) उपकरण (१६) स रक्षणता (१७) भार (१८) स पातोत्पादक–अनर्थों का उत्पादक (१९) कलह का पिटारा (२०) प्रविस्तार (२१) अनर्थ (२२) स स्तव (२३) अगुप्ति (२४) आयास (खेद-प्रयास) (२५) अवियोग (२६) अमुक्ति (२७) तृष्णा (२८) अनर्थक (२९) आसक्ति (३०) अस तोष ।

इन सार्थक नामों में दोनों प्रकार के द्रव्य और भाव परिग्रह का समावेश किया गया है । ये तीस नाम परिग्रह के विराट रूप को सूचित करते हक्त । शा ति स तोष समाधि से जीवन व्यतीत करने वालों को परिग्रह के इन विभिन्न रूपों को भली-भाँति समझ कर त्याग करना चाहिये ।

प्रश्न–२ : देव, मनुष्य और तिर्यंच जीवों के क्या परिग्रह है और मानव परिग्रह का उपार्जन किस प्रकार करते हक्त ?

उत्तर– परिग्रहधारी– (१) चारों जाति के ९९ प्रकार के देव महान ऋद्धि के धारक हक्त । इनमें भी इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिंशक, लोकपाल, अहमिंद्र आदि विशेष ऐश्वर्य के स्वामी है । ये देवगण भी अपनी अपनी परिषद सहित परिवार सहित विशाल परिग्रह के स्वामी है और उनमें अल्पाधिक मूर्च्छाभाव रखते हक्त । इनके भवन, विमान, आवास, यान, वाहन, शय्या,

भद्रासन, सि हासन, वस्त्र, आभूषण, शस्त्र, अनेक प्रकार के मणिरत्न एव उनके पात्र, वैक्रिय लब्धि स पन्न देवियाँ आदि स्वामित्व में होती है ।

(२) चैत्यस्तूप, माणवक स्त भ,ग्राम,नगर,बगीचे,ज गल,देवालय, सरोवर, तालाब, बावड़ी, प्याऊ एव बस्ती आदि स्थानों को ये देव ममत्वपूर्वक स्वीकार कर लेते हक्त ।

(३) अत्य त विपुल लोभाभिभूत इन देवों में से कई देव तिर्यक् लोक के वर्षधर(विशाल)क्षेत्र, द्वीप, समुद्र, नदी, पर्वत, इक्षुकार, दधिमुख, शैल, कूट आदि में रहते हैं । ये सभी प्रकार के देव उक्त महान ऋद्धि के स्वामी वैक्रिय लब्धि एव देवाँगनाओं युक्त होकर विपुल ऐश्वर्य का अनुभव उपभोग भोग अस ख्य वर्षों तक करते हुए भी तृप्ति को प्राप्त नहीं करते हक्त और अतृप्तावस्था में ही वहाँ से मर कर अन्य गति में चले जाते हक्त । परिग्रह की लालसा में देवगण भी तृप्त नहीं हो सकते तो मनुष्यों का या अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या ?

(४) अकर्म भूमि में रहने वाले युगलिक मनुष्य और कर्म भूमि में रहने वाले चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मा ड़लिक राजा, सामान्य राजा, राज्य कर्मचारी, म त्री, राजकुमार, सेठ, साहुकार, सेनापति, पुरोहित, सार्थवाह आदि महान ऋद्धिस पत्ति से एव मनोज्ञ भोगोपभोग की सामग्री से सम्पन्न होते हक्त । मनोहर मनोज्ञ ललनाओं स्त्रियों एव पुत्र परिवार से सम्पन्न होते हक्त । उनके भी धन-धान्य, पशु, भ ड़ार, व्यापार, मकान, जमीन-जायदाद, आभूषण, वस्त्र, हीरा, पन्ना, माणिक, मोती, सोना, चा दी, जवाहरात, यान, वाहन, रथ, पालकी आदि सुखसामग्री और भोगसामग्री होती है । दास दासी नौकर आदि जिनकी सेवा में हाजिर रहते हक्त । वे भी महा परिग्रह के स्वामी ममत्व लोभ लालसा की अग्नि के शा त नहीं होने से अ त में अतृप्त पणे ही मर जाते हक्त अर्थात् वे भी अपने विशाल परिग्रह सुख भोग से स तुष्ट नहीं हो पाते तो सामान्य प्राणियों का तो कहना ही क्या ?

(५) अन्य भी अनेक सामान्य मनुष्य तिर्यंच अपने-अपने प्राप्त परिग्रह– धन, स पत्ति, कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, पुत्र, सुख भोग सामग्री, खान-पान, वस्त्र, उपकरण, मकान, दुकान आदि में तथा जीवन के जो भी साधन और यह शरीर है इसमें ममत्व मूर्छा रखते हक्त; अप्राप्त की सदा लालसा चाहना उनको बनी रहती है । ये भी लालसा की लाय शा त न होने से महापरिग्रही कहे जाते हक्त और अतृप्त अस तुष्ट ही मर जाते हक्त ।

परिग्रह का उपार्जन–कई लोग परिग्रह स ग्रह के लिए कई प्रकार की विद्याएँ–६४, कलाएँ–७२ सीखते हक्त । असि, मसि, कृषि कर्म करते हक्त, विविध व्यापार वाणिज्य खेती कारखाने आदि सैकड़ों उपाय करके धन स ग्रह करने के लिए जीवन पर्यन्त इधर-उधर भ्रमण करते रहते हक्त एव मानो नाचते रहते हक्त ।

(६) परिग्रह स ग्रह के लिए कई लोग अनेक हिंसक कृत्य करते हक्त, झूठ अनैतिक कृत्यों का सेवन करते हक्त, क्रोध मान माया लोभ कलह झगड़ा वैर विरोध बढ़ाते रहते हक्त । इच्छा तृष्णा गृद्धि लोभ में ग्रस्त रहते हक्त । इस प्रकार परिग्रह के पाश में समस्त स सार के प्राणी फँसे हुए हक्त ।

प्रश्न–३ : परिग्रह आसक्ति का परिणाम किस प्रकार दर्शाया गया हैक्त ?

उत्तर– परिग्रह में आसक्त बने हुए प्राणी उनके उपार्जन में, उपभोग में एव स रक्षण में, अनेक प्रकार के पापकर्मों का आचरण करके कर्मस ग्रह करते रहते हक्त । वे इस लोक में भी सुगति सन्मार्ग और सुखशान्ति से नष्ट भ्रष्ट होते हक्त, अज्ञान, मोह, अ धकार में डूबते रहते हक्त, लोभ के वश में पड़े हुए विवेक विकल होकर भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि कष्टों को सहन करते हक्त । अ त में वह सारा परिग्रह परवशपने छोड़कर तथा उसके ममत्व आसक्ति से बद्ध कर्मोंके साथ नरकगति, तिर्यंचगति आदि स सार अटवी में परिभ्रमण करते हक्त और महान दुःखों को भोगते रहते हक्त ।

विवेकवान विज्ञजनों को इस परिग्रह लोभ तृष्णा के पाश से मुक्त रहकर अपनी आत्मा की दुर्दशा से सुरक्षा कर लेनी चाहिये । अनादि काल से स सार में यह परिग्रह का प्रप च लगा हुआ है । भवो भव में विविध परिग्रहों को और स्वर्गलोक को भी छोड़-छोड़ कर यह जीव मरता रहता है और यहाँ से भी छोड़कर एक दिन मर जाना पड़ेगा । अतः ज्ञान और विवेक के द्वारा स्वेच्छा से ही स तोष एव वैराग्य भावना धारण करके, इस परिग्रह का स पूर्ण त्याग करना ही आत्मा के लिए श्रेयस्कर है । स पूर्ण त्याग स भव न हो तो भी आशा तृष्णा के रोक लगाकर परिग्रह की सीमा मर्यादा कर, अवशेष स पूर्ण परिग्रह से निवृत्त हो जाना चाहिये । ऐसा करने से प्राणी स सार में रहते हुए भी परिग्रह के इन कटु परिणामों से मुक्त रह सकता है और इस प्रकार एक दिन स पूर्ण परिग्रह का त्यागी बन कर स सार भ्रमण से सदा के लिये मुक्त हो सकता है ।

प्रश्न–४ : इन पाँच आश्रवद्वारों के वर्णन में अन्य किन-किन विषयों का विस्तृत वर्णन है ?

उत्तर– प्रस्तुत में विविध विषयों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए भी कुछ ज्ञातव्य विषयों का समावेश नहीं किया जा सका है जो सूत्र में वर्णित है, यथा–जलचर, स्थलचर, खेचर के विभिन्न नाम है । जिसमें वानर को चौपगा पशु में गिना है, आसालिया और महोरग की भी हिंसा मानव द्वारा किया जाना बताया है । अतः महोरग मध्यम अवगाहना वाले ढ़ाई द्वीप में हो सकते हक्त । उत्कृष्ट अवगाहना वाले ढ़ाई द्वीप के बाहर होते हक्त, ऐसा समझ लेना चाहिये । अनार्य देश के ५४ नाम सूचित किए हक्त, नास्तिकवादी अनेक मता तरियों के सिद्धा तों का कथन है । अनेक हिंसक आदेश, उपदेश, प्रेरणाओं के प्रकार, युद्ध की तैयारी एव युद्ध स्थल की विभत्सता, समुद्री ड़ाके का विस्तृत वर्णन, स सार और समुद्र की विस्तृत उपमा, चक्रवर्ती के शुभ लक्षण एव उनकी ऋद्धि, बलदेव वासुदेवों की शारीरिक एव भौतिक समृद्धि, युगलिक पुरुष के एव स्त्री के स पूर्ण अ गोपा गो का पृथक-पृथक विस्तृत वर्णन किया गया है । उनके प्रशस्त ३२ लक्षण भी कहे हक्त ।

इन पाँच आश्रवों के निमित्त से जीव प्रति समय कर्म स चय करके चार गति रूप स सार में परिभ्रमण करते रहते हक्त । कई पुण्यहीन प्राणी तो धर्म का श्रवण ही नहीं कर पाते हक्त । कई मिथ्या दृष्टि अधार्मिक निकाचित ब ध वाले अथवा प्रमादी धर्म का आचरण नहीं कर सकते । तीर्थंकर भगव तों ने समस्त रोगों दुःखों का नाश करने के लिये गुणयुक्त मधुर विरेचन औषध बताई है किन्तु निःस्वार्थ भावसे और निःशुल्क दी जाने वाली इस औषध का भी कोई सेवन ही न करे उसका तो क्या किया जा सकता है ? जो मतिमान विज्ञ पुरुष इन पाँच आश्रवों को समझ कर इनका त्याग करते हक्त वे एक दिन कर्मरज से सर्वथा रहित होकर सर्वोत्तम सिद्धि (मुक्ति)प्राप्त करते हक्त ।

प्रश्न–५ : स पूर्ण शरीर के वर्णन की पद्धति किस प्रकार होती है ?

उत्तर– तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शरीर का वर्णन औपपातिक सूत्र में हक्त । वहाँ वह वर्णन मस्तक से प्रार भ करके क्रमशः पाँव तक पूर्ण किया है । यहाँ अध्ययन–४ में युगलिक मनुष्य-मनुष्याणी के शरीर का वर्णन है, वह पाँव से प्रार भ करके मस्तक तक पूर्ण किया गया है । इससे यह परिज्ञान होता है कि समस्त स सारी जीवों के शरीर वर्णन पद्धति से तीर्थंकर

के शरीर वर्णन की पद्धति भिन्न-अलग होती है । मूर्तियों का वर्णन भी पाँव से प्रार भ होकर मस्तक तक पूर्ण होता है । जीवाभिगम सूत्र में विजय देव की राजधानी के वर्णन में जिनपड़िमा का वर्णन है वहाँ पाँव से प्रार भ कर मस्तक तक वर्णन पूर्ण किया है । उससे भी स्पष्ट होता है कि वह जिनपड़िमा तीर्थंकर की नहीं कि तु जिन शब्द के अनेक अर्थ होने से अन्य किसी की हो सकती है क्यों कि तीर्थंकर का वर्णन मस्तक से प्रार भ करने की पद्धति शास्त्र में स्वीकारी गई है।

प्रश्न–६ : श्रेष्ठ शरीर बत्तीस लक्षणा कहा जाता है शास्त्र में शरीर के कितने लक्षण कहे गये हैं

उत्तर– सामान्यतया मनुष्य ३२ लक्षण वाला योग्य कहा जाता है । प्रस्तुत शास्त्र में युगलिक के स्त्री, पुरुष दोनों के ३२–३२ लक्षण युक्त शरीर कहा है । श्री औपपातिक सूत्र में तीर्थंकरों के शरीर को १००८ लक्षणों से युक्त कहा गया है । चक्रवर्ती के १०८ लक्षण युक्त शरीर कहा जाता है । प्रस्तुत शास्त्र में चक्रवर्ती के लक्षण खुलासेवार कहे है पर तु गिनने पर वे १०८ नहीं होकर ८५ होते हक्त । स भवतः लिपि दोष से कम हो गये हो ऐसी स भावना की जा सकती है । युगलिक स्त्री के वर्णन में ३२ लक्षणों के नाम स्पष्ट दिये हक्त । तीर्थंकर के १००८ लक्षण मूलपाठ में कहे जाते हक्त कि तु उनका खुलासा कहीं देखने में नहीं आता है । कुछेक लक्षण मूलपाठ में होते हक्त ।

३२ लक्षण इस प्रकार है– (१) छत्र (२) ध्वजा (३) यज्ञस्त भ (४) स्तूप (५) दामिनी–माला (६) कम ड़लु (७) कलश (८) वापी (९) स्वस्तिक (१०) पताका (११) यव (१२) मत्स्य (१३) कच्छप (१४) प्रधान रथ (१५) मकरध्वज(कामदेव) (१६) वज्र (१७) थाल (१८) अ कुश (१९) अष्टापद–जुगार खेलने का पट या वस्त्र (२०) स्थापनिका–ठवणी (२१) देव (२२) लक्ष्मी का अभिषेक (२३) तोरण (२४) पृथ्वी (२५) समुद्र (२६) श्रेष्ठ भवन (२७) श्रेष्ठ पर्वत (२८) उत्तम दर्पण (२९) क्रीड़ारत हाथी (३०) वृषभ (३१) सि ह (३२) चामर । ये लक्षण हाथ में या पाँव में अथवा अन्य किसी शरीरावयव में रेखा आदि रूप में हो सकते हक्त ।

प्रश्न–७ : चक्रवर्ती वासुदेव के राणियाँ कितनी होती है ?

उत्तर– अर्धभरत क्षेत्र में १६ हजार देश होते है और स पूर्ण भरतक्षेत्र में ३२ हजार देश होते हक्त । वासुदेव के वर्णन में यहाँ पर स्पष्ट १६ हजार राणियाँ

कही है। अ तगड़ सूत्र में भी १६००० राणियाँ मूलपाठ में कही है। चक्रवर्ती के ३२००० देश की अपेक्षा ३२००० राणियाँ होती है कि तु उनके वर्णन में यहाँ और अन्यत्र ६४ हजार राणियाँ कही गई है। उसमें ३२ हजार ऋतु-कल्याणिका और ३२ हजार जनपद कल्याणिका राणियाँ कही जाती है। जिससे कुल ६४ हजार की स ख्या सर्वत्र एक समान मिलती है। अन्य विशेष स्पष्टीकरण कहीं देखने में नहीं आया है। ये ऋद्धिस पन्न पुरुष चक्रवर्ती आदि वैक्रिय लब्धिस पन्न होते हक्त और महा पुण्यशाली होते हक्त। उस पुण्य उदय के कारण और भोगावली कर्म उदय के कारण लब्धिस पन्न इन पुरुषों के इतनी राणियों का होना कोई अस गत जैसा नहीं होता है। चौथे आरे में अन्य भी अनेक पुण्यशाली मनुष्य वैक्रिय लब्धि युक्त हो सकते हक्त। उसी कारण ३२,५०,५०० आदि कन्याओं के साथ पाणिग्रहण होने का प्रस ग-वर्णन योग्य बनता है। कथा वर्णनों में कृष्ण वासुदेव के पिता वसुदेवजी के स्त्रीवल्लभ होने का नियाणा और अखूट पुण्य स चय होने से चक्रवर्ती से भी अधिक राणियाँ(७२०००)होने का कहा जाता है। ज्ञातासूत्र में कृष्ण वासुदेव के रुक्मणी प्रमुख ३२००० राणिया स्पष्ट कही गई है जो चक्रवर्ती की राणियों से आधी स ख्या रूप समझी जा सकती है।

प्रश्न–८ : स्त्रियों की ६४ कलाएँ कौन-कौन सी है ?

उत्तर– आगमों में पुरुष की ७२ कलाएँ और स्त्री की ६४ कलाएँ अनेक जगह वर्णित है। पुरुष की ७२ कलाएँ समवाया ग सूत्र के प्रश्नोत्तर में दी गई है, स्त्री की ६४ कलाएँ इस प्रकार है–(१) नृत्यकला (२) औचित्यकला (३) चित्रकला (४) वादिंत्र (५) म त्र (६) त त्र (७) ज्ञान (८) विज्ञान (९) द ड़ (१०) जलस्त भन (११) गीतगान (१२) तालमान (१३) मेघवृष्टि (१४) फलवृष्टि (१५) आरामरोपण (१६) आकारगोपन (१७) धर्मविचार (१८) शकुनविचार (१९) क्रियाकल्पन (२०) स स्कृतभाषण (२१) प्रसादनीति (२२) धर्मनीति (२३) वाणीवृद्धि (२४) सुवर्णसिद्धि (२५) सुरभितैल (२६) लीलास चरण (२७) हाथी-घोड़ा परीक्षण (२८) स्त्री-पुरुष लक्षण (२९) सुवर्ण-रत्नभेद (३०) अष्टादशलिपि ज्ञान (३१) तत्काल बुद्धि (३२) वस्तुसिद्धि (३३) वैद्यकक्रिया (३४) कामक्रिया (३५) घटभ्रम (३६) सारपरिश्रम (३७) अ जनयोग (३८) चूर्णयोग (३९) हस्तलाघव (४०) वचनपटुता (४१) भोज्य विधि (४२) वाणिज्यविधि (४३) मुखम ड़न (४४) शालिख ड़न (४५) कथा कथन (४६) पुष्पग्रथन (४७) वक्रोक्ति जल्पन (४८) काव्यशक्ति (४९)

स्फारवेश (५०) सकल भाषाविशेष (५१) अभिधानज्ञान (५२) आभरण परिधान (५३) नृत्य उपचार (५४) गृहआचार (५५) शाठ्यकरण (५६) पर-निराकरण (५७) धान्य र धन (५८) केशब धन (५९) वीणादिनाद (६०) वित ड़वाद (६१) अ कविचार (६२) लोकव्यवहार (६३) अ त्याक्षरी (६४) प्रश्न प्रहेलिका।

स वरद्वार

प्रथम अध्ययन : अहिंसा

प्रश्न–१ : इस "स वरद्वार" विभाग का परिचय क्या है एव पाँच स वर का स्वरूप किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर– प्रथम श्रुतस्क ध में पाँच आश्रव द्वारों का अर्थात् हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पाँच मौलिक पापस्थानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। तदन तर इस द्वितीय श्रुतस्क ध में इन पाँचों का त्याग रूप अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच स वर द्वारों का विस्तार से स्वरूप समझाया गया है।

यों अन्यान्य आगमों में एव जैन साहित्य में आश्रव-स वर के अपेक्षा से अनेक भेद भी किए हक्त। किन्तु यहाँ स क्षिप्त अपेक्षा से इन पाँच भेदों में स पूर्ण आश्रवों को अ तर्भावित करते हुए वर्णन किया गया है। वास्तव में आगमों में कई तत्त्वों के भेदों की स ख्या के लिए कोई भी एक दीवार नहीं होती है। यथा– जीवों के भेद २ से लेकर ५६३ तक कह दिए जाते हक्त देवता के भेद ४, २४, १९८ तक कह दिए जाते हक्त। अतः अपेक्षा से यहाँ ५–५ आश्रव स वर का वर्णन होते हुए भी इन प्रचलित विभिन्न स ख्याओं का कोई विरोध नहीं समझना चाहिये। स वर के उत्कृष्ट–५७ एव मध्यम–२० भेद भी कहे जाते है।

इस प्रकरण में स वर का वर्णन करते हुए अहिंसा आदि पाँचों का स्वरूप एव महत्त्व आदि बताने के साथ-साथ हिंसादि के सर्वथा त्याग रूप स वर को प्रमुखता देकर स यम के प्रमुख गुण पाँच महाव्रतों का स्वरूप स्पष्ट किया गया है एव उसका महत्त्व बताया गया है। उन महाव्रतों की सुरक्षा के लिये प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ अर्थात् उन महाव्रतों की सफल निर्बाध आराधना कराने वाली सावधानी रूप प्रवृत्तिया कही

गई है । उनका यथार्थ पालन करने से ही महाव्रतों का पालन होता है । जिन प्रमुख प्रवृत्तियों के माध्यम से आत्मा में कर्मों का आगमन होता है वे प्रवृत्तिया आश्रव कही जाती है और जिन मुख्य सदनुष्ठानों से आत्मा में कर्मों का आगमन रूकता है, वे स वर कहे जाते हक्त । इस दूसरे श्रुतस्क ध में पाँच स वरद्वारों का विषद् वर्णन किया गया है ।

पाँच स वर का स्वरूप– ये पाँचों स वर पाँच महाव्रत रूप है, तप-स यम रूप है, समस्त हितों के प्रदाता है, कर्म रज विदारक हक्त, चतुर्गति भ्रमण को रोकने वाले हक्त, सैकड़ों भवों का अन्त करने वाले हक्त, विपुल दुःखों से छुड़ाने वाले एव विपुल सुखों को प्राप्त कराने वाले हक्त । कायर पुरुषों के लिए इनका आचरण दुष्कर है अर्थात् जिनका मनोबल हीन दशा में है, जो इन्द्रियों के दास हक्त, मन पर निय त्रण नहीं कर सकते, धैर्यहीन है, सहनशील नहीं है, वे प्रथम तो महाव्रतों को धारण ही नहीं करते, कदाचित् धारण कर भी ले तो वे कायर पुरुष बीच में ही भ्रष्ट हो जाते, शिथिल हो जाते है अर्थात् साधु वेश में रहते हुए भी असाधुजीवन व्यतीत करते हक्त ।

किन्तु धैर्यशाली दृढ़ मनोबली सत्पुरुष सूरवीरता से परीषह उपसर्गों का सामना करते हुए सहज और निश्चल भाव से स यम नियमों को पालते हक्त । वे मन और इन्द्रियों को विवेक पूर्वक अ कुश में रखते हक्त । उनके लिये पाँचों महाव्रत मोक्ष में पहुँचने के मार्ग है अथवा कर्म रज अवशेष रहे तो स्वर्ग प्रदान करने वाले हक्त ।

आश्रव के जितने भेद-प्रभेद होते है उसके प्रतिपक्षी उतने ही स वर के भेद होते है । तथापि स यम के महाव्रत समिति गुप्ति आदि जितने भी भेद-प्रभेद होते है उन सबका स वर तत्त्व में समावेश होता है ।

प्रश्न–२ : अहिंसा का स्वरूप क्या है और उसके पर्यायवाची नाम कितने कहे गये हक्त ?

उत्तर– यह निर्ग्रंथ प्रवचन तीर्थंकर भगव तों ने स सार के समस्त जीवों की दया–अनुकम्पा के लिए और उनकी रक्षा के लिए कहा है अर्थात् अहिंसा की प्रमुखता से ही तीर्थंकर उपदेश देते हक्त । यों भी सभी महाव्रतों में मुख्य अहिंसा महाव्रत ही है इसी की सुरक्षा के लिये ही शेष चारों महाव्रत है अर्थात् शेष चारों महाव्रतों से भी अहिंसा महाव्रत की पुष्टि होती है ।

ऐसा अहिंसा प्रधान, समस्त जीवों की अनुकम्पा–रक्षाप्रधान यह प्रवचन, आत्मा के लिए हितकर है, इस भव पर भव दोनों में कल्याण

करने वाला है । अन्य प्रवचनों सिद्धा तों में यह अणुत्तर, श्रेष्ठतम, सर्वोत्तम है और समस्त पापों व दुःखों को उपशा त करने वाला अर्थात् उनका अ त करने वाला है ।

जिस प्रकार भयभीत के लिये शरण, पक्षियों के लिए आकाश, भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, समुद्र में डूबते के लिए जहाज, रोग से पीड़ितों को औषध और अटवी में सार्थवाहों का स घ, प्राणी को सुखावह होता है उससे भी अधिकतर यह अहिंसा भगवती त्रस स्थावर समस्त प्राणियों के लिए महान कुशल, क्षेम, म गलकारी और सुखावह है ।

अहिंसा भगवती के पर्यायवाची साठ नाम– (१) द्वीप त्राण शरण गति प्रतिष्ठा (२) निर्वाण (३) निर्वृत्ति (४) समाधि (५) शक्ति (६) कीर्ति (७) का ति (८) रति (९) विरति (१०) श्रुत का अ ग (११) तृप्ति (१२) दया अनुक पा–कष्ट पाते, मरते या दुःख पाते प्राणियों की करूणा प्रेरित आत्म भावों से रक्षा करना यथाशक्ति दूसरे के दुःख का निवारण करना । (१३) विमुक्ति (१४) क्षमा (१५) सम्यक् आराधना (१६) महती–विशाल (समस्त व्रतों को समाविष्ट करते वाली) (१७) बोधि (१८) बुद्धि को सार्थक बनाने वाली (१९) धृति (२०) समृद्धि(सब प्रकार की स पन्नता) (२१) ऋद्धि–लक्ष्मी (२२) वृद्धि (२३) स्थिति (२४) पुष्टि (२५) न दा–आन दकारी (२६) भद्रा–कल्याणकर (२७) विशुद्धि (२८) लब्धि (२९)विशिष्ट दृष्टि–अनेका त दृष्टि (३०) कल्याण (३१) म गल (३२) प्रमोद (३३) विभूति–आध्यात्मिक ऐश्वर्य (३४) रक्षा (३५) सिद्धावास (३६) अनाश्रव (३७) केवलिस्थान (३८) शिव (३९) समिति (४०) शील (४१) स यम (४२) सदाचार (४३) स वर (४४) गुप्ति (४५) व्यवसाय (४६) उन्नति (४७) यज्ञ (४८) आयतन–गुणों का घर (४९) अप्रमाद (५०) आश्वासन–तसल्ली (५१) विश्वास (५२) अभय (५३) अमारी (५४) चोखी–भली (५५) पवित्रा (५६) शुचि (५७) पूला (५८) विमला ***(५४ से ५८ तक अच्छी-भली, निर्मल, निष्कल क, शुद्ध, पवित्रा आदि अर्थों व भावों के सूचक नाम है)*** (५९) प्रभाषा प्रकाशमान (६०) निर्मलतरा ।

विभिन्न अपेक्षाओं से परिपूर्ण ये गुण निष्पन्न नाम है । इन नामों के द्वारा अहिंसा का स्वरूप, अहिंसा का महत्व एव अहिंसा का व्यापक अर्थ स्पष्ट होता है ।

प्रश्न–३ : अहिंसा स वर का परिपूर्ण पालन क्या कोई कर सकते हक्त ?

उत्तर– इस अहिंसा भगवती का त्रिलोकपूजित केवलज्ञान-दर्शन के धारक समस्त जगत के जीवों के प्रति वात्सल्य भाव धारण करने वाले तीर्थंकर प्रभू ने सम्यक् रूप से कथन किया है ।

अनेक विशिष्ट ज्ञानी, लब्धिधारी, विविध तपोनिरत तपस्वी, धीरमति, अतिशय लोकोत्तर बुद्धि सम्पन्न, आहार विहार में अतिशय स पन्न, नित्य शील स्वाध्याय ध्यान में लीन, महाव्रत धारी, समिति गुप्तिव त, छः काय के रक्षक, नित्य अप्रमत्त रहने वाले, श्रेष्ठ मुनिवरों ने एव स्वय तीर्थंकर भगव तो ने इस अहिंसा भगवती का सम्यक् पालन किया है अर्थात् यह जिनेश्वरों के द्वारा प्ररूपित एव आसेवित तथा अनेकानेक महामुनियों द्वारा आसेवित है । अन्य भी ऐसे या सामान्य अन त जीवों ने अहिंसा महाव्रत का आराधन किया है, वर्तमान में लाखों जीव कर रहे हक्त और भविष्य में भी अन तान त जीव इस अहिंसा महाव्रत का परिपूर्ण पालन कर मुक्ति प्राप्त करेंगे ।

प्रश्न–४ : मानव के लिये जीवन में आहार आदि अनेक आवश्यकताएँ होती है उनकी पूर्ति के लिये हिंसा=आर भ-समार भ करने पड़ते हक्त, तो अहिंसा धारक अपना शरीर निर्वाह बिना हिंसा के किस तरह करते हक्त अर्थात् उनका अहिंसामय आहार विहार किस तरह होता है ?

उत्तर– शरीर और आयुष्य को धारण करने के लिये मनुष्य मात्र को आहार की आवश्यकता होती है । बिना आहार के दीर्घकाल तक स यमचर्या का आराधन नहीं हो सकता। अतः जिनेश्वर भगव तो ने पूर्ण असावद्य–पाप रहित अहिंसक वृत्ति आहार के लिए निर्दिष्ट की है, वह इस प्रकार है–

अहिंसक मुनि को पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति आदि स्थावर एव समस्त त्रस प्राणियों के प्रति पूर्ण स यम एव दया अनुक पा के लिये निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए । वह आहार नव कोटि से शुद्ध होना चाहिए- (१–३) साधु स्वय आहार के लिये हिंसा न करे, न कराए, न ही अनुमोदन करे । (४–६) स्वय आहार न पकावे, न पकवावे, पकाने का अनुमोदन भी न करे । (७–९) स्वय न खरीदे, न खरीदवाए, खरीद कर देने वाले का अनुमोदन भी न करे, ये नव कोटिया है । मन वचन काया तीनों योगों से इसका शुद्ध पालन करे । उद्गम, उत्पादना और एषणा के यों ४२ दोषों से रहित शुद्ध आहार प्राप्त करे । पूर्णतया जीव रहित अचित्त एव निःश क आहार पानी की गवेषणा करनी चाहिए ।

आहार ग्रहण करने के लिए गृहस्थ के घर धर्म कथा न कहे ।

शुभाशुभ सूचक लक्षण स्वप्न फल ज्योतिष निमित्त आदि का कथन न करे । जादू म तर आदि चमत्कारों का प्रयोग न करे । किसी का व दन, सन्मान सत्कार आदि करके भिक्षा प्राप्त न करें । किसी की भी हीलना निंदा तिरस्कार न करे, किसी को भयभीत करना या ताड़ना-तर्जना करना आदि न करे, अभिमान मायाचार गुस्सा या दीनता न करे, मित्रता प्रार्थना (गुणग्राम) या सेवा करके आहार की प्राप्ति नहीं करनी चाहिए ।

अज्ञात स्थानों घरों से ***(जहाँ साधु के जाने के पहले उसके आने की कोई जानकारी या तैयारी नहीं हो वहाँ से)*** भिक्षा प्राप्त करनी चाहिए । भिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार का आसक्ति भाव, द्विष्टभाव(नाराजी भाव) न हो, दीनभाव, उदासीभाव न हो, हताशा व हीनभाव न हो, दयनीय न बने, किसी प्रकार के खेद का अनुभव कर खेद खिन्न न बने, घबराया हुआ थका हुआ सा न बने अर्थात् परेशानी का अनुभव न हो किन्तु स यम निर्वाह, चारित्र निर्माण, विनय क्षमा आदि गुण वृद्धि की चेष्टा से युक्त होकर, साधु को आहार पानी की गवेषणा करनी चाहिए ।

इस प्रकार साधु की आहार प्राप्ति भी द्रव्य एव भाव से पूर्ण अहिंसक, असावद्य अर्थात् पाप रहित कही गई है । इसका यथार्थ पालन करने से ही भिक्षु पूर्ण अहिंसक बनता है ।

प्रश्न–५ : अहिंसा महाव्रत की सुरक्षा के लिये किन-किन नियमों का सूक्ष्मतम पालन किया जाता है ?

उत्तर– स पूर्ण अहिंसा पालक पाँच महाव्रतधारी श्रमणों के प्रत्येक महाव्रत की सावधानीपूर्वक सुरक्षा एव सम्यक् आराधना के लिये पाँच-पाँच भावनाएँ कही गई है। जिससे उन महाव्रतों का यथार्थ पालन सहज शक्य बन जाता है । अहिंसा महाव्रत की वे पाँच भावनाएँ इस प्रकार है–

प्रथम भावना : ईर्या समिति– खड़ा होना बैठना चलना या अन्य प्रवृत्ति करना विवेक युक्त हो । चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि को सावधानी पूर्वक देखकर चले, चलने में प्रत्येक त्रस स्थावर प्राणी की दया में तत्पर होकर फूल पत्ते कोंपल क दमूल मिट्टी पानी बीज छिलके दूब हरी घास आदि को बचाते हुए यतना के साथ चले । चलते समय या अन्य समय में किसी भी प्राणी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। निंदा गर्हा नहीं करनी चाहिये । उनकी हिंसा छेदन भेदन नहीं करना चाहिये, उन्हें व्यथित नहीं करना चाहिये । लेशमात्र भी किन्हीं जीवों को भय या दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए ।

इस प्रकार साधु ईर्या समिति में मन वचन काय से भावित होकर, मलिनता रहित, स क्लेश रहित एव निरतिचार चारित्र का पालन करे ।

दूसरी भावना : मन समिति– मन से पापकारी, अधार्मिक, क्रूर, वध-ब धन, भय, मरण आदि रूप किसी को पीड़ित करने के चि तन नहीं करे किन्तु निर्मल, पवित्र, स क्लेश रहित मन के परिणाम रखें । मन को सदा स्वच्छ, शा त और समभाव में रखें ।

तीसरी भावना : वचन समिति– पापकारी परिणतियों से युक्त होकर कि चित् भी सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए अर्थात् कठोर, कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, मर्मयुक्त, पापप्रेरक, गृहस्थ को आओ जाओ आदि की प्रेरणा युक्त वचनों का प्रयोग नहीं करना, क्रोध मान माया लोभ के वशीभूत होकर नहीं बोलना । हास्य विनोद, भय, वाचालता, विकथा में प्रेरित मति से वचन प्रयोग न करना । इन सब का पूर्ण ध्यान रखते हुए अत्यावश्यक, मृदु(मधुर) असावद्य विवेक युक्त भाषा बोले । किसी को कि चित भी पीड़ाकारी हो ऐसा वचन न बोले ।

चोथी भावना : एषणा समिति– पूर्वोक्त शुद्ध गवेषणा करके मुनि माधुकरी वृत्ति से आहार लेकर गुरू के पास आवे, गमनागमन का प्रतिक्रमण करे, गुरु के समक्ष आलोचना करके आहार दिखावे, फिर अप्रमत्त भाव से पुनः दोषों की निवृत्ति के लिए कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण करे, फिर शा त भाव युक्त सुखासन से बैठकर कुछ समय शुभ योग, ध्यान, स्वाध्याय में व्यतीत करते हुए धर्म मन, अविमन, सुखमन, अविग्रहमन, समाधिमन, श्रद्धास वेग निर्जरा युक्तमन, जिन वचन के प्रति प्रगाढ़ वत्सलता युक्त मन वाला होकर अर्थात् पूर्ण पवित्र प्रसन्न मन होकर खड़े होवे, गुरु रत्नाधिक को क्रम से आहार का निम त्रण करे(दूर हो तो खड़े होवे एव अत्य त निकट ही बैठे हो तो बैठे बैठे ही श्रद्धा भक्ति विनय युक्त होकर निम त्रण करे) एव भावपूर्वक देवे । फिर उचित आसन पर बैठे । स पूर्ण शरीर का प्रमार्जन कर हाथ का प्रमार्जन करे । फिर मूर्च्छाभाव, गृद्धि भाव से रहित होकर आकुलता, लोलुपता, लालसा रहित, परमार्थ बुद्धि वाला होकर भिक्षु ज्ञातासूत्र कथित दृष्टा तों के चि तन को उपस्थित करते हुए आहार करे ।

आहार करते समय मुँह से चव-चव, सुड़-सुड़ आवाज न करते हुए विवेक पूर्वक खावे, जल्दी-जल्दी उतावल से न खावे, अत्य त धीमे आलस्य आदि करते हुए न खावे अथवा बीच में अन्य बातों में, कार्यों में

समय व्यतीत न करे, भोजन को भूमि पर न गिराते हुए चौड़े पात्र में यतना पूर्वक एव आदर पूर्वक आहार करे ।

रसवृद्धि हेतु स योग मिलाना या आहार की निंदा प्रश सा करना वगैरह आहार के प्रति अत्य त ग्लान भाव या अति हर्ष भाव आदि न करे, जैसा मिला है वैसा विरक्त भाव से खावे । मर्यादित खावे अर्थात् गाड़ी की धुरी में तेल देने या घाव पर मल्हम लगाने के समान, केवल स यम निर्वाह के लिए, जितना आवश्यक हो, उतना आहार करे । इस प्रकार आहार समिति का भिक्षु समुचित रूप से निरतिचार पालन करे ।

यह साधु की भोजन विधि कही गई है । अन्य भी इस विषयक वर्णन दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, ज्ञातासूत्र आदि में कहा गया है, उन समस्त विधि विवेक नियमों का ज्ञान करके उसका भावपूर्वक यथार्थ रूप से पालन करना चाहिए ।

पाँचवीं भावना : आदान निक्षेपणा समिति– स यम की रक्षा के लिए अथवा गर्मी, सर्दी, जीव ज तु, मच्छर आदि से शरीर की रक्षा के लिए भिक्षु वस्त्र, पात्र, पाट, स स्तारक, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि को राग द्वेष ममत्वादि न करते हुए धारण करे । उन उपकरणों को यतना से रखे यतना से उठावे, उभय काल यतना से प्रतिलेखन करे, आवश्यक होने पर यतना से झटकावे(ख खेरे), यतना से प्रमार्जन करे । दिन में एव रात में सदा अप्रमत्त भाव से, सावधानी पूर्वक ही सभी प्रवृत्ति करे ।

यहाँ उपलक्षण से परठने की पाँचवीं समिति भी समझ लेनी चाहिये अर्थात् मल-मूत्र श्लेष्म आदि शरीर से निष्कासित पदार्थ को यतना से, विवेक पूर्वक, किसी को दुग छा–घृणा न आवे, इस तरह परठे । परठने की भूमि किसी के स्वामित्व में हो तो उसकी आज्ञा प्राप्त करे । किसी के स्वामित्व में न हो तो **"शक्रेन्द्र की आज्ञा"** ऐसा बोलकर उसकी याचना कर फिर वहाँ परठे । उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन–२६ में कही विधि से एव निशीथ सूत्र कथित विधि एव दोषों का विवेक रखते हुए मल-मूत्र आदि को परठना चाहिये ।

इस प्रकार प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाओं में पाँचों समितियों का सम्यग् आराधन सूचित किया गया है । मन की पवित्रता रखने की प्रेरणा की गई है । तात्पर्य यह है कि हमारे भाव पूर्ण अहिंसक हो और प्रवृत्ति भी सम्यक् हो, यही इन पाँच भावनाओं का उद्देश्य है ।

इस प्रकार पाँच भावनाओं युक्त प्रथम स वरद्वार प्रथम महाव्रत अहिंसा का स्वरूप हक्त । इसका सदा मृत्यु पर्यंत पालन करना चाहिए ।

प्रश्न-६ : शरीर है जब तक क्या स पूर्ण अहिंसा का पालन हो सकता है ?

उत्तर- जिस प्रकार पानी से भरा गिलास उल्टा कर देने पर उसमें से स पूर्ण पानी निकल जाना कहा जाता है । तथापि पानी की गिलास में कुछ कुछ पानी लगा रहता है, वह व्यवहार से नगण्य हो जाता है । इसी व्यवहार नय से श्रमण को तीर्थंकरों ने अपेक्षा विशेष से ही स पूर्ण अहिंसक कहा है । जिसमें वह स्वय तीन करण तीन योग से हिंसात्याग करता है और आवश्यक तथा जिनाज्ञा युक्त प्रवृत्तियाँ स यम से यतनापूर्वक करते हुए उसे पापकर्म रूप कर्म का ब ध नहीं होना भी दशवैकालिक में कहा है तथा दशवैकालिक सूत्र में श्रमण के ५ महाव्रत और ६ काय हिंसा-विराधना का त्याग किस प्रकार का होता है वह भी सैद्धा तिक दृष्टि युक्त स्पष्टीकरण के साथ कहा गया है ।

उसी अध्ययन से नवदीक्षित श्रमण को पुनः महाव्रतारोपण बड़ी दीक्षा का पाठ पढ़ाया जाता है । इस दीक्षापाठ से भी स्पष्ट होता है कि प्राप्त शरीर से १३ वें गुणस्थान तक स्वतः अनायास वायुकाय आदि की जो विराधना होती रहती है, उसे नगण्य गिना जाता है । इस दृष्टि से छट्ठे गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक के स पूर्ण अहिंसक श्रमणों में से छट्ठे गुणस्थान में प्रमाद से और आगे के गुणस्थान में शरीर निमित्तक स्वतः विराधना चालू होती है, वह नगण्य होती है । उसके रहते भी तीर्थंकरों ने(आगमकारों ने) श्रमणों को स पूर्ण अहिंसक व्यवहार नय से स्वीकारा है । इस व्यवहारनय में प्रविष्ट छट्ठे गुणस्थान के अहिंसक श्रमण साधना में प्रगति करते हुए, उदय कर्मांशों को न्यून करते हुए, एक दिन तेरहवें गुणस्थान के सर्वज्ञ अहिंसक बन कर यथासमय १४ वें गुणस्थान के योग रहित अहिंसक बन जाते हक्त फिर वे ही शरीर रहित अहिंसक सिद्ध अवस्था में नगण्यता रहित सर्व अहिंसक बन जाते हक्त । तात्पर्य यह है कि निश्चय नय के सर्व अहिंसक बनने हेतु व्यवहार नय के सर्व अहिंसक श्रमण होना आवश्यक है । अतः स पूर्णशक्य स्ववश की हिंसा त्याग तीन करण तीन योग से एव सभी नियम उपनियम के साथ किये जाने के कारण श्रमण को सर्व अहिंसक या अहिंसा महाव्रत पालक कहना सर्वथा उचित ज्ञानियों ने स्वीकारा है ।

वायुकाय की विराधना आदि स ब धी कुछ विश्लेषण हेतु आचारा ग प्रश्नोत्तर पिंड़ेषणा अध्ययन का १४वाँ प्रश्न पृ-१२५ देखना चाहिये ।

अध्ययन-२ : सत्य(महाव्रत)

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में सत्य का माहात्म्य किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर- यद्यपि अहिंसा की आराधना मोक्ष मार्ग में प्रमुख है तथापि उसकी समीचीन एव स पूर्ण आराधना के लिए सत्य की आराधना भी निता त आवश्यक है । सत्य अहिंसा को अल कृत करता है, सुशोभित करता है । अतः असत्य का त्याग करके सत्य को पूर्ण रूप से स्वीकार करना चाहिए ।

सत्य वचन दूसरा स वर द्वार है, यह शुद्ध निर्दोष है, पवित्र व्रत है । समस्त उपद्रवों से रहित है, प्रशस्त विचारों से उत्पन्न होने वाला, सुस्थिर कीर्ति वाला, उत्तम कोटि के देवों एव श्रेष्ठ मानवों से मान्य किया गया है, सद्गति पथ का प्रदर्शक है, यह सत्यव्रत लोक में उत्तम हक्त । सभी के लिए हितकर है, महापुरुषों द्वारा स्वीकृत है । सत्य सेवी ही सच्चा तपस्वी और नियम निष्ठ हो सकता है । सत्य की समग्र भावपूर्वक आराधना करने वाले भीषण विपत्ति में भी आश्चर्य जनक रूप से सहज छुटकारा पा जाते हक्त ।

सत्य के प्रभाव से विद्याएँ एव म त्र सिद्ध होते हक्त । सत्य, सागर से भी अधिक ग भीर और मेरू से भी अधिक स्थिर होता है; सूर्य से अधिक प्रकाशमान एव च द्र से भी अधिक सौम्य होता है ।

प्रश्न-२ : क्या कोई सत्य वचन भी बोलने के लिये निषिद्ध किये गये है ?

उत्तर- सत्य होते हुए भी अनेक प्रकार के वचन निषिद्ध हक्त, यथा-(१) जो स यम का विघातक हो, (२) जिसमें हिंसा या पाप का मिश्रण हो (३) फूट ड़ालने वाला हो (४) अन्याय का पोषक हो (५) दोषारोपण रूप हो (६) विवादपूर्ण हो (७) जो लोक में निंदनीय हो (८) भलीभाँति देखा, सुना या जाना हुआ न हो (९) आत्म प्रश सा और पर निंदा रूप हो (१०) जिसमें शिष्टाचार का उल्ल घन हो (११) द्रोह युक्त हो (१२) जिससे किसी को भी पीड़ा उत्पन्न हो, वैसा सत्य भी आश्रव युक्त है, वह सत्य महाव्रतधारी के लिए त्याज्य है ।

प्रश्न–३ : कितने प्रकार के वचन सत्य नहीं लगते हुए भी त्याज्य नहीं माने जाते हक्त अर्थात् व्यवहार ग्राह्य होते है ?

उत्तर– सत्य न होते हुए भी कुछ वचन सत्य रूप में स्वीकार्य होते हक्त्यथा– (१) किसी देश विशेष में जो शब्द प्रसिद्ध हो जैसे–माता को "आई", नाई को "राजा" यह जनपद सत्य है। (२) बहुत लोगों ने जिस शब्द का प्रयोग मान्य कर लिया यथा पटराणी को "देवी", यह सम्मत सत्य है। (३) जिसकी मूर्ति हो उस नाम से कहना अथवा शतर ज की गोटियों को हाथी घोड़ा कहना, यह स्थापना सत्य है। (४) जिसका जो नाम रख दिया गया हो और वह गुण न भी हो, यथा– नाम तो है लक्ष्मी किन्तु है भिखारण, यह नाम सत्य है। (५) साधु के गुण न हो फिर भी वेष हो उसे साधु कहना, यह रूप सत्य है।(६) किसी अपेक्षा विशेष से छोटा बड़ा कहना, यथा–पिता दीक्षा पर्याय में छोटा है पुत्र बड़ा है उन्हें छोटा बड़ा कहना, यह अपेक्षा(प्रतीत्य) सत्य है। (७) लोक व्यवहार में जो वचन रूढ़ हो जाता, यथा– "गाँव आ गया" गाँव तो आता है नहीं, फिर भी बोलना, यह व्यवहार सत्य है। (८) किसी गुण की मुख्यता हो उसकी अपेक्षा कथन करना यथा– अनेक र ग होते हुए भी मुख्य र ग का कहना, अनेक गुण होते हुए भी एक प्रमुख अवगुण होने से अवगुणी कह देना, यह भाव सत्य है। (९) स योग के कारण उस नाम से कहना यथा–द ड़ धारण से द ड़ी, यह स योग सत्य। (१०) समानता के आधार पर उपमा लगा देना यथा– चरणकमल, मुख चन्द्र आदि। ये शब्दप्रयोग करने से सत्य महाव्रत दूषित नहीं होता है।

प्रश्न–४ : सत्य महाव्रत के लिये भाषाज्ञान का और तत्स ब धी "वचन-लि ग" का कौन सा ज्ञान-विवेक उपयोगी होता है ?

उत्तर– प्राचीन काल में प्रसिद्ध छ भाषाएँ कही गई है– (१) प्राकृत (२) स स्कृत (३) मागधी (४) शौरसेनी (५) पैशाची (६) अपभ्र श। गद्य और पद्य के भेद से इनके दो प्रकार हक्त। भाषा शुद्धि के लिए १६ प्रकार का वचन ज्ञान आवश्यक है– (१–३) एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, (४–६) स्त्रीलि ग, पुरुषलि ग और नपु सक लि ग, (७–९) भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्यकाल, (१०) प्रत्यक्ष वचन–यह सज्जन है, (११) परोक्ष वचन–वह गुणवान है, (१२–१५) प्रश साकारी या दोष प्रकट करने वाले वचन की चौभ गी, (१६) आध्यात्म वचन–मन की बात अचानक प्रकट हो जाना,

सहसा बोल जाना। "कोठे सो होठे" की उक्ति चरितार्थ हो जाना। इस प्रकार ज्ञान के साथ विवेक युक्त भाषा का प्रयोग करने वाला ही सत्य महाव्रत का आराधक होता है।

प्रश्न–५ : सत्य महाव्रत की सुरक्षा के लिये किन-किन भावों का सूक्ष्मतम ध्यान रखना आवश्यक होता है ?

उत्तर– सत्य महाव्रत का सहज यथार्थ पालन हो सके एतदर्थ श्रेष्ठ पाँच भावनाएँ सुरक्षा कवच रूप कही गई है, वे इस प्रकार हक्त–

पहली भावना : चि त्यभाषण– जल्दी जल्दी सोच विचार किए बिना सहसा नहीं बोलना, चपलता से नहीं बोलना, कटुक नहीं बोलना, फरुष–पीड़ाकारी, सावद्य नहीं बोलना; इन का विचार करके हितकारी, परिमित, शुद्ध, स गत, अविरोधी, विवक्षित अर्थ को स्पष्ट करने वाली, विचार पूर्वक समय प्रस ग के अनुसार, स यती को सत्य भाषा ही बोलनी चाहिए।

बिना विचारे बोलने पर कई बार असत्य भाषा का प्रयोग हो जाता है और कई बार भीषण अनर्थ उत्पन्न हो जाता है। भलीभाँति विचार करके बोलने वाले को पश्चात्ताप करने का अवसर नहीं आता है, उसे लान्छित नहीं होना पड़ता है और उसका सत्य व्रत अख ड़ित रहता है।

दूसरी भावना : अक्रोध– किसी के प्रति क्रोध भाव नहीं होना, क्यों कि क्रोध भावना में रहा हुआ व्यक्ति झूठ, चुगली, कटुवचन बोलता है। कलह, वैर, विवाद करता है, सत्य सदाचार विनय गुण का नाश करता है, क्रोधाग्नि में जलता हुआ व्यक्ति भाषा में अनेक प्रकार के दोषाचरण करता है। अतः द्वितीय महाव्रत के आराधक भिक्षु को क्रोध नहीं करना चाहिए एव निर तर क्षमा से भावित अ तःकरण वाला होकर रहना चाहिए। क्रोधी का विवेक विलुप्त हो जाता है। सत् असत् का उसे भान नहीं रहता है। वह पागल सा बन जाता है। अतः क्रोध का त्याग करना, क्रोध वृत्ति पर विजय प्राप्त करना श्रमण के लिए परम आवश्यक है।

तीसरी भावना : निर्लोभता– लोभ का अर्थ है, अप्राप्त की चाहना और प्राप्त में आसक्ति। लोभी व्यक्ति यश, कीर्ति, सुख सुविधा, ऋद्धि वैभव, आदर सत्कार सम्मान, प्रतिष्ठा भोग उपभोग की आवश्यक सामग्री के लिए एव अन्य भी अनेक प्रयोजनों से असत्य भाषण, मिश्रभाषण करता है। अतः भिक्षु को उक्त किसी भी विषय में लोभ नहीं करना चाहिए। लोभी व्यक्ति मिथ्या भाषण करता है। लोभ भी झूठ बोलने का एक

प्रमुख कारण है । अत: निर्लोभता से अ त:करण को भावित करना चाहिये ।

चौथी भावना : निर्भयता– भयभीत नहीं होना, निर्भय बनना । ड़रपोक, भीरू व्यक्ति अनेक भयों से भयग्रस्त बनता रहता है । वह स्वय ड़रता और दूसरों को भी ड़रा देता है । भीरू व्यक्ति ग्रहण किये हुए व्रत नियम प्रतिज्ञा का पूर्ण वहन नहीं कर सकता है, उसे छोड़ बैठता है । अत: किसी भी व्यक्ति से किसी भी स योग या परिस्थिति से अथवा रोग, स कट, दु:ख, मृत्यु आदि से भी भयभीत नहीं होना चाहिए । इष्ट-वियोग, अनिष्ट-आक्रोश, उपाल भ के स योग से भी भयभीत नहीं होना चाहिए ।

भय आत्मशक्ति के विकास में बाधक है, हिम्मत को तहस-नहस कर देता है, समाधि का विनाशक है, स क्लेश को पैदा करने वाला है । यह सत्य पर स्थिर नहीं रहने देता है । स्वय भी सन्मार्ग पर नहीं चल सकता, दूसरों को चलने में भी बाधक बनता है । भयभीत बना व्यक्ति भय से बचने के लिए हिंसा या झूठ का सहारा लेता है । उसमें सरलता नष्ट होती है जिससे झूठ प्रप च करता है । वास्तव में भय करने से कोई रोग, आपत्ति, प्रतिकूल स योग हटते नहीं है; भय कोई प्रतिकूल स योग की औषध नहीं है जिससे कि वे नष्ट हो जाय । अत: आत्मा को भयभीरू न बनाकर सरल, सत्यनिष्ठ, निड़र, धैर्यवान बनाना चाहिए । तभी सत्य महाव्रत की सही आराधना हो सकती है । अत: सत्य भगवान के आराधक को चाहिए कि अपने अ त:करण को चित्त की स्थिरता से, धैर्य, सरलता एव निर्भयता से सदा भावित करते रहना चाहिए ।

पाँचवी भावना : हास्य त्याग– महाव्रतधारी श्रमण को हास्य-हँसी विनोद का सेवन नहीं करना चाहिए । वैसे प्रस ग आ जावे तो मौन का अवल बन लेना चाहिए । हँसोड़ व्यक्ति अशोभनिक और अशा तिजनक शब्दों का प्रयोग करते हक्त । किसी का परिहास उसके अपमान तिरस्कार का कारण भी बनता है । हँसी में दूसरों की निंदा तिरस्कार प्रिय लगता है, उसमें आन द आता है, इस कारण हास्य, परपीड़ाकारी है, विकथाओं की वृद्धि कराने वाला है । शरीर के अ गों को विकृत निश्चेष्ट बनाने वाला है ।

हास्य में एक दूसरे की गुप्त बात प्रकट करके फजीती की जाती है । इस प्रकार यह हास्य वृत्ति सत्य एव स यम की विनाशक है, परभव में भी गति को बिगाड़ने वाली है । अत: सत्य महाव्रतधारी को हास्य विनोद का त्याग करके, अधिकतम मौन व्रत स्वीकार करके अपने अ त:करण

को ग भीरता सरलता एव सत्यनिष्ठता से भावित करते रहना चाहिए । हास्य में सत्य को भी विकृत करना पड़ता है, नमक मिर्च लगा कर बोलना पड़ता है । तात्पर्य यह है कि हास्य में असत्य का सहारा-आश्रय लिया जाता है । इसलिए सत्यव्रत के स रक्षण के लिए हास्य वृत्ति का परिहार करना भी निता त आवश्यक समझना चाहिये ।

तप स यम में प्रगतिशील साधु भी यदि हास्यवृत्ति में पड़ जाता है तो उसके स यम का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।वह कुतुहलप्रिय बन जाता है और देवगति में भी वह किल्विषिक आदि हीनतम स्तर को प्राप्त करता है । स यम का विराधक बन जाता है ।

ये असत्य बोलने के मुख्य पाँच कारण कहे गये हक्त । इनका त्याग करना एव इनके त्याग में आत्मा को भावित करते रहना चाहिए । असत्य से बचने का यही सीधा एव सरल उपाय है । इसलिए सत्य व्रत के आराधक को- (१) सदा विचार करके निर्वद्य मृदु वचन बोलना (२-३) क्रोध लोभ आदि कषायों के वशीभूत होकर नहीं बोलना (४-५) भय एव हास्य वृत्ति का सहारा भी नहीं लेना अपितु विचारकता, शा ति, निर्लोभता, मौन, ग भीरता धारण करना चाहिए ।

इन पाँच भावनाओं से पुष्ट होकर यह सत्य स वर द्वार आत्मा को आश्रव रहित बनाने में पूर्ण सफल होता है ।

अध्ययन-३ : अचौर्य(महाव्रत)

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में अचौर्य अस्तेय महाव्रत का स्वरूप एव अचौर्य भावों की विषय व्याख्या तथा सूक्ष्मतम अदत्त का विश्लेषण किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- अचौर्य स्वरूप- (१) यह तीसरा स वर द्वार है । इसमें चोरी करने का, बिना दिये कोई वस्तु लेने का अथवा बिना आज्ञा प्राप्त किए कोई भी वस्तु लेने का त्याग किया जाता है । स पूर्णत: त्याग करने वाला महाव्रत धारी कह जाता है । इसमें परद्रव्य की अन त तृष्णा का निग्रह हो जाता है । आश्रवों का निरोध हो जाता है । इसका पालन करने वाला निर्भय हो जाता है अर्थात् चोरी और अदत्त से उत्पन्न आपत्तियों से रहित हो जाता है । इसके अभ्यास से स यमशील साधक के हाथ पाँव भी स यमित हो

जाते हक्त वे अदत्त अननुज्ञात का स्पर्श भी नहीं करते । ऐसे इस अस्तेय महाव्रत का अनेक उत्तम पुरुषों ने सेवन किया है, इसे परम श्रेष्ठ धर्माचरण रूप में मान्य किया है ।

(२) इस महाव्रत का आराधक ग्रामादि में कहीं भी पड़ी हुई कोई हुई, किसी की भूली हुई वस्तु हो तो स्वय उसे उठाता भी नहीं है न किसी को कहता है । उसके लिए सोना, मणि, रत्न, पत्थर, धूल एक सरीखा होता है । किसी में भी आकर्षण या कुतूहल प्रलोभन नहीं होता है । इस प्रकार वह लोक में विचरण करता है ।

(३) ज गल में, खेत में, मार्ग में कोई पत्र, पुष्प, फल, घास, तृण, पत्थर, रेत आदि ऐसी छोटी या बड़ी, अल्प या बहुत वस्तु को बिना किसी के दिये या किसी की आज्ञा प्राप्त किए बिना ग्रहण नहीं करता है अर्थात् वह अचित्त तृण मात्र की आवश्यकता होने पर भी अदत्त या अननुज्ञात नहीं लेता है । कभी कभी वह व्यक्तिगत मालिकों से रहित वस्तु की शक्रेन्द्र की आज्ञा लेकर ग्रहण करता है।

(४) अस्तेय महाव्रतधारी मकान, पाट, आहार, वस्त्र, पात्र अन्य समस्त उपकरण भी किसी के द्वारा देने पर ही ग्रहण करता है । दूसरों का अवगुण अपवाद नहीं करता है, किसी के गुणों का निषेध(नाश) नहीं करता है । दूसरे के नाम से कोई वस्तु प्राप्त नहीं करता है । किसी के दान में अ तराय नहीं करता है । किसी की चुगली नहीं करता है एव किसी के साथ मत्सर भाव नहीं रखता है । ये सूक्ष्म अदत्त के त्याग की अपेक्षा कथन है । इस महाव्रत में जीव अदत्त, तीर्थंकर अदत्त का भी त्याग होता है ।

(५) जो श्रमण शय्या स स्तारक या भ ड़ोपकरण विधि युक्त ग्रहण नहीं करता, साधर्मिकों में स विभाग नहीं करता, स्वय स ग्रह कर लेता है । १. शक्ति होते हुए तप नहीं करता है, २. व्रतों का पालन बराबर नहीं करता है, ३. रूप (वेश) की मर्यादा भ ग करता है, ४. अन्य किसी भी समाचारी का भ ग करता है, ५. भावों की विशुद्धि पूर्ण रूपेण न रखकर कलुषता मत्सरता, हर्ष-विषाद, राग-द्वेष, निंदा, विकथा आदि करता है अर्थात् जो क्रमशः (१) तप का चोर, (२) व्रत का चोर, (३) रूप का चोर, (४) आचार का चोर और (५) भावों का चोर बनता है; याने तत्स ब धी भगवदाज्ञा में पुरुषार्थ नहीं करता है, आपस में बोल-चाल, कलह, क्लेश,वाद-विवाद, वैर, विरोध करता है, असमाधि भाव पैदा करता है, खाने की कोई मर्यादा

नहीं रखता है, दीर्घ वैर भाव रखता है, बार बार गुस्सा करते रहता है, ऐसे लक्षणों वाले साधक भगवदाज्ञा के चोर हक्त, वे इस अस्तेय व्रत का सम्यक् आराधन नहीं कर सकते ।

(६) इन उक्त दोषों का त्याग करके जो आहार पानी, उपधि–भ ड़ोपकरण को सम्यक् विधि से प्राप्त कर, बाल ग्लान तपस्वी साधर्मिक साधुओं की सेवा भक्ति करता है, आचार्य उपाध्याय आदि पूज्य पुरुषों की विनय भक्ति सेवा करता है, सदा उनके चित्त की आराधना करता है, निर्जरा के लक्ष्य से दस प्रकार की वैयावृत्य सेवा करता है, बिना दिए या बिना आज्ञा मकान आदि, आहार आदि कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करता है, क्लेश, वैरभाव, कषाय, निंदा, कपट, प्रप च नहीं करता है, किसी का कुछ भी विपरीत अप्रिय नहीं करता है अथवा किसी को दान धर्म से विमुख नहीं करता है, ऐसा साधक इस अस्तेय व्रत का सम्यक् आराधक होता है ।

(७) इस प्रकार का यह जिनेश्वर कथित तीसरा महाव्रत आत्मा के हितकर है । आगामी भव में शुभ फलदायी है । भविष्य में कल्याण कारी है, पापों को और पापफल को शा त करने वाला है ।

प्रश्न–२ : अस्तेय महाव्रत की सुरक्षा हेतु पाँच भावना रूप में किन-किन नियम-उपनियमों को दर्शाया गया है

उत्तर– इस महाव्रत की सुरक्षा एव सफल आराधना के लिए पाँच भावनाएँ कही गई है, वे इस प्रकार है–

प्रथम भावना : निर्दोष उपाश्रय– ग्रामादि में विचरण करते हुए निवास करने के लिए जिस किसी मकान में ठहरना हो वह प्याऊ है, या म दिर (देवालय), बगीचा है या गुफा, कारखाना है या दुकान, यानशाला या म ड़प, शून्यगृह है या स्मशान में बना स्थान है, ऐसा कोई भी मकान है, उसमें सचित्त पानी, मिट्टी, बीज आदि बिखरे न हो, हरी दूब वनस्पति मार्ग में न हो, कीड़ी, मकड़ी, मकोड़े आदि त्रस जीवों की बहुलता न हो, लघुनीत-बड़ीनीत परठने के जगह की वहाँ सुविधा हो, वह मकान गृहस्थों के अपने लिए बना हो, स्त्री आदि के निवास से रहित हो, अन्य भी कल्प मर्यादाओं से पूर्ण उपयुक्त हो, वहाँ साधु को ठहरना चाहिये ।

किन्तु जो आधाकर्म आदि दोषों से युक्त हो, साधु के लिए उसमें अनेक प्रकार की तैयारी, सफाई, परिकर्म(छाबना लीपना आदि) कार्य किए हो, अ दर पड़े सचित्त पदार्थों को या अत्यधिक सामान को अथवा

अधिक भारी उपकरण को हटाया हो, मकान कमरा खाली किया हो, जिससे कि अस यम(विराधना)बढ़ती हो; ऐसे उपाश्रय(मकान) साधु को ग्रहण नहीं करने चाहिए। अन्य आगम(आचारा ग आदि) में भी इनका निषेध किया गया है। इस प्रकार **"विविक्त(स्त्री आदि रहित)वास और शय्या के विवेक"** से आत्मा को भावित करना चाहिए, क्लेश कदाग्रह पापकर्मों से निवृत रहना चाहिए, दत्त और अनुज्ञात ही लेना चाहिए।

दूसरी भावना : निर्दोष स स्तारक– उपाश्रय की आज्ञा लेने के अतिरिक्त वहाँ रहे घास पाट आदि स स्तारक रूप कोई उपकरण की आवश्यकता हो तो उसकी आज्ञा भी अलग से लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मकान की आज्ञा लेने से वहाँ रहे अन्य सभी पदार्थ की आज्ञा हो जाना नहीं समझ लेना चाहिए। अतः वहाँ रहे अन्यान्य उपकरणों अथवा पत्थर, रेत आदि की पृथक आवश्यकतानुसार आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार **"अवग्रह ग्रहण समिति"** से दत्त और अनुज्ञात ग्रहण करने की रूचि से आत्मा को भावित करना चाहिये।

तीसरी भावना : शय्या परिकर्म वर्जन– शय्या स स्तारक मकान आदि के लिये कोई छेदन भेदन आर भ समार भ के कार्य न करे न करावे। मकान को सम विषम या हवा वाला अथवा हवा रहित आदि करावे नहीं या ऐसा करने की अभिलाषा रखे नहीं। डाँस, मच्छर आदि प्राणियों को क्षुभित करे नहीं, त्रास पहुँचावे नहीं। यतना से दूर करने के अतिरिक्त कुछ न करे। इस तरह स यम, स वर, समाधि की प्रमुखता वाला बनकर, कषाय एव इन्द्रिय निग्रह की प्रधानता वाला बने। धैर्य के साथ इन उक्त स्थितियों में समभाव रखें, आध्यात्म ध्यान में लीन रहे, समिति युक्त होकर एकत्व आदि भावनाओं से भावित रहता हुआ, स यम, धर्म एव अस्तेय महाव्रत का पालन करे। इस प्रकार **"शय्या समिति योगों"** से आत्मा को भावित करते हुए प्राप्त शय्या में सम परिणामी बने।

चोथी भावना : अनुज्ञात भक्तादि– अनेक श्रमणों के लिए जो सामुहिक आहार लाया गया है, उसमें खाने का विवेक रखना चाहिए अर्थात् उसमें स्वादिष्ट मनोज्ञ शाक आदि स्वय पहले या अधिक अथवा शीघ्र नहीं खाना चाहिए। दूसरों को किसी भी प्रकार का परिताप स क्लेश असमाधि न हो, अ तराय न हो ऐसा विवेक रखकर, च चलता रहित होकर खाना चाहिए, जिससे तीसरे व्रत में कोई दोष न लगे। इस प्रकार **"सामुहिक आहार प्राप्त**

समिति" में आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करते हुए दत्त अनुज्ञात ग्रहण की रूचि वाला बने तथा क्लेश आदि के करने कराने से विरत बने।

पाँचवी भावना : साधर्मिक विनय– साधर्मिक सहवर्ती साधुओं के प्रति विनयव त रहे एव उनके उपकरणों के प्रति भी विनय विवेक रखे। उनके तप के पारणे में विनय विवेक रखे। वाचना स्वाध्याय आदि में देने लेने पूछने में, बाहर जाने आने में उनके प्रति विनय प्रवृत्ति रखे अर्थात् प्रत्येक कार्य पूछकर एव विनय शिष्टाचार युक्त करे। इस प्रकार अन्य सभी स यम योग में साधर्मिक के साथ पूर्ण विनय प्रवृत्ति करनी चाहिए। विनय भी आभ्य तर तप है और तप ही स यम में प्रधान धर्म है। अतः गुरु, साधर्मिक का पूर्ण विनय करना चाहिए। इस तरह **"विनय विवेक"** से भावित अ तःकरण वाला बने।

ये तीसरे महाव्रत की पाँच भावना युक्त ऊपरोक्त सभी वर्णन अदत्त महाव्रत की सूक्ष्मता एव भावात्मकता से परिपूर्ण है। अर्थात् विनय, सेवा भक्ति न करना, सामुहिक आहार आदि का अविवेक से उपयोग करना भी अस्तेय महाव्रत की विराधना करना है। योग्या-योग्य मकान स स्तारक के विषय में कोई भी स कल्प या प्रवृत्ति करना भी अदत्त है, आधाकर्म या परिकर्म दोष युक्त मकान का उपयोग करना भी अदत्त है। तृण क कर मिट्टी आदि भी याचना किए बिना ग्रहण करना अदत्त है, समूह में रहते हुए सेवाभाव या सेवा प्रवृत्ति नहीं रखना भी अदत्त है। शक्ति अनुसार तप, व्रत, समाचारी पालन आदि में कमी करना भी अदत्त है, कलह, कदाग्रह, विवाद, विकथा, कषाय करना, माया-प्रप च, परनिंदा, तिरस्कार चुगली करना भी अदत्त है। मत्सर भाव, वैरभाव रखना और दिनभर खाते रहना भी अदत्त है।

ऊपर वर्णित सूक्ष्मता और विशालता को समझ कर पूर्ण सावधानी के साथ इस तीसरे अस्तेय महाव्रत रूप स वर द्वार का मन वचन काया से पालन करना चाहिए।

अध्ययन–४ : ब्रह्मचर्य(महाव्रत)

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य की महिमा किस प्रकार दर्शाई है ?

उत्तर– यह चौथा स वर द्वार है। पाँच महाव्रतों में यह महाव्रत विशेष स्थान रखता है। अनेक विध तपों में भी ब्रह्मचर्य उत्तम श्रेष्ठ तप कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन में ब्रह्मचर्य को "भगवान" **शब्द से उपमित किया है।**

ब्रह्मचर्य की महिमा– यह ब्रह्मचर्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप विनय सम्यक्त्व आदि गुणों का मूल है । अनेक यम नियमों में प्रमुख नियम है । इसकी विद्यमानता में मनुष्य का अ तःकरण स्थिर हो जाता है अर्थात् ब्रह्मचर्य की सम्यक् आराधना से अस्थिर चित्तवृत्ति नहीं रहती है । गम्भीरता की वृद्धि होती है । सरलात्मा साधुजनों द्वारा सेवित है, सौम्य शुभ, कल्याणकर है, मोक्ष का परम मार्ग और सिद्ध गति का घर रूप है, शूरवीर धीर पुरुषों द्वारा विशुद्ध आराधित है । यह खेद से रहित निर्भय और रागादि के लेप से तथा कर्म ब ध स ग्रह से रहित है, चित्त शा ति का स्थान है, दुर्गति को रोकने वाला एव सद्गति का पथ प्रदर्शक है, लोक में उत्तम महाव्रत है ।

यह पद्मसरोवर की पाल-भित्ति के समान, गाड़ी के आरों व धुरि के समान, वृक्ष के स्क ध के समान, महानगर के कोट दरवाजे एव उनकी अर्गला के समान, ध्वजा की ड़ोरी के समान है एव विशुद्ध अनेक गुणों से सुस पन्न है अर्थात् उक्त सरोवर आदि जैसे पाली आदि से ही सुरक्षित होते हक्त, पाली आदि के नष्ट होने से वे विनष्ट हो जाते हक्त, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य महाव्रत के आधार से ही सभी महाव्रत सुरक्षित हक्त । इसकी अख ड़ता में ही सभी महाव्रतों की अख ड़ता टिक सकती है । ब्रह्मचर्य के विनाश में विनय, शील, तप, नियम सभी गुण समूह का वास्तव में विनाश हो जाता है । ऊपर का परिवेश मात्र रह सकता है । इस तरह यह ब्रह्मचर्य भगवान ही सभी व्रतों में सर्वोपरि महत्वशील है, प्राण स्वरूप है ।

यह ब्रह्मचर्य महाव्रत सरल स्वभावी मुनियों द्वारा सेवित तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट वैरभाव कषायभाव से मुक्त कराने वाला, सिद्ध गति के द्वार को खोलने वाला, नरक तिर्यंच आदि दुर्गति का अवरोध करने वाला है । सभी पवित्र अनुष्ठानों को सार युक्त बनाने वाला है अर्थात् ब्रह्मचर्य के अभाव में समस्त सदनुष्ठान सार हीन से हो जाते हक्त । यह सभी गुणों की सम्यक् आराधना कराने वाला है । ब्रह्मचर्य के प्रताप से साधक नरेन्द्र देवेन्द्रों के भी नमस्करणीय, सम्माननीय, पूज्यनीय बन जाता है । जो ब्रह्मचर्य का पूर्ण शुद्ध पालन करता है वही यथार्थ श्रमण है, ब्राह्मण है, सच्चा तपस्वी, वास्तविक साधु, ऋषि, मुनि, स यति और भिक्षु है ।

प्रश्न-२ : ब्रह्मचर्य व्रत आराधना में सहयोगी आचार अर्थात् इस महाव्रत की सफलता के साधक तत्त्व कौन से कहे गये हक्त?

उत्तर– ब्रह्मचर्य के साधकतम आचार इस प्रकार दर्शाये गये हक्त- स्नान म जन

त्याग, जल मैल धारण, अधिकतम मौन व्रत का पालन, (अर्थात् मौनव्रत धारण करना भी स यम ब्रह्मचर्य की साधना में आवश्यक अ ग है) केश लोच, क्षमा, इन्द्रिय दमन, इच्छा निरोध, अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहना, भूख प्यास सहन करना, नग्न रहना, सर्दी गर्मी सहन करना, काष्ठ या भूमि पर शयन, भिक्षार्थ भ्रमण, लाभालाभ, मान, अपमान निद्रा में तटस्थ रहना, ड़ाँस मच्छर के कष्ट सहन करना, अनेक नियम अभिग्रह, तपस्याएँ करना, यों अनेक गुणों से एव विनय गुण से आत्मा को भावित करना । इस तरह आचरण करने से ब्रह्मचर्य व्रत स्थिर दृढ़ सुदृढ़ होता है अर्थात् उसकी पूर्ण शुद्धि रहती है ।

स क्षेप में यह ब्रह्मचर्य का रक्षण जिनोपदिष्ट है । इसका शुद्ध पालन आत्मा के लिए इस भव में परभव में कल्याणकर है एव स पूर्ण कर्मों और दुःखों को शा त-समाप्त करने वाला है ।

प्रश्न-३ : इस महाव्रत की सुरक्षा हेतु पाँच भावनाओं के रूप में कौन-कौन सी सावधानिया सूचित की गई है ?

उत्तर– ब्रह्मचर्य महाव्रत का सहज यथार्थ पालन हो सके एतदर्थ श्रेष्ठ पाँच भावनाएँ सुरक्षा कवच रूप कही गई है, वे इस प्रकार है-

पहली भावना : विविक्त शयनासन– चतुर्थ महाव्रत की आराधना करने वाले श्रमण को ऐसे स्थानों में नहीं ठहरना चाहिये कि जहाँ पर स्त्रियाँ रहती हो, स्त्रियों के बैठने का, बातें करने का या अन्य कुछ भी कार्य करने का स्थान हो, जहाँ स्त्रियाँ समीप में रहती हो, उनका स सर्ग बढ़ता हो, उनके शृ गार, स्नान, मलमूत्र विसर्जन के स्थान अथवा मोहवर्धक वार्ता या प्रवृत्ति करने के स्थान निकट या सामने हों, ऐसे स्त्री सामीप्य एव स सर्ग वाले स्थानों में ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिये । ब्रह्मचारिणी साध्वी को ऐसे पुरुष सामीप्य एव स सर्ग वाले स्थानों में नहीं रहना चाहिए ।

दूसरी भावना : स्त्रीकथावर्जन– ब्रह्मचारी साधक को स्त्रियों के बीच बैठकर वार्तालाप करने से बचना चाहिए । स्त्रियों की कामुक चेष्टाओं का, विलास, हास्य आदि का, स्त्रियों की वेशभूषा का, उनके रूप सौंदर्य विवाह आदि का वर्णन करना, सुनना या वाँचन करना आदि प्रवृत्तियों से बचना चाहिए । इस प्रकार के कथन एव श्रवण भी मोह के वर्धक बन सकते हक्त । ऐसे वर्णनों का वाँचन चि तन भी नहीं करना चाहिए । ब्रह्मचारिणी

साध्वी को पुरुष स ब धी उक्त विषयों का वाँचन श्रवण या विवेचन करने से बचना चाहिए ।

तीसरी भावना : रूप त्याग– ब्रह्मचर्य साधक को चक्षु इन्द्रिय को पूर्ण रूपेण निय त्रण में रखना आवश्यक है। विविध कामराग बढ़ाने वाले, मोह-जनक, आशक्ति जागृत करने वालें दृश्यों, चित्रों को देखने से विरक्त–उदासीन रहना चाहिए । स्त्रियों के पास बैठ कर या खड़े रहकर अथवा दूर से ही उनके हास्य बोलचाल, हावभाव, क्रीड़ा, नृत्य गायन, रूपर ग, हाथपैर आदि की बनावट, नयन, लावण्य, यौवन, शरीर शोष्ठव, स्तन, गुह्यप्रदेश, वस्त्र, आभूषण, केश, मुख, ललाट आदि पर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए । स्वत: कभी दृष्टि चली जाय तो तत्क्षण हटा लेना चाहिए । टकटकी लगाकर नहीं देखना चाहिए । इस प्रकार विवेक रखने से नैत्रों के द्वारा मन में मोह भाव उत्पन्न नहीं होता है । साध्वी के लिए पुरुष के रूप स ब धी उक्त सारे विषय समझ लेने चाहिये ।

चौथी भावना : भुक्त भोगों का स्मरण त्याग– मस्तिष्क में गृहस्थ जीवन की कई घटनाओं एव दाम्पत्य जीवन की वृत्तियों के स स्कार स्मरण स चित रहते हक्त । उन समस्त स स्मरणों से मुनि को सदैव बचते रहना चाहिये । कभी वे स्मृति पटल पर उपस्थित हो भी जाय तो भी उसके प्रति आकर्षण लगाव न होकर ज्ञान एव वैराग्य के द्वारा घृणा अरूचि खेद के स स्कार जागृत रहने चाहिए । जो बाल दीक्षित हो उन्हें दूसरों के दाम्पत्य जीवन स ब धी स स्मरणों को स्मृति पटल पर नहीं आने देना चाहिये । तात्पर्य यह है कि स्वाध्याय, ध्यान, स यम, योग, अनुप्रेक्षा आदि में सदा तल्लीन रहना चाहिए । ज्ञान एव वैराग्य से आत्मा को सदा भावित करते हुए आत्मविकास करते रहना चाहिये ।

पाँचवीं भावना : सरस स्वादिष्ट आहार त्याग– ब्रह्मचर्य का आहार के साथ घनिष्ठ स ब ध हक्त । (१) बलवर्धक इन्द्रियोत्तेजक आहार ब्रह्मचर्य का विघातक होता है । जिव्हा–इन्द्रिय पर पूर्ण रूप से निय त्रण करना, निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन के लिए अत्य त आवश्यक है । जिव्हालोलुप, सरस, स्वादिष्ट, पौष्टिक भोजन करने वाला, इस व्रत का सम्यक् आराधन नहीं कर सकता है । अत: दूध, दहीं, घी, मक्खन, मीठा, नमकीन आदि पदार्थों के सेवन या बार बार सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है ।

(२) साधक को आहार की मात्रा का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखना अत्य त आवश्यक है । भरपेट कभी कोई भी चीज नहीं खाना चाहिये, नहीं पीना चाहिये । सदा ऊणोदरी से पेट को हल्का रखना चाहिए । कम खाना, कम बार खाना और कम पदार्थ खाना इस नियम का अवश्य पालन करना चाहिए ।

(३) तीसरी बात आहार के स ब ध में यह है कि ब्रह्मचर्य साधक को सदा निरन्तर नहीं खाना चाहिए । प्रति दिन लगातार भोजन नहीं करना चाहिए, बीच बीच में उपवास आदि तपस्या करते रहना चाहिये ।

जो साधक उक्त पाँचों भावनाओं का अनुपालन भलीभाँति करता है वह ब्रह्मचर्य महाव्रत की साधना में सफल हो सकता है ।

अध्ययन–५ : अपरिग्रह(महाव्रत)

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में अपरिग्रह की महत्ता के साथ सच्चा भिक्षु किसे कहा है एव उस निष्परिग्रहता के निर्वाहार्थ सामाचारिक विधान किस प्रकार समझार्ये हक्त?

उत्तर– (१) यह पाँचवाँ स वर द्वार है । परिग्रह स सार भ्रमण का प्रमुख कारण है । इसका त्याग करनेवाला, साथ ही ममत्व भाव का, आसक्ति भाव का त्याग करने वाला, इन्द्रिय एव कषायों का स वर निय त्रण करने वाला तथा जो साधक जिनेश्वर भगव तो द्वारा प्ररूपित सभी तत्त्वों की, एक से लेकर तेतीस तक के बोलों की पूर्ण अटल श्रद्धा करता है, इनमें श का नहीं करता है, अन्य सिद्धा तों की आका क्षाओ से रहित बनता है, ऋद्धि आदि गर्व एव निदान से रहित होकर निर्लोभी बनता है, मूढ़ता का त्याग कर ज्ञान एव विवेक धारण करता है, सभी प्रकार के लोभ का त्याग कर मन वचन और काया से स वृत बनता है, वह अपरिग्रही श्रमण है, वही सच्चा भिक्षु है ।

(२) म दर मेरू के शिखर चूलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत चरम स वर स्थान है । श्रेष्ठ वृक्ष की उपमा से युक्त है, जिसमें सम्यकत्व मूल है अनाश्रव और मोक्ष इसका सार है ।

(३) अपरिग्रही साधक किसी भी ग्राम नगर आदि को किसी भी दास,

दासी, पशु, वाहन, सोना, चा दी, मकान, जमीन, जायदाद को, स पत्ति को ग्रहण न करे, उसे अपनी न समझे, उसमें ममत्व मूर्छा न करे, किसी भी छोटे बड़े पदार्थ, व्यक्ति, स्थान को **मेरा मेरा** ऐसा न कहे, न समझे ।

स यम में आवश्यक ज्ञान दर्शन चारित्र में सहायक एव शरीर के स रक्षक अत्यावश्यक उपकरणों, पदार्थों के अतिरिक्त छत्र उपानह(जूता) आदि न रखे । दूसरों के चित्त को लुभान्वित करे आकर्षित करे, ऐसे बहुमूल्य उपकरण भी न रखें ।

(४) आहार, औषध-भेषज आदि के लिए पुष्प, फल, बीज, क द आदि कोई भी सचित्त पदार्थ ग्रहण न करे । क्यों कि श्रमण सि हों के लिए तीर्थंकर भगव तों ने ये सब सचित्त पदार्थ त्याज्य कहे हक्त । इनके ग्रहण से जीवों की योनि का विनाश होता है अर्थात् जीव हिंसा होती है ।

(५) सुविहित परिग्रह त्यागी भिक्षु को अनेक प्रकार के खाद्यपदार्थ उपाश्रय में या अन्य घर में या ज गल में नहीं रखना चाहिये अर्थात् अपनी निश्रा में मानते हुए कहीं भी खाद्यपदार्थ नहीं रखने चाहिये ।

(६) अनेक प्रकार के एषणा दोषों एव सावद्यकर्मों से युक्त आहार ग्रहण करना भी अपरिग्रही श्रमण को नहीं कल्पता है । ४२ दोष के अतिरिक्त निम्न दोषों का भी वर्जन करना चाहिए । १. रचित २. पर्यवजात ३. दानार्थ ४. पुण्यार्थ ५. वनीपकार्थ ६. श्रमणार्थ ७. पश्चात्कर्म ८. पूर्वकर्म ९. नित्य कर्म १०. अतिरिक्त ११. मौखर्य १२. स्वय ग्रहण ।

१. रचित– गृहस्थ ने साधु के लिये बीज आदि निकालना, कूटना-पीसना आदि कि चित् भी आर भजनक कार्य करके वस्तु तैयार की हो वह रचित दोष युक्त होती है ।

२. पर्यवजात– खाद्यवस्तु को सुधारना, ठीक करना, साफ करना, यथा– मूँगफली, चने साफ करके रखना आदि ।

३–६. दान के लिये, पुण्य के लिये, भिखारियों के लिये और पाँच प्रकार के भिक्षाचर श्रमणों को दान देने के लिये, बनाया गया आहार ।

७–८. आहारादि लेने के पहले या पीछे गृहस्थ द्वारा हाथ बर्तन आदि जल से धोना ।

९. साधुओं को बहराना किसी ने नित्य कर्म बना लिया हो अर्थात् सदाव्रत की तरह नित्य दिया जाने वाला आहार ।

१०. सरती खपती उचित आहार की मात्रा से अधिक बहराना या अधिक लेना, जिससे कि पीछे कम पड़ने पर नया आर भ किया जाय या सचित्त पदार्थ खाये जाय तथा साधु को ज्यादा मात्रा में खाना पड़े या परठना पड़े, यह **अतिरिक्त** दोष है ।

११. वाचालता करके अर्थात् बहुत बातें करते हुए आहार लेना या देना ।

१२. स्वय खाद्यपदार्थ लेना अर्थात् गृहस्थ की आज्ञा से स्वय उनके बर्तन में से आहार लेना यह भी दोष है । पानी स्वय के हाथ से लेने का विधान आचारा ग सूत्र में है । अतः उसका यहाँ निषेध नहीं समझना ।

(७) इन दोषों से रहित, ४२ दोषों से रहित एव नव कोटि परिशुद्ध आहार ग्रहण करना । आहार करते समय भोजन विधि के अर्थात् परिभोगैषणा के ५ दोषों का पूर्णतया परित्याग करना । छः कारण से ही आहार करना, कारण न हो तो आहार नहीं करना और आहार त्याग के छः कारण उपस्थित होने पर आहार नहीं करना अर्थात् आहार का त्याग करना ।

(८) सुविहित श्रमण को भगव त की आज्ञा में विचरण करते हुए कभी विविध कष्टकारी मारणांतिक रोग आत क उपस्थित हो जाय तो भी औषध-भेषज भक्तपान का स ग्रह स चय करना नहीं कल्पता है ।

(९) पात्र, पात्र की झोली, पात्र केसरिका, पात्र रखने का मा ड़ला पटल (अस्तान), रजस्त्राण(गरणा), रजोहरण, गोच्छग(पूँजणी), चद्दर, चोलपट्टक, मुँहपति आदि ये साधु के प्रमुख(औघिक)उपकरण है । ये भी निर्दोष ग्रहण करना एव रागद्वेष रहित धारण करना । इनका प्रतिलेखन यथासमय करना एव उन्हें यतनापूर्वक उठाना, रखना और उपयोग में लेना । इस प्रकार के उपकरण धारण करते हुए भी अपरिग्रह महाव्रत का पालन होता है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में द्रव्य परिग्रह त्याग की विशद् व्याख्या के साथ क्या भाव परिग्रह त्याग का कथन भी किया है ?

उत्तर– इस अध्ययन में आभ्य तर परिग्रह त्याग का कथन इस प्रकार किया गया है– मुनि कषाय कलुषता, स्नेह, ममत्व, मोहभाव, आशक्ति भाव, आका क्षा, लालसा से रहित बने । च दन के समान समपरिणामी, हर्ष-शोक से रहित बने, दीर्घ कषाय, र जभाव, नाराजी आदि गा ठों से रहित बने । सब के प्रति वात्सल्य भाव रखे, सरल बने, सुख दुःख में निर्विषयी बने

अर्थात् पौद्गलिक सुख या दुःख कुछ भी होवे उसको अपना चि तन अनुभव का विषय नहीं बनावे; उपेक्षा रख कर अपने स यम योगों में, स्वाध्याय, ध्यान, सेवा आदि से स लग्न रहे ।

प्रश्न-३ : अपरिग्रही निर्ग्रंथ के लिये यहाँ कौन सी उपमाएँ दी गई है और उनका गुण वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- ऐसे द्रव्य भाव अथवा आभ्य तर बाह्य परिग्रह से मुक्त प च महाव्रतों का सम्यग् आराधन करने वाले श्रमण निर्ग्रंथ की अनेक उपमाएँ है, यथा- श ख के समान निर जण । का स्य पात्र के समान निर्लेप । कछुए के समान गुप्तेन्द्रिय । कमलपत्र के समान स सार से अलग(निर्लेप)। च द्र के समान सौम्य । सूर्य के समान तेजस्वी । मेरू पर्वत के समान अड़ोल अक प । समुद्र के समान ग भीर । पृथ्वी के समान सहनशील । गोशीर्ष च दन के समान शीतल सुग धित । सा प के समान एकाग्र दृष्टि । सि ह के समान दुर्जय । भार ड़ पक्षी के समान अप्रमत्त । आकाश के समान निराल बन । पक्षी के समान स्वत त्र । हवा के समान अप्रतिहत गति बेरोकटोक चलने वाला । इत्यादि ३१ उपमाएँ हक्त ।

श्रमणों के गुण वर्णन :- इस प्रकार के आचार का पालन करने से वे साधु स यमवान, **विमुक्त**-धन दोलत वगैरह के त्यागी, **निःसग**-आसक्ति रहित, **निष्परिग्रहरुचि**-अपरिग्रह की रुचि वाले, **निर्मम**-ममता से रहित, **निःस्नेहब धन**-प्रेम के ब धन से मुक्त, सर्वपाप विरत, **वासीच दनकल्प**- उपकारी और अपकारी के प्रति समान भाव वाले होते है । वे तृण, मणि, मुक्ता और मिट्टी के ढ़ेले को समान मानने वाले, मान-अपमान में समता धारण करने वाले, **शमितरज**- पापरूपी रज को उपशा त करने वाले, राग-द्वेष को शा त करने वाले, इर्या आदि पाँच प्रकार की समितिओं से युक्त, सम्यकदृष्टि, बेइन्द्रिय आदि सर्व त्रसप्राणीओ तथा भूत-एकेन्द्रिय (स्थावर जीवों)पर समभाव धारण करने वाले होते है वे ही वास्तव में साधु है ।

जो साधु श्रुत के धारक, ऋजु-सरल, उद्यत-प्रमाद रहित तथा स यमी हक्त वे साधु सर्व प्राणियों के लिये शरणभूत होते हक्त **जगतवत्सल**- जगत के सर्व जीवों के हितचि तक होते हक्त । वे सत्यवादी, **स सार**-जन्ममरण के अ त में स्थित, स सार का **उच्छेद**-अ त करने वाले, सदा के लिये मृत्यु वगैरह के पारगामी, सर्व श काओं के पारगामी होते है । पाँच समिति और

तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचन माता के द्वारा आठ कर्मो की ग्र थी को भेदने वाले, आठ कर्मो का नाश करने वाले, जातिमद, कुलमद वगैरह आठ मदों का म थन करने वाले और स्वसमय-स्वसिद्धा त में निष्णात होते है । वे सुख दुःख में विशेषता रहित होते हक्त अर्थात् सुख में हर्ष और दुःख में शोक से दूर रहते हक्त । दोनों परिस्थिति में समान होते हक्त ।

वे आभ्य तर तथा बाह्य तपरूपी उपधान में सम्यक् प्रकार से उद्यत रहते हक्त । क्षमावान, इन्द्रियों के विजेता; स्वकीय एव परकीय हित में निरत; ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाँड़ मात्रनिक्षेपणा समिति तथा मल, मूत्र, श्लेष्म, जल्ल, शरीर मल वगैरह के परठने की समिति से स पन्न; मनगुप्ति, वचन गुप्ति और कायगुप्ति से युक्त; विषयों से विमुख, इन्द्रियों का गोपन करने वाले, ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त, सर्व स ग के त्यागी; सरल, तपस्वी, सहनशील; जितेन्द्रिय, सद्गुणों से शोभित अथवा शोधित; निदान से रहित, चित्तवृत्ति को स यम की परिधि से बाहर नहीं जाने देने वाले; ममत्व से विमुख; अकि चन-स पूर्ण रूप से निष्परिग्रही; स्नेह के ब धन को तोड़ने वाले और कर्म के लेप से दूर रहने वाले होते हक्त ।

मुनि प्रत्येक ग्राम में **एक अहोरात्रि** और प्रत्येक नगर में **पाँच अहोरात्रि** रहते है, वे जितेन्द्रिय, परीषह विजेता, निर्भय, विद्वान, गीतार्थ, सचित्त,अचित्त और मिश्र द्रव्यो में वैराग्यभाव युक्त होते हक्त । वस्तुओं के स ग्रह करने से विरत, मुक्ति-निर्लोभ वृत्ति वाले, लघु-तीन प्रकार के गौरव से रहित और परिग्रह के भार से भी रहित, जीवन और मरण की आशा-आका क्षा से हमेशा मुक्त, चारित्र परिणाम के विच्छेद से रहित अर्थात् उसके चारित्र परिणाम हमेशा विद्यमान रहते हक्त; कभी भी भग्न नहीं होते । वे निरतिचार-निर्दोष चारित्र का धैर्यपूर्वक पालन करते हक्त । हमेशा वे आध्यात्म ध्यान में निरत, उपशा तभाव युक्त तथा एकाकी बन कर धर्म का आचरण करते हक्त ।

परिग्रह विरमणव्रत के परिरक्षण हेतु भगवान ने यह प्रवचन-उपदेश कहा है । यह प्रवचन आत्मा के लिये हितकारी है । आगामी भवों में उच्च प्रकार के फल को देने वाला है और भविष्य में कल्याणकारी है । यह शुद्ध, न्याय युक्त, अकुटिल, अनुत्तर और सर्व दुःखों तथा पापों को शा त करने वाला है ।

प्रश्न–४ : "गामे गामे एग राय , णयरे-णयरे प च राय " इस वाक्य का सही तात्पर्य किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर– ये अपरिग्रही श्रमण विचरण काल में छोटे गाँवों मे एक रात एव नगरों में पाँच रात से अधिक नहीं रहते हुए अनासक्त निर्मोह भाव से विचरण करे । यह श्रमणों का आदर्श मार्ग है । कल्प की अपेक्षा स्थविर कल्पी सामान्य साधु का विचरण काल में उत्कृष्ट कल्प २९ दिन का है । साध्वी का ५८ दिन का है एव पड़िमाधारी का एक या दो दिन का है । इससे अधिक पड़िमाधारी कहीं भी नहीं ठहरते । जिनकल्पी के लिए श्रुति परम्परा में वर्णन है कि वे स यम में एव परिचर्या में बाधा न पड़े तो २९ दिन के पहले किसी भी क्षेत्र से विहार नहीं करते ।

इस सूत्र से अर्थ भ्रम भी होता है कि गाँवों में सात दिन और नगरों में २९ दिन रहना कल्पता है किन्तु यह आगम सम्मत नहीं है । कल्प तो २९ दिन का ग्रामादि सभी क्षेत्रों का बृहत्कल्प सूत्र में बताया है ।

पड़िमाधारी श्रमणों के लिए यह सूत्र है, ऐसा कथन करना भी अनुपयुक्त है । क्यों कि उनके तो पाँच रात्रि कहीं भी ठहरने का विकल्प होता ही नहीं है । एक या दो रात का ही विकल्प है । परिशेष न्याय से इस सूत्र का भाव ५००–१००० आदि स ख्या में विचरण करने वाले महाश्रमणों की अपेक्षा समझ लेना उपयुक्त होगा । अधिक स ख्या होने से वे श्रमण ग्रामों में एक रात्रि और शहरों में ५ रात्रि रहते हुए विचरण करते रहें, अधिक कहीं नहीं ठहरे ।

प्रश्न–५ : पाँचवें अपरिग्रह महाव्रत की विशिष्ट भावनाएँ किस प्रकार कही गई है तथा उन पाँचों का स क्षिप्त तात्पर्य क्या है ?

उत्तर– अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ– इस अपरिग्रह महाव्रत की सुरक्षा के लिए **भाव की अपेक्षा** से पाँच भावनाएँ कही गई है । क्यों कि द्रव्य परिग्रह तो साधु के होता ही नहीं है । भाव में भी पाँच इन्द्रियों के विषय रूप शब्दादि की आसक्ति एव रागद्वेष का समावेश किया गया है ।

प्रथम भावना : श्रोतेन्द्रिय स यम– वादिंत्रो के शब्द, आभूषणों के शब्द, स्त्रियों के शब्द, हास्य, रुदन आदि; प्रश सा वचन, एव ऐसे ही मनोज्ञ सुहावने वचन सुनने में साधु को आसक्त नहीं होना, अप्राप्त की आका क्षा

नहीं करना, लुब्ध नहीं होना, प्रसन्न नहीं होना । ऐसे मनोज्ञ शब्दों का स्मरण और विचार भी नहीं करना ।

आक्रोश वचन, कठोर वचन, अपमानित करने वाले वचन, रुदन, क्र दन, चीत्कार अभद्र शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिये, हीलना निंदा नहीं करनी चाहिए, किसी को भला बुरा नहीं कहना चाहिये । इस प्रकार श्रोतेन्द्रिय स यम की भावना से भावित अ तःकरण वाला बने ।

दूसरी भावना : चक्षु इन्द्रिय स यम– अनेक प्रकार के आभूषण, वस्त्र, वस्तुएँ, सजावट, दृश्य, ग्रामादि, भवन, महल आदि, नरनारी समूह, स्त्रियाँ, नृत्य, नाटक, खेल आदि सुहावने रूपों में आसक्ति नहीं करना, उन्हें देखने के लिए लालायित नहीं होना ।

अमनोज्ञ रूपों को देखकर घृणाभाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए । द्वेष निंदा तिरस्कर भी नहीं करना चाहिये । इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय स यम की भावना से भावित अ तःकरण वाला बनना चाहिए ।

तीसरी भावना : घ्राणेन्द्रिय स यम– फूल, इत्र, खाद्यपदार्थ, धूप आदि अनेक सुग धित पदार्थों की खुशबू, फल, चन्दन की सुग ध आदि नासिका को प्रिय लगने वाली सुग ध में आसक्त नहीं होना, उनकी चाहना नहीं करना, उनमें खुश नहीं होना कि तु उपेक्षा भाव रखना । मृत कलेवर, गटर, पाखाना आदि बदबू फैलाने वाले असुहावने पदार्थों में द्वेष घृणा नहीं करना किन्तु सुस वृत होकर धर्माचरण करना ।

चौथी भावना : रसनेन्द्रिय स यम– अनेक प्रकार की मिठाईयाँ, लवण रस युक्त पदार्थ, विविध खाद्यपदार्थ, विगय, महाविगय आदि मनोज्ञ पदार्थों में आसक्त नहीं होना, उनकी चाहना नहीं करना । अनेक प्रकार के अमनोज्ञ खाद्य पदार्थों में घृणा निंदा द्वेष अप्रसन्नता नहीं करनी चाहिए ।

पाँचवी भावना : स्पर्शेन्द्रिय स यम– शीतल मनोज्ञ कोमल सुहावने आसन, शयन, वस्त्र, मालाएँ शरीर को सुख और मन को आन द देने वाले ऐसे सुहावने स्पर्शों में श्रमण को आसक्त नहीं होना चाहिए ।

वध, ब धन, मारपीट, उष्ण, शीत, काष्ठ, क टक, तीर, छेदन-भेदन, भूमि स्पर्श, तृणस्पर्श, क कर, पत्थर इत्यादि अमनोज्ञ स्पर्शों में श्रमण रुष्ट नहीं होवे, निंदा न करे, अप्रसन्न नहीं होवे । इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय भावना से भावित अ तःकरण वाला होकर स यम में विचरण करे ।

इन भावनाओं का स क्षिप्त तात्पर्य– शब्द आदि पाँचों इन्द्रिय विषय समय-समय पर प्राप्त होते रहते हक्त । उससे इन्द्रियों को ब ध करके या ढ़ँक करके नहीं रखा जा सकता किन्तु उनमें आसक्त नहीं होना, उनकी चाहना नहीं करना और राग और द्वेष दोनों विकृत भावों को न होने देना । उपेक्षा भाव तटस्थ भाव में लीन होकर इन्द्रियातीत बन कर स यम का सच्चा आन द प्राप्त करना चाहिये ।

प्रश्न–६ : पाँच महाव्रतों की भावनाएँ कितने शास्त्रों में वर्णित है वे परस्पर समान है या भिन्न-भिन्न रूप में है ?

उत्तर– प्रथम महाव्रत– (१) **आचारा ग** में चौथी भावना आदान-निक्षेप समिति है, पाँचवी भावना है– देख भाल कर आहार करना ।

(२) **समवाया ग** में चौथी भावना प्रकाश युक्त चौड़े स्थान में, चौड़े पात्र में आहार करना । पाँचवी भावना–आदान निक्षेपण समिति है ।

(३) **प्रश्नव्याकरण** में चौथी भावना परिपूर्ण एषणासमिति है अर्थात् गवैषणा एव परिभोगेषणा का पूर्णतया पालन करना । पाँचवी भावना आदान निक्षेपण समिति है ।

सार–तीन भावना का क्रम समान है, चौथी पाँचवीं में क्रम भेद है । समवाया ग, प्रश्न-व्याकरण में समान क्रम है । आचारा ग में भिन्न क्रम है । एषणा समिति के विषय का कथन तीनो में भिन्न है ।

तीसरा महाव्रत– प्रश्नव्याकरण में–(१) निर्दोष उपाश्रय गवेषणा (२) निर्दोष स स्तारक गवेषणा (३) शय्या का परिकर्म त्याग (४) साधारण पिंड़ विवेक से खाना (५) साधार्मिक की विनय सेवा भक्ति करना ।

आचारा ग में (१) निर्दोष उपाश्रय गवेषणा (२) आज्ञापूर्वक आहार करना (३) उपाश्रय की सीमा का स्पष्टीकरण (४) तृण काष्ठ आदि प्रत्येक चीज की आज्ञा लेना अर्थात् पृथक् पृथक् पुनः पुनः आज्ञा लेने का अभ्यास होना (५) साधार्मिक के उपकरणादि आज्ञा लेकर ग्रहण करना ।

समवाया ग में (१) निर्दोष उपाश्रय गवेषणा (२) सीमा का स्पष्टीकरण (३) तृण काष्ठादि की आज्ञा (४) साधर्मिकों के उपकरण की आज्ञा (५) साधारण पि ड़ आज्ञा और विवेकयुक्त खाना ।

सार– आचारा ग समवाया ग में विषय समान है क्रम भिन्न है । प्रश्नव्याकरण में विषय भी भिन्न है क्रम भी भिन्न है ।

चौथा महाव्रत– समवाया ग और प्रश्नव्याकरण में क्रम एव विषय समान है । **आचारा ग में** क्रम भिन्न है । विविक्त शयनासन आचारा ग में अ तिम है और दोनों सूत्र में प्रार भ में है, अन्य कोई अ तर नहीं है ।

दूसरा महाव्रत– तीनों सूत्रों में क्रम विषय समान है, यथा– १. विचार कर बोलना २. क्रोध त्याग ३. लोभ त्याग ४. भय त्याग ५. हास्य त्याग ।

पाँचवाँ महाव्रत– तीनों सूत्रों में क्रम और विषय समान है । १. शब्दादि पाँच इन्द्रिय विषयों की आसक्ति एव चाहना का त्याग ।

क्रम भेद होने में लिपि दोष की अधिक स भावना है तथा अपेक्षा से विवक्षा से एव विस्तृत कहने से भी विषय भेद हो जाना स भव है ।

प्रश्न–७ : इस शास्त्र के स वरद्वार के ५ अध्ययनों से जीवन में क्रियान्वित करने योग्य आदर्श शिक्षाएँ क्या मिलती है ?

उत्तर– (१) साधु साध्वियों को पाँच महाव्रत की इन २५ भावनाओं पर नित्य नियमित आत्मचि तन करते रहना चाहिए ।

(२) पाँच महाव्रत और पाँच समिति स ब धी सूत्र में कहे सभी नियमों का ईमानदारी से श्रद्धापूर्वक दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिये ।

(३) जो भी श्रमण शास्त्रोक्त इन विधि नियमों का, द्रव्य आचार एव भाव शुद्धि के आदेशों का, कि चित भी पालन नहीं करता है, उसे स्पष्ट शब्दों में आगमकारों ने **चोर–चोर** इस स ज्ञा से सूचित किया है । अतः साधकों को सदा यह चि तन करना चाहिये कि यदि हमें चोर कहलाने में शर्म आती हो तो भगवदाज्ञा का चोर बनना भी नहीं चाहिये । क्यों कि चोर बनना और चोर कहलाने में शर्मिन्दगी महसूस करना यह नादानता है । अ दर बाहर एक होना यही साधना का सार है । **जैसे हो वैसे दिखो,** सरल बनो ।

॥ प्रश्नव्याकरण सूत्र स पूर्ण ॥

विपाक सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : विपाक सूत्र का क्या परिचय है ?

उत्तर– यह विपाक सूत्र कथाप्रधान ग्यारहवाँ अ ग शास्त्र है । पूर्वकाल में वीर निर्माण से करीब एक हजार वर्ष तक १२ अ ग शास्त्र प्राप्त होते थे । आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के लेखनकाल के समय ग्यारह अ गशास्त्र ही पुस्तकारूढ़ किये गये थे । तब से यह विपाक सूत्र अ तिम अ गशास्त्र है।

समवाया ग सूत्र के अनुसार प्रभु महावीर स्वामी ने मोक्ष पधारने की अ तिम वेला में भी भवीजीवों के उदबोधन के लिये ५५+५५=११० अध्ययन दु:ख और सुख विपाक के फरमाये थे । प्रस्तुत १०–१० अध्ययन उसी के परिशेष हक्त या उससे पूर्व रचे हुए हक्त, इस विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता हक्त गणधर भगव त शासन के प्रार भ में ही द्वादशा गी की रचना में इस अ ग सूत्र की रचना कर देते हक्त । जिसमें कथा प्रस ग उपयुक्त हो तो अन्य भी स पादित किये जा सकते हक्त । वीरनिर्वाण के समय गौतम और सुधर्मा दो गणधर मौजुद थे । आज जो भी अध्ययन उपलब्ध है वे गणधर रचित है । इस शास्त्र के मुख्य दो विभाग रूप दो श्रुतस्क ध है । प्रथम विभाग दु:ख विपाक सूत्र और दूसरा विभाग सुखविपाक सूत्र कहा जाता है । इन दोनों में दस-दस अध्ययन है । वर्तमान में यह शास्त्र १२१६ श्लोक प्रमाण स्वीकारा गया है जिसमें दु:ख विपाक सूत्र विशाल है और सुखविपाक सूत्र लघु है ।

इस सूत्र पर भी प्राचीन टीका आचार्य अभयदेव सूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है। अर्वाचीन व्याख्या साहित्य स स्कृत हिंदी गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध है ।स क्षिप्तिकरण पद्धति में इस शास्त्र का सारा श, पुष्प १९ के रूप में प्रकाशित उपलब्ध है ।

प्रश्न–२ : इस शास्त्र का विषय वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– प्रस्तुत सूत्र में दो तरह की आत्माओं के जीवन वृत्ता तो का वर्णन किया गया है । शुभ कर्मों के स योग से जीव सा सारिक सुखमय अवस्था को प्राप्त करता है और अशुभ पापमय कर्मों से महान दु:खमय अवस्थाओं में भ्रमण करता रहता है । कर्म विपाक के वर्णन होने के कारण इस सूत्र का सार्थक नाम **विपाक सूत्र** है ।

इस सूत्र के प्रत्येक अध्ययन में पुनर्जन्म की चर्चा है । जो व्यक्ति दु:ख से कराह रहा है और जो सुख के सागर पर तैर रहा है, उन सभी के सम्बन्ध में गौतमस्वामी द्वारा यह जिज्ञासा व्यक्त की गई है कि यह इस प्रकार कैसे है ? भगवान उसका पूर्व भव सुनाकर ऐसा समाधान देते हक्त कि उसका रहस्य समझ में आ जाता है । दु:खविपाक सूत्र में अन्याय, अत्याचार, वेश्यागमन, प्रजापीड़न, रिश्वत, हिंसा, नरमेघ यज्ञ, मा सभक्षण आदि दुष्कृत्यों के कारण विविध प्रकार की यातनाएँ एव महान दु:ख भोगने का उल्लेख है । सुखविपाक सूत्र में सुपात्रदान आदि का प्रतिफल अपार सुखमय बताया गया है ।

प्रथम विभाग के प्रस गों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कुछ दुराचारी व्यक्ति प्रत्येक युग में होते हक्त, जो अपनी क्रूर व हिंसक मनोवृत्ति के कारण भय कर से भय कर अपराध करते हक्त और अपने दुष्कर्म के कारण उन्हें अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ती है । द्वितीय विभाग में सुकृत्य करने वाले व्यक्तिओं के जीवन-प्रस ग है । जिस प्रकार क्रूर कृत्य करने वाले व्यक्ति प्रत्येक युग में मिलते हक्त, वेर से ही सुकृत करने वाले व्यक्ति भी हर युग में मिलते हक्त । अच्छाई और बुराई एका त रूप से किसी युग की देन नहीं है । अच्छे और बुरे व्यक्ति और व्यक्तित्व हर युग में मिलते हक्त ।

प्रश्न–३ : इस शास्त्र के अध्ययनों के नाम स ब ध ी कोई मतभेद है?

उत्तर– विपाक सूत्र का परिचय न दी सूत्र, समवाया ग सूत्र और स्थाना ग सूत्र में प्राप्त होता है । समवाया ग सूत्र और न दी सूत्र में अध्ययनों की स ख्या १०+१०=२० कही है कि तु अध्ययनों के नाम वहाँ नहीं दिये हक्त।

स्थाना ग में इसे "कर्मविपाकदशा शास्त्र" नाम से कहकर उसमें दु:ख विपाक के दस अध्ययनों के नाम कहे हक्त । सुखविपाक के अध्ययनों के नाम वहाँ नहीं कहे हक्त ।

इसमें कुछ नाम घटना परक है, कुछ व्यक्ति परक है और कुछ पूर्वभव स ब ध ी है । सातवें आठवें अध्ययन में क्रम भेद मात्र है । स्थाना ग में जो सातवें आठवें के नाम है प्रस्तुत में वे क्रमश: आठवें सातवें के हक्त। अध्ययनों के इन नामों में समानता नहीं होने का कारण, लिपिदोष हो सकता है अथवा नामकरण के समय की भिन्नता का कारण भी हो सकता है । नाम भेद होते हुए भी दोनों प्रकार के नामों का परस्पर सुमेल, अपेक्षा से हो जाता है । अर्थात् कोई पूर्वभव की अपेक्षा है, कोई वर्तमान भव की अपेक्षा है,

कोई व्यक्ति की अपेक्षा है, कोई वस्तु या घटना की अपेक्षा है । वास्तव में इनमें सैद्धा तिक मतभेद जैसा या अघटित जैसा नाम नहीं है । दसवें अध्ययन के नाम का समन्वय कठिन है । लच्छीकुमारों का सम्बन्ध पूर्वभव में वेश्या के साथ अधिक रहा हो, ऐसा अन्य वाचना के कथा में हो सकता है । अन्य कोई समाधान नहीं मिलने से ऐसी स भावना की जा सकती है ।

प्रस्तुत सूत्र और स्थाना ग सूत्र में प्राप्त दु:खविपाक सूत्र के अध्ययनों के नाम इस प्रकार है–

स्थाना ग सूत्रोक्त नाम	प्रस्तुत सूत्रोक्त नाम
१.मृगापुत्र	१.मृगापुत्र
२.गोत्रासक	२.उज्झितक
३.अ ड़	३.अभग्नसेन
४.सकट	४.शकट
५.ब्राह्मण	५.बृहस्पतिदत्त
६.न दीषेण	६.न दीवर्धन
७.शौरिक	७.उ बरदत्त
८.उदु बर	८.शौरिकदत्त
९.सहस्रोद्दाह	९.देवदत्ता
१०.कुमारलेच्छई	१०.अ जु

प्रथम श्रुतस्क ध : दु:खविपाक

अध्ययन–१ : मृगापुत्र

प्रश्न–१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथापरिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– प्रस्तुत अध्ययन में मृगग्राम नामक नगर के विजय राजा के पुत्र एव मृगा राणी के आत्मज मृगापुत्र(मृगालोढ़ा) का वर्णन है । पूर्व भव में इकाई राठोड़ राजा रूप में उसने अनेक पापाचरण एव प्रजा को दु:ख दिया था । जिसके फल स्वरूप उसे दु:खमय मानवभव मिला । राजा के घर में जन्म

लेकर भी वह एक लोढ़े के समान था । अर्थात् उसके शरीर में हाथ, पाँव, कान, नाक, आँख आदि अवयव थे ही नहीं । केवल उनके निशान मात्र थे । गर्भ में ही उसको भस्मक नामक व्याधि हो गई थी । जिससे आहार करने के तुर तु बाद उसके शरीर से खून रस्सी बनकर बाहर आ जाता था। राजा की आज्ञा से और प्रथम स तान होने से मृगा राणी उसे भोंयरे में रखकर उसकी पालना करती । भोजन के समय एक छोटी सी गाड़ी भर कर वह भोंयरे में खाना ले जाती थी । जिसे वह शीघ्र मुँह से खींच लेता और खून रस्सी रूप में शरीर से बाहर निकाल देता । एक बार गौतमस्वामी भगवान की आज्ञा लेकर आये और यह दृश्य साक्षात् देखा । मृगाराणी के ४ अन्य भी पुत्र थे वे सु दर सुड़ोल राजकुमार थे ।

भगवान से गौतमस्वामी ने इसके दु:ख का कारण पूछा । भगवान ने उसके पूर्वभव एव आगामी भवों की पर परा का स्पष्टीकरण दिया । वे भव इस प्रकार है– (१) पूर्वभव–इकाई राठोड़ । (२) प्रथम नरक । (३) वर्तमान मृगालोढ़ा(मृगापुत्र) । २६ वर्ष पूर्ण करेगा । (४) प्रथम नरक । (५) सि ह (६) प्रथम नरक । (७) भुजपरिसर्प जाति में । (८) दूसरी नरक । (९) पक्षी में । (१०) तीसरी नरक । (११) सिंह । (१२) चौथी नरक । (१३) उरपरिसर्प (१४) पाँचवीं नरक । (१५) स्त्री रूप में पापाचार सेवन कर । (१६) छट्ठी नरक में । (१७) मनुष्य । (१८) सातवीं नरक । (१९) लाखों भव जलचर में । (२०) यों सभी प चेन्द्रियों में,(२१) सभी विकलेन्द्रियों में,(२२) पाँचों स्थावरों में लाखों भव करेगा । इतने दीर्घकाल पर्यंत भवभ्रमण में असीम अपार वेदनाएँ भोगकर । (२३) बैल बनेगा । (२४) मनुष्य,(२५) प्रथम देवलोक, (२६) महाविदेह से मोक्ष ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन से शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञेय-तत्त्व क्या प्राप्त होते हक्त?

उत्तर– (१) शासन के माध्यम से प्राप्त सत्ता का दुरूपयोग करने वालों, रिश्वतखोरों, प्रजा पर अनुचित कर भार लादने वालों और इस प्रकार के पापों का आचरण करने वालों के भविष्य का यह एक निर्मल दर्पण है । आज के वातावरण में प्रस्तुत अध्ययन और आगे के अध्ययन भी अत्यन्त उपयोगी और शिक्षाप्रद है । **(२)** पति की आज्ञा से मृगाराणी ने दु:स्सह दुर्गन्ध युक्त उस पापी पुत्र की भी सेवा परिचर्या की थी । वह कर्तव्य निष्ठता एव पतिपरायणता का अनुपम आदर्श है । **(३)** पापी अधर्मिष्ट

जीव स्वय दु:खी होता है एव अन्य को भी दु:खी करता है । जैसे खाद्य-सामग्री में पड़ी मक्खी । **(४)** सत्ता के नशे में या अपने पुण्यवानी के नशे में व्यक्ति कुछ भी परवाह नहीं करता है । भविष्य का या कर्मब ध का विचार भी नहीं करता है । फिर भी दु:खदायी परिणामों को तो उसे भोगना ही पड़ता है । अत: छोटे बड़े किसी भी प्राणी को मानसिक वाचिक या कायिक कष्ट पहुँचाना स्वय के लिये दु:ख के पहाड़ तैयार करना है । यथा इक्काई राठोड़ के जीव की अमानवीयता एव सारा घमण्ड़ अकड़ाई आदि मृगा-लोढ़े के दु:खमय जीवन में और अनेक दु:खी भवों के रूप में परिवर्तित हो गए । **(५)** मृगाराणी धर्मनिष्ठ थी किन्तु भगवान का सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने का पूर्ण परिचय उसे नहीं हुआ था । **(६)** सात्कदर्यपूर्ण दृश्यों को देखने की आसक्ति साधु के लिये अकल्पनीय है । किन्तु ग भीर ज्ञान, अनुप्रेक्षा, अन्वेषण आदि हेतु से जानने देखने की जिज्ञासा होना अलग वस्तु है । दोनों को एक नहीं कर देना चाहिये । पुद्गलान दी एव इन्द्रियाशक्ति से साधु को बचना चाहिए । किन्तु ग भीर ज्ञान एव अनुप्रेक्षा के माध्यम के लिए बहुश्रुत एव गीतार्थ के निर्णय एव निर्देशानुसार किया जा सकता है । यथा– गौतमस्वामी आज्ञा लेकर मृगापुत्र(मृगा लोढ़ा) को देखने अकेले ही राणी के साथ भोंयरे में गये । **(७)** परवशपन से जीव कैसे विभत्स दारूण कष्ट सहन कर लेता है । यह जानकर जो व्यक्ति स्ववश ज्ञान एव वैराग्य से तप व स यम के नगण्य कष्टों को सहन कर ले, वह सदा के लिए जन्म मरण रूपी दु:ख स कट के सा सारिक चक्कर से छूट जाता है ।

अध्ययन–२ : उज्झितक

प्रश्न–१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथापरिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में सार्थवाह पुत्र "उज्झितक" का वर्णन है । पूर्वभव में वह कोतवाल का पुत्र **गोत्रासक** था । नाम के अनुसार ही वह गौशाला आदि की गायों एव अन्य पशुओं को त्रास पहुँचाता था, उनके अ गोपा गों का छेदन–भेदन करता, हीना ग कर देता एव मार देता था । ऐसे कृत्य ५०० वर्ष की उम्रपर्यंत करके वह तीन सागरोपम की उम्र नरक में बीताकर यहाँ उत्पन्न हुआ था । वह सर्वांग सु दर था किन्तु पाप कर्मोदय से उसके माता–पिता मर गये । धन लोगों ने एव राज कर्मचारियों ने लेकर उसे

घर से निकाल दिया । वह निर कुश घूमता फिरता व्यसनी बन गया एव नगर की कामध्वजा नामक वेश्या के वहाँ पहुँच गया ।

कालान्तर में राजराणी उदरशूल रोग से आक्रा त हो गई । तब राजा ने उज्झितक को वेश्या के घर से निकलवा कर स्वय उसके साथ मानुषिक सुख भोगने लगा । कभी मौका पाकर उज्झितक पुन: वेश्या के यहाँ आने लगा । एक बार राजाने उसे वहाँ देख लिया, गुस्से में प्रच ड़ होकर राजा ने उसे फा सी की सजा कर दी । राज कर्मचारी उसे बा धकर विविध प्रकार से मारपीट करते हुए, नगर में घुमाकर वधस्थान पर ले जा रहे थे, मार्ग में गौतमस्वामी ने यह दृश्य देखा कि बेड़ियों से युक्त उस व्यक्ति को खुद का तिल-तिल जितना मा स काट-काट कर जबरन खिलाया जा रहा था, सैकड़ों पत्थरों, चाबुकों से मारा जा रहा था; हाथ मोड़कर पीछे बा धे हुए और नाक, कान कटे हुए वह व्यक्ति नरक तुल्य वेदना भुगत रहा था । यह दृश्य देखकर भगवान के पास से गौतमस्वामी ने उसकी दुर्दशा का कारण जानना चाहा । तब भगवान ने उसके पूर्व भव के दुष्कृत्यों का वर्णन करते हुए बताया कि अपने दुष्कर्मों के आचरण से वह आज ही २५ वर्ष की आयु में शूली पर मरकर (१) प्रथम नरक में उत्पन्न होगा । (२) फिर पापीष्ट ब दर का भव करके (३) वैश्यापुत्र कृतनपु सक बनेगा । वहाँ २१ वर्ष की उम्र में मरकर (४) प्रथम नरक में उत्पन्न होगा (५) वहाँ से निकलकर वह प्रथम अध्ययन में कहे अनुसार नरक-तिर्यंच के भव एव एकेन्द्रिय आदि में लाखों भव करने के बाद (५) भेंसा बनेगा (६) फिर श्रेष्ठीपुत्र होगा (७) स यम पालन कर प्रथम देवलोक में जायेगा । (८) वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन से शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञेय-तत्त्व क्या प्राप्त होते हक्त?

उत्तर– (१) जन्म जन्मान्तर तक भी पापाचरण के स स्कार चलते रहते हक्त । इसी प्रकार धर्म स स्कारों की भी अनेक भव तक पर परा चलती है । **(२)** मा साहार में आसक्त व्यक्तियों की एव निरपराध भोले पशुओं को त्रास देने वालों की, उस भव में और भवोभव में विचित्र विड़ बनाएँ होती है । बूचड़ खाने खोलने वाले एव चलाने वाले कितने भी मस्त दिखाई देते हो किंतु वे निश्चित ही कर्म फल प्राप्ति के समय दीन-हीन एव दु:खों से परिपूर्ण अवस्था प्राप्त करेंगे । **(३)** स सार में "जिसकी लाठी उसकी भेंस"

की उक्ति प्रचलित है, वह यहाँ घटित हुई है । राजा ने कामध्वजा वेश्या को अपने स्वाधीन रखने के लिए उज्झितक को उसके घर से निकलवा दिया और अ त में मृत्युद ड़ की सजा भी दे दी । (४) निमित्त कुछ भी हो सकता है किन्तु मूलभूत कारण रूप में स्वय के पूर्वकृत कर्मों का उदय तो रहता ही है । उज्झितक भी पूर्व पापों के तीव्र उदय से ही राजा द्वारा द ड़ित किया गया था । (५) कथा की विभिन्न घटनाओं को जानकर व्यक्ति को वैराग्य एव अनुभव की वृद्धि करनी चाहिए । किन्तु किसी भी घटना को पढ़ने-सुनने में खुशी, नाराजी या रागद्वेष अथवा हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए किन्तु ग भीर चिंतन पूर्वक स्वजीवन के सुधार की प्रेरणा लेनी चाहिए ।

अध्ययन-३ : अभग्नसेन

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का कथा वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- पुरिमताल नगर के नजदीक में एक चोरपल्ली थी । वहाँ के चोर-सेनापति के काल करने पर उसका पुत्र "अभग्नसेन" चोरों का अधिपति बना । पुरिमताल नगर के लोगों को एव आसपास के ग्राम नगरों में वह बहुत त्रास पहुँचाता था । इस कारण पुरिमताल नगर के राजा के पास स त्रस्त नगरजनों ने शिकायत पेश की । राजा के आदेश से कोतवाल ने चोर पल्ली पर आक्रमण किया किंतु उसकी हार हुई । राजा ने समझ लिया कि इसे बल से नहीं, किंतु छल से नष्ट करना होगा । राजा समय-समय पर किसी भी प्रस ग से कभी चोरों को और कभी सेनापति को कुछ-कुछ भेंट भेजने लगा ।

एक बार १० दिन का प्रमोद महोत्सव मनाया । जिसमें चोरों को भी आम त्रित किया । चोर सेनापति को ड़र तो था नहीं, उसने नगरी में आना स्वीकार किया । राजा ने उसके ठहरने एव भोजन की व्यवस्था की तथा विशिष्ट मदिराएँ भी भेजी । वे खा-पीकर नशे में बेभान थे तब राजा ने अवसर देखकर उन्हें पकड़वा लिया ।

अभग्नसेन को १८ चौराहों पर उसके ही परिवार वालों को मार-मार कर उनका मा स खिलाया और खून पिलाया । इस प्रकार उसके समस्त परिवार वालों को मार कर फिर उसे वधस्थान में ले जाकर शूली पर चढ़ा दिया । गौतमस्वामी ने एक चौराहे से निकलते हुए अभग्नसेन की इस

प्रकार की दुर्दशा देखी । भगवान से पूछने पर उन्होंने उसके पूर्वभव का वर्णन करते हुए बताया कि पुरिमताल नगर में ही एक समय **निर्णय** नामक अ ड़ों का व्यापारी था । जिसके अनेक नौकर नगर के बाहर चौतरफ से अनेक पक्षियों एव जलचर प्राणियों के अ ड़ों का स ग्रह करके लाते थे । **निर्णय** व्यापारी अपने अन्य अनेक नौकरों के द्वारा अ ड़ों को अनेक प्रकार से स स्कारित करवा कर नगर में विक्रय करवाता था । स्वय भी वह उन स स्कारित अ ड़ों का तथा पा च प्रकार की मदिराओं का सेवन करता था । इस प्रकार पापमय जीवन से १०००वर्ष पूर्ण कर वह तीसरी नरक में ७ सागरोपम तक नरक दुःखभोग कर यहाँ अभग्रसेन चोर बना । यह आज ही ३७ वर्ष की उम्र में मरकर (१) प्रथम नरक में जायेगा (२) फिर मृगापुत्र के समान भवभ्रमण करेगा (३) फिर अ त में सूअर बनेगा (४) शिकारियों द्वारा मारा जाकर श्रेष्ठीपुत्र बनेगा (५) स यम लेकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा (६) वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगा ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन से क्या प्रेरणा तत्त्व प्राप्त होते हक्त?

उत्तर- (१) अ ड़ों का व्यापार एव आहार, प चेन्द्रिय की हिंसा, शराब का सेवन, इन प्रवृत्तियों वाला जीव प्रायः नरकगामी ही होता है। **(२)** चोर्यवृत्ति भी पापकारी प्रवृत्ति है । चोरों का यह जीवन भी भयाक्रांत और स कटपूर्ण रहता है और परभव तो महान अ धकारपूर्ण ही होता है। **(३)** विवेकी पुरुष इन अवस्थाओं से बचे एव पापी प्राणियों की दुर्दशा से शिक्षा लेकर धर्ममय जीवन बनाकर शीघ्र ही स सार भ्रमण से मुक्त होने में प्रयत्नशील बने ।

अध्ययन-४ : शकटकुमार

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का कथानक किस प्रकार है ?

उत्तर- इस अध्ययन में सार्थवाह पुत्र शकटकुमार का वर्णन है । जो प्रायः दूसरे अध्ययन के **उज्झितक** के घटित वर्णन के सदृश है । पूर्व भव में इसने मा स बेचने का ध धा रसपूर्वक किया था । जिसमें बकरों का मा स मुख्य था तथापि मृग, गाय, बैल, खरगोश, सूअर, सिंह, मयूर, महिष आदि का मा स विक्रय भी करता था । उसके अनेक कर्मचारी थे । जिनके द्वारा वह नगर में अनेक जगह अपना वह ध धा चलाता था । खुद भी वह मा स-मदिरा के आहार में आसक्त रहता था । ऐसी पाप प्रवृत्ति करते ७०० वर्ष

की आयु पूर्ण करके चौथी नरक में दस सागरोपम की उम्र तक नरकदुःखों को भोगकर वह शकटकुमार सार्थवाह के घर जन्मा था । बालवय में माता-पिता के मर जाने से लेकर वेश्या के साथ लग जाने तक का वर्णन दूसरे अध्ययन के **उज्झितक** के समान हक्त । फिर वहाँ के सुषेन म त्री ने वेश्या को अपनी पत्नि बना लिया । यह शकट कभी पुनः उस सुदर्शना वेश्या के पास म त्री के घर भी जाने लगा । स योगवश पकड़ा जाने से म त्री ने इसे महाच द्र राजा द्वारा आज्ञा पाकर, **उज्झितक** के समान द ड़ित किया । मार्ग में नरकतुल्य कष्ट पाते हुए गौतम स्वामी ने गोचरी में भ्रमण करते हुए उसे देखा । भगवान से साश्चर्य एव जिज्ञासा से पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व भव की पाप कथा स्पष्ट करते हुए भविष्य का वर्णन किया कि आज ही ५७ वर्ष की उम्र में शकट को और वेश्या को तप्त लोहप्रतिमा से आलि गन कराया जायेगा । (१) दोनों मर कर प्रथम नरक में उत्पन्न होंगे । (२) वहाँ से निकलकर मात ग कुल में जुड़वाँ भाई-बहिन के रूप में जन्म लेंगे । वहाँ उनके नाम शकट और सुदर्शना ही रखे जायेंगे। युवा वय में दोनों पति-पत्नि का स ब ध स्थापित कर लेंगे (३) वहाँ से पुनः प्रथम नरक में (४) फिर मृगापुत्र के समान नरक तिर्यंच एव एकेन्द्रियादि के लाखों भव करके (५) शकट का जीव मच्छ बनकर मारा जायेगा फिर श्रेष्ठी पुत्र बनकर दीक्षा पालन कर (७) प्रथम स्वर्ग में जायेगा (८) वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्त हो जायेगा ।

प्रश्न–२ : इस कथावर्णन से कौन से शिक्षातत्त्व एव ज्ञेय तत्त्व प्राप्त होते हक्त?

उत्तर– (१) इस अध्ययन में भी मा साहार, प चेन्द्रिय वध, वेश्या गमन एव मद्यपान आदि दुर्व्यसनों का कटु परिणाम बताया गया है। अत्य त भाग्य-शाली जीवों को ही व्यसन मुक्त जीवन प्राप्त होता है । **(२)**व्यसनी व्यक्ति के लिए धर्माचरण दुष्कर और दुर्लभ होता है । अतः हमें स्वय का जीवन तो पूर्ण व्यसन मुक्त रखना ही चाहिये, साथ ही अपने परिवार के बालक-बालिकाओं को बचपन से व्यसन मुक्त रहने की प्रेरणा एव हिदायत करते रहना चाहिए । बचपन में दिए गये स स्कार प्रायः जीवन भर कामयाब रहते हैं । **(३)** दुर्गति एव नरक गमन में प्रमुख कारण दुर्व्यसन ही है । दुर्व्यसनी व्यक्ति के सद्गति की आशा रखना केवल स्वप्न देखने के समान है । व्यसन ये हक्त– १. जुआ, शिकार(प चेन्द्रिय हिंसा), मा साहार, मदिरापान,

वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, चोरी । २. भा ग, बीड़ी, सिगरेट, ताश, सिनेमा, गुटका, जरदा, तम्बाकू इत्यादि का सेवन भी व्यसन विभाग ही है । चाय, कोफी आदि का प्रतिबद्ध और अमर्यादित सेवन भी व्यसन के अन्तर्गत समझना चाहिए ।

अध्ययन–५ : वृहस्पति दत्त

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कथानक वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में शतानीक राजा के पुत्र उदायनराजा के समय में, वृहस्पतिदत्त राज पुरोहित के दृष्कृत्य की दुःखद घटना का वर्णन है । वृहस्पतिदत्त उदायन का बालमित्र होने से पुरोहित कर्म करते हुए अ तःपुर में भी बेरोकटोक गमनागमन करता था । इस प्रकार स योगवश वह राजराणी पद्मावती में आसक्त होकर यथेच्छ आचरण करने लगा । एक समय स्वय राजा ने उसे वहाँ पद्मावती के साथ देख लिया । प्रच ड़ क्रोध में लाल होकर राजा ने उसे मृत्यु द ड़ घोषित किया । नगर में घुमाकर अनेक प्रकार से मार मारते हुए तथा उसी का तिल-तिल जितना मा स खिलाते हुए शूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया जा रहा था । स योगवश गौतमस्वामी का उसे देखने और प्रभु के पास उसकी उस दुर्दशा के विषय में जिज्ञासा प्रगट करने पर प्रभुने उसका पूर्वभव फरमाया कि पहले वह सर्वतोभद्र नगर में जितशत्रु राजा का पुरोहित था । वहाँ राजा के शुभ हेतु एव राज्यवृद्धि के लिये वह नित्य शा ति होम करता था । उसमें वह सदा एक-एक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शुद्र बालक यों ४ बालकों के हृदय निकलवा कर उनको अग्नि में होमता था। आठम-चौदस को दो-दो बालक(कुल–८ बालक), चौमासी के ४–४ बालक (कुल–१६ बालक) के हृदय निकलवाकर शा तिहोम करता था । स वत्सरी को १६–१६ यों ६४ बालकों के हृदयों का होम करता था । युद्ध के प्रयाण के समय राजा की विजय के लिये वह १०८–१०८(कुल ४३२) बालकों के हृदयों से शा ति होम करता । यों करते राजा सर्वत्र विजयी होता था तथा उसका निष्क टक राज्य शा तिपूर्वक चलता था । अतः राजा को पुरोहित की इस प्रवृत्ति में विश्वास जम गया था । ऐसे पापकृत्य करते हुए वह महेश्वर दत्त ३००० वर्ष की उम्र पूर्ण कर भारी कर्मा बनकर पाँचवी नरक में १७ सागरोपम की उम्र में उत्पन्न हुआ । वहाँ के नरक दुःख भोगकर

वह पापी जीव यहाँ वृहस्पतिदत्त बनकर पुनः अपने कुकृत्यों का फल भोगते हुए आज शूली पर ६४ वर्ष की उम्र में मरकर (१) पहली नरक में उत्पन्न होगा (२) फिर क्रमशः सभी नरकों में, तिर्यंचों में भवभ्रमण करते हुए स्थावर-त्रस विकलेन्द्रिय जीवों के लाखों भव करते हुए अ त में (३) हस्तिनापुर में मृग बनकर जाल में फ स कर मारा जायेगा (४) वहाँ से वह श्रेष्ठीपुत्र होगा (५) स यम लेकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा (६) फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम-तप के द्वारा मुक्त बनेगा ।

प्रश्न–२ : इस कथावर्णन से क्या शिक्षाप्रेरणा लेनी चाहिये ?

उत्तर– (१) होशियार एव रूप सम्पन्न जीव भी जब गुप्त रूप से घोर पापकर्म सेवन करता है, तो एक दिन उसके पाप का घड़ा अवश्य फूट जाता है । तब फिर वह अचिन्त्य कष्टों का शिकार होकर पश्चाताप करता है एव दुःखी होता है । कहा भी है–

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय ।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हँसाय ॥

(२) रूई में लपेटी हुई आग जिस तरह छिप नहीं सकती, उसी तरह गुप्त पाप भी एक दिन कई गुना होकर प्रकट हो जाता है । **(३)** पापकर्म जीव को भवो-भव दुःख देते रहते हैं । अतः मनुष्य भव, बुद्धि एव विवेक को पाकर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये । जीवन को सु दर एव धार्मिक बनाना चाहिये । जिससे इस भव, पर भव, भवोभव में शान्ति एव सुख की प्राप्ति होवे ।

अध्ययन–६ : न दिवर्धन

प्रश्न–१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथा वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में न दिवर्धन नाम के राजकुमार का कथानक है । मथुरा-नगर के श्री दाम राजा ने अपने पुत्र को युवराज पद तो दिया किंतु राजा की उम्र ज्यादा होने से युवराज ६० वर्ष का हो गया । उसका धैर्य समाप्त हो जाने से उसने नाई को राजा के गले में छुर्रा भोंकने का कह दिया, साथ में आधा राज्य देने का प्रलोभन भी दे दिया । न दिवर्धन के प्रस्ताव को नाई ने स्वीकार तो कर लिया कि तु समय पर वह मन में ड़र गया और राजा को सत्य बात कह दी । राजा ने प्रच ड़ क्रोध करते हुए राजकुमार को

पकड़ाकर मृत्यु द ड़ घोषित कर दिया । नगर में घुमाकर अनेक यातनाएँ देते हुए उसका एक चौराहे पर लोहमय तप्त सिंहासन पर राज्याभिषेक किया और तप्त लोहे की ही मालाएँ हार रूप में पहनाई गई तथा जल के अभिषेक की जगह पिगले हुए ता बे-शीशे के अत्युष्ण जल से सिंचित किया गया । इस तरह वह वहीं ६० वर्ष की उम्र में मृत्यु द ड़ का दुःख भुगत रहा था । स योगवश गौतमस्वामी ने गोचरी के लिये उधर से निकलते हुए यह दृश्य देखा । भगवान को उसके बारे में पूछा । प्रभु ने उसके पूर्व भव का विवरण इस प्रकार कहा–

सिंहपुर में यह दुर्योधन नाम का जेलर था । वह महान अधर्मी एव स क्लिष्ट परिणामी, निर्दय एव क्रूर प्रकृति का था । राज्य के अपराधी चोर, लुटेरे, घातक, लम्पट आदि जो भी जेल में आते उन्हें वह निर्दयता पूर्वक **अनेक रोमा चकारी** दुःख देता था । वह इस प्रकार पापकार्यों से भारी बनकर छट्ठी नरक में २२ सागरोपम की उम्र तक नरक दुःख भोग कर यहाँ राजकुमार बना है । पूर्व पापकर्मों के उदय स योग से पिता को मारने का विचार कर खुद बड़ी दुर्दशापूर्वक आज वहीं चौराहे पर मरकर (१) प्रथम नरक में उत्पन्न होगा । (२) सभी नरकों में घोर दुःख भोगते हुए तिर्यंच के लाखों भव करते हुए अ त में (३) मच्छ बनकर मारा जायेगा (४) फिर श्रेष्ठी-पुत्र बनकर स यम तप का आराधन कर के (५) प्रथम स्वर्ग में देव बनेगा । (६) फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सदा के लिये मुक्त हो जायेगा ।

प्रश्न–२ : दुर्योधन जेलर के द्वारा अपराधियों को रोमा चकारी यातनाएँ किस प्रकार दी जाती थी ?

उत्तर– (१) किसी को हाथी, घोड़े, ऊ ट, भेंसे, बकरे आदि जानवरों के मूत्र का पान करवाता । (२) किसी को तप्त ता बा, लोहा व शीशा आदि पिला देता । (३) किसी को विभिन्न प्रकार के ब धनों से मजबूत बा धकर दुःख देता । सा कलों से बा धता शरीर को मोड़ता सिकोड़ता, शस्त्रों से चीरता-फाड़ता । (४) किसी को चाबुक आदि से मार-मार कर अधमरा कर देता । हड्डियाँ तुड़वा देता, चूरचूर करवा देता । (५) उल्टे लटकवा कर गोते खिलवाता, छेदन करता, क्षार मिश्रित तेलों से मर्दन करवाता। (६) अनेक मर्मस्थानों में कील ठुकवा देता । (७) हाथ-पाँव की अ गुलियों में सूईयाँ ठुकवा कर उससे भूमि खुदवाता । (८) गीले चमड़े से शरीर ब धवा कर फिर धूप में बिठाता और फिर चर्म सूखने पर उसे खुलवाता ।

प्रश्न–३ : प्रस्तुत अध्ययन से हमें आत्महित में क्या शिक्षा-अनुभव लेने चाहिये ?

उत्तर– (१) दूसरों को दुःख देने में आन द मानने वाला, स्वय भी प्रतिफल में दुःख प्राप्त करता है । किसी को अपराध में द ड़ देना एक राज्य कर्तव्य तो है, किन्तु उसमें प्रमोद मानना एव अत्यधिक रस लेना, जीवों को दारुण दुःख देकर प्रसन्न होना, उसमें तल्लीन–दत्तचित्त होना, कलुषित परिणामों का सूचक है । ऐसे कलुषित परिणाम स्वय की आत्मा के लिये ही महान घातक है । जिसका फल स्वय को भोगना ही पड़ता है। **(२)** अतः अधिकारों में एव सा सारिक कृत्यों में भी आसक्ति, तल्लीनता और परिणामों की कलुषितता नहीं रखना चाहिए । वहाँ भी ज्ञान, विवेक एव आत्म जागृति रखते हुए सावधानी से रहना चाहिये । पाप को पाप समझना चाहिये ।

अध्ययन–७ : उम्बरदत्त

प्रश्न–१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथानक वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में सार्थवाह पुत्र उम्बरदत्त का कथानक है । पूर्व अध्ययन–२ और ४ के उज्झितक एव शकट के समान इसके माता-पिता भी बचपन में चल बसे । वह घरबार रहित होकर भिखारी बन गया । १६ बड़े रोगों में से अनेक रोग उसके शरीर में हो गये । कोढ़ रोग के कारण उसके अ गोपांगों से रस्सी बहने लगी थी । हजारों मक्खियाँ उसके चौतरफ चक्कर काटती रहती थी । इस तरह वह अपने शरीर से ही अत्य त दुःखी, निर्धन, भिखारी होकर पाटलिख ड़ नगर में इधर से उधर भटकता रहता था । गौतमस्वामी ने इस दशा में उसे ४ बार नगर के ४ दिशाओं से नगर में जाते हुए देखा । तीव्र जिज्ञासा होने पर चौथे दिन उन्होंने उम्बरदत्त की उस दयनीय दशा के विषय में पूछ लिया । भगवान ने उत्तर फरमाया कि–

पूर्व भव में यह धनवन्तरी वैद्य था । लोगों को दवा में एव पथ्य में मा साहार की अध्यधिक प्रेरणा करता था । अनेक जलचर जीवों के, विविध पशुओं तथा पक्षियों के मा स भक्षण के प्रयोग और प्रेरणा से वह अपने उस वैद्यक कृत्य में सफल होकर ३२००(बत्तीस सो) वर्ष जीवन यापन करता रहा । ऐसे पाप प्रेरक जीवन से कर्म स चय कर छट्ठी नरक में २२ सागरोपम की उम्र में उत्पन हुआ । वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर अवशेष कर्मों का दुःख

उम्बरदत्त के रूप में इसप्रकार भुगत कर ७२ वर्ष की उम्र में मरकर (१) प्रथम नरक में जायेगा (२) पूर्व अध्ययनवत् स सार भ्रमण करके अ त में (३) हस्तिनापुर में कूकड़ा बनकर मारा जायेगा । (४) फिर श्रेष्ठी पुत्र होकर दीक्षा लेकर (५) प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा (६) वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम-तप से सर्व कर्म क्षय कर मुक्त बनेगा ।

प्रश्न–२ : उम्बरदत्त के शरीर में उत्पन्न रोगों का वर्णन किस प्रकार है तथा १६ महारोगों के नाम किस आगम में आये हक्त?

उत्तर– खुजली, कोढ़, सूजन, जलोदर, भगन्दर, बवासीर, अर्श, खांसी, दमा आदि प्रसिद्ध रोगों से वह ग्रस्त हो गया । उसके हाथ पाँव की अ गुलियाँ सड़ रही थी । नाक और कान गल रहे थे, सारे शरीर में घावों में से खराब पानी–पीप बहता था । विविध वेदना से वह कष्टोत्पादक करूणाजनक एव दीनतापूर्ण शब्द पुकार रहा था। असहाय बना वह इधर-उधर नगर में भटकता फिरता था । उसके पास खाने-पीने के लिए मिट्टी का ठीकरा और सिकोरे का टुकड़ा था । मक्खियों के झु ड़ उसके साथ चलते थे । घर-घर में भीख मा ग कर वह अपना जीवनयापन करता था । ***आचारा ग सूत्र में १६ बड़े रोगों के नाम है, जो प्रश्नोत्तर भाग–१, पृष्ठ–४२, प्रश्न–३ में देखें । अन्यत्र अन्यप्रकार से १६ रोगों के नाम मिलते हक्त, यथा– (१)श्वास (२)खाँसी (३)ज्वर (४)दाह (५)उदरशूल (६)भग दर (७)अर्श(मसा) (८)अजीर्ण (९)अ धापन (१०)शिरःशूल (११)अरुचि (१२)अक्षिवेदना (१३)कर्ण-वेदना (१४)खुजली (१५)जलोदर (१६)कोढ़ । आचारा ग सूत्र के नामों से इन नामों में कुछ भिन्नता है, एव क्रम की भिन्नता वाले भी हक्त ।***

प्रश्न–३ : प्रस्तुत अध्ययन से शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञेय-तत्त्व किस प्रकार के प्राप्त होते हक्त ?

उत्तर– (१) मद्य-मा स के सेवन करने वालों की बुद्धि एव अनुभव तदनुरूप बन जाता है । एक कुशल वैद्य होकर भी **धन्व तरि** लोगों को पाप मुक्त करने के स्थान पर पाप में जोड़ने वाला बना । वह उन्नत बनने की कला प्राप्त कर जीवों की दया अनुकम्पा वृद्धि कर सकता था । किन्तु पाप मति के प्रभाव से प्रभावित बने हुए उसने और अधिक पापकृत्यों की वृद्धि की । **(२)** अज्ञानी जीव निर्जरा एव पुण्य के स्थान पर कर्मब ध एव पाप सेवन कर अपना ही जीवन बिगाड़ लेते हक्त । ज्ञानी व्यक्ति साक्षात् कर्मब ध के स्थानों में भी महानिर्जरा एव मुक्ति लाभ कर लेते हक्त । अतः मुमुक्षु प्राणियों

को अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति के लिये, ज्ञान और विवेक से कसौटी करते हुए सही, हितकर, योग्य निर्णय लेकर ही उसमें प्रवृत्त होना चाहिए। **(३)** जगत में कई प्रकार की सावद्य-निर्वद्य चिकित्सा विधियाँ होती हक्त । तथा प्राकृतिक चिकित्सा, जल, मिट्टी, स्वमूत्र और उपवास चिकित्साएँ भी प्रचलित एव शास्त्रों ग्र थों में वर्णित है । शास्त्र आचारा ग में कहा गया है कि पापकारी चिकित्साओं का कभी भी आचरण नहीं करना चाहिये। **(४)** भिक्षु के लिए तो आगम का यही घोष है कि उसे तो रोगात क आ जाने पर आहार त्याग कर उपवास चिकित्सा करके ही द्रव्य एव भाव रोगों से मुक्ति पाना चाहिए । घरेलू उपचार के कई नुश्खें भी निरवद्य होते हैं । सावद्य चिकित्सा मुनियों के लिये अनाचार अर्थात् सर्वथा अनाचरणीय है ।

अध्ययन-८ : शौरिकदत्त

प्रश्न-१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथानक किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- इस अध्ययन में शौरिकदत्त नामक महा अधर्मी मच्छीमार का वर्णन है । शौरिकदत्त ने अनेक नौकर रख रखे थे, जो यमुना में जाकर अनेक जलचर मच्छ आदि को लाकर ढ़ेर करते थे और उन्हें सुखाकर, भुनकर बिक्री करते थे । शौरिकदत्त स्वय भी मत्स्याहार मदिरापान करके अपने उन कृत्यों से जीवन व्यतीत करता था । एक बार मत्स्याहार करते कोई मत्स्य का का टा उसके गले में फँस गया । अनेक उपाय करने पर भी कोई भी उस काँटे को निकाल नहीं सका और वह शौरिकदत्त उस क टक की असह्य वेदना से पीड़ित होकर दुःख ही दुःख में सूखकर अस्थिप जर सा हो गया । वह खून, रस्सी एव कीड़ों का बार बार वमन भी करता । ऐसी स्थिति में एक बार गौतमस्वामी गोचरी करके उस मार्ग से निकलते हुए, घर के बाहर दीनता पूर्वक आक्र दन करते हुए उस शौरिकदत्त को नरकतुल्य वेदना भोगते हुए देखा । भगवान से पूछने पर उसका पूर्वभव वर्णन भगवान ने इस प्रकार किया-

पूर्वभव में वह राजा के वहाँ रसोइया था । वहाँ भी उसके अनेक नौकर उसे विविध प्रकार के मा स लाकर देते थे । वह रसोइया बहुत कला पूर्वक मा स के विविध प्रकार के गोल, लम्बे, छोटे, बड़े, टुकड़े बनाकर अनेक विधियों से पकाता । अर्थात् धूप से, ठ ड़ी से, हवा से, अग्नि से उन्हें

पकाता था । कभी काले, नीले, पीले आदि र गों से तो कभी आँवले, द्राक्ष एव कबीठ, अनार आदि के रस से स स्कारित करता था । खुद भी मा स खाकर खुश होता और मित्र नामक राजा को भी खुश रखता था ।

इस प्रकार के पापकर्म करते हुए वह ३३००(तेतीस सो) वर्ष की उम्र में मरकर छट्ठी नरक में उत्पन्न हुआ । वहाँ से २२ सागर की स्थिति पूर्ण करके यहाँ जन्मा है और अपने पाप कर्मोदय से स्वतः दुःखी होकर आक्रन्दन कर रहा है । (१) यहाँ से ७० वर्ष की उम्र में मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगा (२) सभी नरकों एव तिर्यंचों के भव भ्रमण प्रथम अध्ययन के समान है (३) अ त में मच्छ बनकर मारा जायेगा (४) फिर श्रेष्ठीपुत्र बन कर स यम ग्रहण करेगा (५) आराधना करके प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा (६) वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्तिगामी बनेगा ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन से क्या-क्या शिक्षा एव ज्ञेय तत्त्व प्राप्त होते हक्त ?

उत्तर- (१) स सार में नौकरी व्यापार आदि आवश्यक कार्य करने भी पड़े तो उसमें तल्लीन नहीं होना चाहिए एव अत्य त गृद्धिभाव से आन द नहीं मानना चाहिए । क्यों कि ऐसे परिणामों से अत्य त दुःखदायी कर्मों का ब ध होता है, यथा- श्रियक रसोइये ने कर्मब ध किया । **(२)** वर्तमान में ही मस्त बने रहने वाला एव भविष्य का विचार नहीं करके यथेच्छ पाप प्रवृत्ति करने वाला अपना भविष्य अत्यन्त स कटमय बना लेता है । **(३)** पाँच प्रकार की मदिरा के नाम सूत्र में ये है- सुर , महु , मेरग , जाइ , सीधु । **(४)** जीव दूसरों को खुश करने के लिए भी पापकर्म का सेवन करते हक्त किन्तु कर्मों का उदय होने पर उसका फल स्वय को ही भुगतना पड़ता है ।

अध्ययन-९ : देवदत्ता

प्रश्न-१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथानक किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- यहाँ तक आठ अध्ययनों में पुरुषों के कथानक है । इस नवमे अध्ययन में स्त्री **देवदत्ता** का कथन है । देवदत्ता श्रेष्ठी पुत्री थी किंतु वह राजराणी बन गई थी । राजा वेश्रमणदत्त ने उस पर मोहित होकर उसके पिता से माँगणी करके अपने पुत्र पुष्पन दी के साथ उसका विवाह कर दिया । कालान्तर में पिता के काल कर जाने पर पुष्पन दी राजा बन गया ।

पुष्पन दी राजा की माता ल बी उम्र की थी और वह राजा स्वय माता का परम भक्त था। माता श्रीदेवी करीब १०० वर्ष की हो गई थी । पुष्पन दी बहुत सारा समय माता की सेवा में देख-भाल में लगाया करता था । इस कारण देवदत्ता को अपने ऐशो-आराम एव भोगविलास में राजा से स तुष्ठि नहीं हो पाती थी । यों अस तोष में जीवन व्यतीत करते उसे १०० वर्ष की सासु श्रीदेवी खटकने लगी। उसी उधेड़बुन में एक दिन उसे मौका लग गया । श्रीदेवी सुखपूर्वक नींद में सोयी हुई थी । देवदत्ता ने लोहे का ड़ ड़ा गर्म किया और श्रीदेवी के शयनकक्ष में जाकर उसके गुदा द्वार में घुसेड़ दिया । जिससे श्रीदेवी को तीव्र वेदना हुई । वह जोर से चिल्लाई और उसी समय उसके प्राण निकल गये ।

आवाज सुनकर दासियाँ आई । उन्होंने देवदत्ता को कमरे में से निकलते हुए देख लिया । वे अ दर पहुँची तब तक तो श्रीदेवी मर चुकी थी । राजा को सूचना दी गई । राजा अत्य त दुःखपूर्वक माता के मृत्यु कर्म से निवृत्त हुआ और अपनी राणी देवदत्ता को राजपुरुषों के द्वारा पकड़वाकर तीव्रतम मुत्युद ड़ घोषित किया ।

उसके नाक, कान काट लिये गये, हाथों में हथकड़ियाँ, गले में लाल फूलों की माला पहनाई, वधसूचक(काले) वस्त्र युगल पहनाये, ब धनों से सारे शरीर को जकड़ दिया । शरीर के भी लाल गेरु पोतकर मारते-पीटते नगर में घुमाकर शूली चढ़ाने के स्थान पर ले जाने लगे । गौतमस्वामी ने यह दृश्य उधर से निकलते समय देखा । प्रभु से प्रश्न किया कि इस स्त्री ने ऐसे क्या कर्म किये जो इस प्रकार का नरक तुल्य दुःख भुगत रही है ? भगवान ने उसका पूर्व भव फरमाया–

इसी भरतक्षेत्र के सुप्रतिष्ठित नगर में सि हसेन राजा के ५०० राणियाँ थी । बहुत समय बीतने के बाद कभी राजा अपनी प्रमुख राणी **श्यामा** में आसक्त हो गया और अन्य राणियों की उपेक्षा कर दी । अपनी लड़कियों के दुःख को माताएँ सहन नहीं कर सकी । ४९९ माताओं ने **श्यामा** राणी को मारने की योजना बनाई । भेद खुल जाने से राजाने ४९९ माताओं को आदरपूर्वक निम त्रण भेजकर अपने नगर में बुलाया । एक बड़े भवन में ठहरने तथा खाने-पीने की व्यवस्था करवा दी । रात्रि में स्वय राजा सेवको को लेकर गया । चारों तरफ से दरवाजे ब द करवा कर आग लगवा दी । ४९९ माताएँ आक्र दन करती हुई मर गई । ऐसे पापकर्म

करता हुआ वह सि हसेन राजा २४०० वर्ष की उम्र पूर्ण कर छट्ठी नरक में गया वहाँ से २२ सागर की स्थिति पूर्ण कर श्रेष्ठी के घर देवदत्ता के रूप में जन्मा है । यहाँ भी अपने कर्मों से दुःखी होकर देवदत्ता आज ८० वर्ष की उम्र में मरकर प्रथम नरक में जायेगी ।अनेक दुःखमय भवभ्रमण करके अ त में ग गपुर में ह स बनकर मारी जावेगी । फिर श्रेष्ठी पुत्र बन-कर स यम लेकर प्रथम देवलोक एव महाविदेह क्षेत्र में जन्म धारण कर सर्व कर्मों से मुक्त बनेगी ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन से क्या शिक्षा-प्रेरणा मिलती हक्त ?

उत्तर– (१) स्वार्थ एव भोग की लिप्सा इतनी खतरनाक होती है कि व्यक्ति सारे सम्बन्ध भूल जाता है और क्रोध में अभितप्त व्यक्ति भी विभत्स घोर कृत्य कर लेता है। इसलिए ये तीनों अ ध कहे गये हक्त– क्रोधा ध, कामा ध और स्वार्थान्ध । ये अ धे पुरुष भविष्य को अ धकारमय बना कर नरक निगोद आदि में दीर्घकाल तक भटकते रहते हक्त । देवदत्ता, सि हसेन, पुष्प न दी आदि इसी प्रकार के उदाहरण है । **(२)** देवदत्ता पूर्व भव के अशुभ कर्मों से व्याप्त बुद्धिवाली थी । इसी कारण "विनाश काले विपरीत बुद्धि" हुई थी । अन्यथा तो उसे ८० वर्ष तो पूर्ण हो चुके थे । अब भोग लिप्सा से सास को निर्दयतापूर्वक मारना उसके लिए एक निरर्थक का अकाज ही था । उससे उसे सुफल के स्थान दुष्फल ही मिला । "हाथ भी जले होले भी नहीं मिले" ऐसी उक्ति चरितार्थ हुई । निरर्थक ही वह सभी के लिए दुःखदाई बनी । सास ने करूण वेदना पाई । खुद बेमोत करूण क्र दन करते नरक सरीखी वेदना एव अपमान भोगते हुए मरी और पति से पत्नि हत्या का पाप करवाया और अनेक नगरी के लोगों के कर्मब ध का निमित्त बनी । इस प्रकार एक ही अधर्मी पापी व्यक्ति कईयों का बिगाड़ा करने वाला हो जाता है । उसके इहभव परभव दोनों ही निंदित होते हक्त । **(३)** स सार के स्वार्थपूर्ण और क्लेशयुक्त स बन्धों और परिणतियों का यहाँ जीवित चित्रण किया गया है । एक व्यक्ति ४९९ सासुओं को जीवित जला देता है, तो एक अस्सी वर्ष की बहु सौ वर्ष की सासु को बुरी मौत मार देती है । पति अपनी पत्नी को कितना कठोर द ड़ दे सकता है । राजघराने का मिला हुआ सुख साज भी एक दिन कितना भय कर दुःखदाई नरकतुल्य बन जाता है । यह जानकर दुर्लभ मानव भव का स्वागत धर्माचरण से करके जीवन सफल कर लेना चाहिये । समय रहते स्वय ही च चल लक्ष्मी

एव परिवार स योगों का त्याग कर स यम तप में पुरुषार्थ कर लेना चाहिए। तभी मानव भव का मिलना वास्तव में सार्थक होता है। **(४)** कर्तव्य निष्ठा का एक अनुपम आदर्श भी इस अध्ययन में अ कित किया गया है। पुष्पन दी राजा स्वय अस्सी वर्ष की वय तक भी अपनी सौ वर्ष की उम्र वाली माता की अनेक प्रकार की सेवा परिचर्या में अपना अधिकतम समय व्यतीत करता था। यह राजा भगवान के शासन काल में हुआ था। माता-पिता की सेवा के लिए प्रेरणा देने वाला यह सजग एव सजीव उदाहरण है। पुष्पन दी राजा ने जिनधर्म स्वीकार किया या नहीं इस सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्ययन में कोई स केत नहीं है। **(५)** इस अध्ययन का नाम सहस्रोदाह भी मिलता है इस अपेक्षा पूर्वभव में उसने **करीब** १००० को जलाया होगा, जिसमें ४९९ **पत्नियों** को भी जलाया हो, ऐसा अनुमान होता है।

अध्ययन-१० : अ जुश्री

प्रश्न-१ : प्रस्तुत अध्ययन का कथा वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस दसवें अध्ययन में भी नवमे अध्ययन के समान एक स्त्री का कथानक है। श्रेष्ठीपुत्री अ जुश्री यौवन में आई तब विजयमित्र राजा के साथ उसकी शादी हुई। वह राजराणी बनकर सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी। कि तु थोड़े ही समय के बाद उसके योनि में शूल वेदना उत्पन्न हुई। राजा के द्वारा अनेक उपाय करने पर भी उसके निकाचित कर्मोदय से वह रोग शान्त नहीं हुआ। उसी असह्य वेदना में वह चिल्लाती, रोती समय व्यतीत करने लगी।

एक समय वह करुण शब्दों में आर्त विलाप करते हुए अपनी अशोक वाटिका में हाड़पिंजर शरीर वाली होकर पड़ी-पड़ी कराह रही थी, आक्रंदन कर रही थी। ऐसे समय में वहाँ से गौतमस्वामी का निकलना हुआ। एक राजराणी की यह दशा देखकर उन्हें विस्मय युक्त जिज्ञासा हुई। भगवान के पास पहुँचकर उस अ जुश्री के दुःख का कारण जानना चाहा। प्रभु ने फरमाया कि यह अ जुश्री पूर्वभव में एक वैश्या थी। ३५०० वर्ष उसने वशीकरण आदि के द्वारा राजा, म त्री, राजकुमार, सेनापति, राजकर्मचारी आदि हजारों पुरुषों को आकर्षित कर भोगासक्त बनकर उनके साथ भोगआन द मनाती रही। भोगों के दुष्परिणाम से वहाँ से

मरकर वह छट्ठी नरक में २२ सागरोपम के नरक दुःख भोग कर देवदत्ता राणी बनी है और अपने पूर्वकृत भोगासक्ति के कर्मों को यहाँ भी योनिशूल की अपार वेदना भोगती हुई और उस असह्य वेदना में स त्रस्त रहती हुई नब्बे वर्ष की उम्र में (१) मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगी। (२) मृगापुत्र के समान भवभ्रमण करती हुई (३) अ त में मयूर बनकर शिकारी से मारी जायेगी (४) फिर श्रेष्ठीपुत्र (५) प्रथम देवलोक एव (६) महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगी।

इस तरह दस अध्ययनों में ८ पुरुष और २ स्त्री के दुःखभरे जीवन वृत्ता त हक्त। जो उनके स्वय के पापकर्मों के फल स्वरूप हुए हक्त। पहले अध्ययन में मृगापुत्र, सातवें अध्ययन का उम्बरदत्त, आठवें अध्ययन का शौरिकदत्त और दसवें अध्ययन की अ जुश्री को किसी राजा आदि द्वारा द ड़ नहीं दिया गया था। शेष छहों अध्ययन के(अध्ययन-२ से ६ एव ९ के) पापी जीव राजद ड़ से मारे गये थे।

प्रश्न-२ : प्रस्तुत अध्ययन से क्या शिक्षा-प्रेरणा मिलती हक्त ?

उत्तर- (१) कोई भी तीव्रतम वेदना प्रायः लम्बे समय तक नहीं टिकती है। किन्तु कभी किसी के प्रगाढ़ कर्मों का उदय हो तो ऐसा हो भी जाता है। यथा-अ जुश्री की योनिशूल वेदना। **(२)** भोगविलास इन्द्रिय विषयों के सुख या आन द जीव के लिए मीठे जहर के समान है। कवि ने कहा भी है-

मीठे मीठे कामभोग में, फँसना मत देवानुप्रिया।
बहुत बहुत कड़वे फल पीछे, होते हक्त देवानुप्रिया॥

आगम में भी कहा है-**स सार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु कामभोगा।** अर्थात् ये कामभोग मोक्ष के विरोधी एव अनर्थों की खान के समान है। अतः इनसे विरक्त होकर सदा के लिये भोगों का त्याग कर देने वाला पुरुष स सार सागर से तिर जाता है। **(३)** व्यक्ति अपने घर घराणे का, सत्ता का या धन का अह भाव घम ड़ करता रहता है, किन्तु तीव्र कर्मोदय होने पर ये कोई भी त्राणभूत, शरणभूत नहीं होते हक्त। जीवन में धर्म के स स्कार न हों तो वह जीव ऐसे दुःखों से महा दुःखी बनता है और आर्तध्यान एव स कल्प विकल्पों में मरकर आगे भी दुःख पर परा को बढ़ाता है। **(४)** किन्तु यदि जीवन को धर्मस स्कारों, आचरणों से भावित एव अभ्यस्त किया हो तो ऐसी विकट दुःखमय घड़ियों में भी

व्यक्ति कर्मों का एव आत्मा का बोध स्मृतिपट पर लाकर शान्ति से उन कर्मों को चुका कर आगे का भविष्य कल्याणमय बना सकता है । (५) अत: यथावसर स योगवश जीवन को धर्म स स्कारमय बनाने का भी लक्ष्य रखना चाहिए । धर्म के स स्कार एव आत्मबोध जीव को दु:ख में भी सुखी रहने की अनुपम कला देने वाला है । स कट की घड़ियों में भी अ तर्मन में प्रसन्नचित्त रहना धर्म ही सिखाता है । (६) धर्म आचरण के अभ्यास एव चि तन से अन त आत्मशक्ति एव उत्साह जागृत होता है । ऐसा धर्मनिष्ठ व्यक्ति कर्मोदय को अ जुश्री के समान रो-रोकर नहीं भुगतता है किन्तु गज-सुकुमाल मुनि, अर्जुनमाली अणगार आदि की तरह शान्तिपूर्वक अपने कर्ज को चुकाकर सुखी बन जाता है । (७) इस प्रकार इस स पूर्ण दु:ख विपाक में हिंसक, क्रूर, भोगासक्त, स्वार्थान्ध, मा साहारी एव शराबखोरों के जीवन चित्रण द्वारा इन कृत्यों का कटु परिणाम बताया गया है एव शुद्ध, सात्विक, व्यसन मुक्त तथा पाप मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा की गई है ।

द्वितीय श्रुतस्क ध : सुखविपाक

अध्ययन-१ से १०

प्रश्न-१ : इस सुखविपाक नामक द्वितीय श्रुतस्क ध का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस श्रुतस्क ध में १० अध्ययनों में दस पुण्यशाली श्रेष्ठ आत्माओं का जीवन अ कित किया गया है । पूर्व भव में उन्होंने शुभ भावों से सुपात्र दान दिया था और वर्तमान भव में भी देशविरति एव सर्वविरति धर्म को यथासमय स्वीकार किया । स यम आराधना करके कोई उसी भव में और कोई कुल १५ भवों से मुक्त हुए ।

इस सुखविपाक सूत्र के वर्णन को परम म गलकारी मानकर लघुकाय इस सूत्र विभाग का स्वाध्याय अनेक मोक्षार्थी गृहस्थ एव श्रमण करते हैं एव इस शास्त्र को क ठस्थ धारण भी करते हक्त । छोटा और सुखकारी वर्णन होने से चातुर्मासिक प्रवचनों में भी इस शास्त्र को अत्यधिक प्राथमिकता प्राप्त होती है ।

इसके प्रथम अध्ययन में विस्तृत वर्णन है । शेष ९ अध्ययन उसी के समान होने से स क्षिप्त हक्त । नित्यपाठ की अनेक पुस्तकों एव स्वाध्याय

माला आदि में भी सुख विपाक सूत्र का स कलन प्राप्त होता है । मौलिक रूप से दु:खविपाक एव सुखविपाक दोनों विभाग मिलकर ही ग्यारहवाँ अ तिम अ गशास्त्र हक्त ।

प्रश्न-२ : प्रथम अध्ययन में सुबाहुकुमार के पूर्व भव का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- हस्तिनापुर नगर में सुमुख नामक धनाढ्य गृहपति(सेठ) रहता था । धर्मघोष स्थविर विचरण करते हुए वहाँ पधारे । सुदत्त नाम के अणगार मासखमण के पारणे के लिए गुरु की आज्ञा लेकर नगर में गये । भ्रमण करते हुए वे सुमुख गाथापति के घर पर पहुँच गये ।

सुमुख सेठ ने मुनिराज को भिक्षार्थ घर में आते हुए दूर से ही देख लिया । देखते ही वह हर्षित हुआ । आसन से उठा, पाँव से पादुकाएँ (पगरखी) निकाली, मुँह के सामने वस्त्र का उत्तरास ग लगाया । कुछ चलकर सामने गया, हाथ जोड़कर तीन बार आवर्तन के साथ व दन नमस्कार किया एव मुनिराज को भोजन गृह में लाया ।

सुमुख "आज मक्त मुनिराज को पर्याप्त आहार दान करुँगा" इस विचार से अत्य त प्रसन्न होता है, देते समय भी बहुत हर्षित होता है और देने के बाद भी बड़ा आन द विभोर होकर अपने आप को कृतकृत्य होने का अनुभव करता है । इस प्रकार (१) त्रैकालिक भाव विशुद्धि से, (२) लेने वाले मासखमण के तपस्वी भवितात्मा अणगार का स योग मिलने से, एव (३) घर में सहज निष्पन्न प्रासुक आहार का दान देने से सुमुख सेठ ने अपना स सार भ्रमण सीमित कर दिया अर्थात् उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई ।

सुपात्र दान से प चदिव्य- उसके घर में प च दिव्य प्रगट हुए- (१) स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि हुई (२) पुष्प वृष्टि हुई (३) देवों ने ध्वजा फहराई (४) देव दु दुभी बजी और (५) अहो दान , अहो दान की आकाश में दिव्य वाणी हुई । यह चर्चा सारे नगर में फैल गई और सर्वत्र सुमुख गाथापति के नाम की सराहना की जाने लगी ।

सुमुख ने यथासमय मनुष्यायु का ब ध किया और वहाँ से अनेक वर्षों की आयु पूर्ण करके यहाँ सुबाहुकुमार के रूप जन्म लिया । सुपात्र दान के सर्वांग सुन्दर स योग से उसने इस प्रकार की ऋद्धि स पदा एव शरीर स पदा प्राप्त की है । इसी कारण से यह देखने में सभी को वल्लभ लगता है ।

प्रश्न–३ : सुबाहुकुमार के वर्तमान जीवन स ब धी वर्णन यहाँ किस प्रकार है ?

उत्तर– हस्तीशीर्ष नामक नगर में अदीनशत्रु राजा राज्य करता था । उसके धारिणी प्रमुख एक हजार राणियाँ थी । धारिणी राणी के सुबाहुकुमार नामक पुत्र था । अध्ययन काल में उसने पुरुषों की बहत्तर कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया । यौवन वय प्राप्त होने पर माता-पिता ने पांच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह किया। अखूट धन प्रीति दान में दिया एव ५०१ भव्य सु दर महल तैयार करवा कर दिए । वहाँ सुबाहुकुमार सुखपूर्वक रहने लगा ।

किसी समय विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी उस हस्ती-शीर्ष नगर में पधारे । परिषद् धर्मोपदेश श्रवणार्थ उपस्थित हुई । जितशत्रु राजा भी आया एव सुबाहुकुमार भी । भगवान ने धर्मोपदेश दिया । राजा एव नगरवासी उपदेश श्रवण कर पुनः नगर में लौटे ।

सुबाहुकुमार ने भगवान से व दन नमस्कार करके निवेदन किया कि हे भ ते ! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन–वीतराग धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रूचि करता हूँ। आपके श्री चरणों में जो भी राजा, राजकुमार, राजकर्मचारी, सेठ, सेनापति महाव्रत धारण कर अणगार बने हक्त, उन्हें धन्य है । मक्त उनकी तरह घर का त्याग कर स यम ग्रहण नहीं कर सकता हूँ किन्तु गृहस्थ जीवन में रहते हुए श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करना चाहता हूँ। तदन तर उसने अपनी योग्यता एव रुचि अनुसार मर्यादाएं धारण कर भगवान से श्रावक व्रत स्वीकार किए । अब सुबाहुकुमार के जीवन में दूसरा मोड़ आ गया था । वह ऐशो-आराम के साथ कुछ समय धर्म साधना में लगाने लगा । महिने में अष्टमी, चतुर्दशी, पूनम, अमावश को प्रतिपूर्ण पौषध करके आत्मजागरण करने लगा ।

सुबाहुकुमार के वैभव एव सौम्यता से गौतमस्वामी का चित्त आकृष्ट हुआ । उन्होंने भगवान से पृच्छा करी कि सुबाहुकुमार देखने में बड़ा ही इष्ट, का त, प्रिय, मनोज्ञ, सौम्य एव सौभाग्यशाली लगता है, साधुजनों को भी प्रिय, आन दकारी, मनोहर लगता है तो पूर्व भव में इसने ऐसा क्या काम किया है ? क्या दिया, क्या खाया, क्या गुण उपलब्ध किए और किनके पास में आर्यधर्म श्रवण कर उसका अनुपालन किया, जिससे यह ऐसा आकर्षक एव स्नेहपात्र बन गया है ? भगवान ने सुबाहुकुमार के पूर्व भव का वर्णन किया । यह वर्णन सुनकर गौतमस्वामी ने अगला प्रश्न भी

पूछ लिया कि भ ते ! सुबाहुकुमार गृहत्याग कर कभी आपकी सेवा में अणगार बनेगा । भगवान ने फरमाया कि कुछ समय श्रावक व्रतों का पालन करने के बाद स यम धारण करेगा । यथासमय भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया ।

श्रमणोपासक के श्रेष्ठ सभी गुणों से स पन्न वह सुबाहुकुमार एक समय पौषध करके आत्मजागरण कर रहा था । उस समय ऐसे मनोगत स कल्प उठे कि वह क्षेत्र धन्य है, जहाँ भगवान विचरण कर रहे हक्त । वे भव्य जीव धन्य है जो भगवान के पास स यम या श्रावक व्रत स्वीकार कर रहे हक्त । यदि भगवान विहार करते हुए यहाँ पधारें तो मक्त भी स यम ग्रहण करुँ । सुबाहुकुमार के मनोगत भावों को जानकर भगवान विचरण करते हुए पुनः वहाँ पधारे । माता-पिता की आज्ञा लेकर सुबाहु दीक्षित हो गया । समिति-गुप्तिव त अणगार बन गया । उसने ग्यारह अ गों का अध्ययन (क ठस्थ ज्ञान) किया, विविध तपस्याएँ की और अ त में सुबाहु अणगार एक महिने के स थारे से स्वर्गवासी हुए । सुबाहुकुमार आगे क्रमशः सात मनुष्य भवों में स यम की आराधना करेगा और बीच में पहला, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, नवमा, ग्यारहवाँ देवलोक एव सर्वार्थसिद्ध अणुत्तर विमान यों सात देव के भव करेगा । उसके बाद चौदहवें एव इस भव के साथ प द्रहवें भव में स यम तप की आराधना करके मुक्ति प्राप्त करेगा ।

प्रश्न–४ : शेष नौ अध्ययनों का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– दूसरे से लेकर दसवें अध्ययन तक सभी में नगरी आदि के नामों का अ तर है । शेष सारा वर्णन एक सरीखा है । इसलिए स क्षिप्त पाठ से ही ये अध्ययन सूचित कर दिए हक्त अर्थात् जन्म, बचपन, कला-शिक्षण, पाणिग्रहण, सुखभोग, धर्म-श्रवण, श्रावकव्रत, आत्मजागरण, स यम ग्रहण, तप, अध्ययन, देव-मनुष्य के १५ भव एव मोक्ष का वर्णन एक समान समझ लेना चाहिए ।

पूर्व भव का वर्णन भी सुबाहुकुमार के समान है । यथा– गौतम स्वामी की पृच्छा, सेठ का भव, मासखमण के पारणे में अमुक मुनि या तीर्थंकर का आगमन, शुद्ध भावों से दान, दिव्य वृष्टि, मनुष्यायु का ब ध इत्यादि । पहले दूसरे तीसरे एव दसवें यों चार अध्ययन में प द्रह भवों के बाद मोक्ष जाने का वर्णन है और शेष **छः अध्ययनों** में उसी भव में मोक्ष जाने का वर्णन है । सूत्र वर्णन शैली को देखते हुए अध्ययनों में इस प्रकार

के अ तर होने का कोई कारण ज्ञात नहीं होता है अर्थात् उपासकदशा, अ तगड दशा, अणुत्तरोपपातिक एव इसी सूत्र के दुःखविपाक के १० अध्ययनों के समान इन अध्ययनों में भी भव पर परा का वर्णन एक समान ही होना चाहिये ।

अतः ऐसी स भावना की जा सकती है कि स क्षिप्त पाठ में कभी लिपि दोष से यह भिन्नता आ गई होगी अर्थात् **"जाव सिज्झिस्सइ"** के स्थान पर **"जाव सिद्धे"** लिखने की भूल चल पड़ी हो । इस भूल को मान्य (सुधार)करने पर उक्त सभी सूत्रों के अध्ययन वर्णनों की एकरूपता रह सकती है । **तत्त्व केवली गम्य ।** परन्तु इसके निर्णय के लिए शोध पूर्वक प्राचीन प्रतियों का अध्ययन करना चाहिए ।

प्रश्न–५ : सुपात्रदान से सुबाहुकुमार आदि के आयु बाँधने स ब धी विचारणा किस प्रकार है ?

उत्तर– सुपात्र दान देने से सम्यकत्व प्राप्ति और स सार परित्त करना, समझना चाहिए । मनुष्यायु का ब ध जीवन के अन्य क्षणों में होना समझना चाहिए । क्यों कि स सार परित्तिकरण सम्यकत्व प्राप्ति के अन तर होता है और सम्यकत्व प्राप्ति के समय या सम्यक्त्व की मौजुदगी के समय कोई भी मनुष्य मनुष्यायु का ब ध नहीं करता है । यह भगवतीसूत्र में वर्णित सैद्धान्तिक तत्त्व है । अतः जीवन के अन्य क्षणों में आयु ब ध मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है ।

स क्षिप्त पाठों में, वर्णन पद्धति में कभी दूरवर्ती वर्णन भी निकट हो जाते हक्त और निकटवर्ती वर्णन भी दूर हो जाते हक्त यह स्वाभाविक है किन्तु अर्थ करने में या समझने में आगम अनुभवी विद्वानों को विवेक रखना आवश्यक समझना चाहिए । अर्थात् अन्य आगम तत्त्वों से अबाधित अर्थ–तात्पर्यार्थ कर लेना चाहिये ।

स क्षिप्त पाठों के विषय में या वर्णकों के विषय में इस प्रकार की विवेक बुद्धि नहीं रखने पर अनेक आगम स्थलों में कई असमन्वय एव श काएँ उद्‌भूत हो सकती है, जिनका कोई समाधान नहीं होगा । अतः उक्त दृष्टिकोण रखना ही श्रेयस्कर है ।

सार– सुपात्र दान आदि के समय समकित की प्राप्ति होती है और अन्य क्षणों में पहले या पीछे सम्यकत्व के अभाव में मनुष्यायु का ब ध होता है ।

प्रश्न–६ : सुपात्रदान को श्रेष्ठ बनाने हेतु किन-किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये ?

उत्तर– सुपात्र दान देने में **त्रैकालिक हर्ष** होना चाहिये– (१) दान देने का अवसर सुस योग प्राप्त होने पर (२) दान देते वक्त (३) एव दान देकर निवृत हो जाने पर ।

सुपात्र दान की तीन शुद्धि– (१) दाता के भाव शुद्ध हो विवेकवान हो एव वह मुनि के नियमों के अनुसार शुद्ध अवस्था में भी हो (२) लेने वाले मुनिराज सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एव सम्यक्चारित्र के पालन करने वाले आत्मार्थी सुश्रमण हो (३) देय वस्तु अचित्त एव कल्पनीय हो, उद्‌गम एव एषणा दोषों से रहित हो ।

उक्त तीन शुद्धि एव तीन हर्ष हो और दीर्घ तपस्या का पारणा हो तो वहाँ देवता प्रसन्न होकर पाँच दिव्य प्रकट करते हक्त ।

प्रश्न–७ : श्रावक के लिये गोचरी स ब धी तत्त्व इस अध्ययन से क्या प्रतिफलित होते हक्त ?

उत्तर– घर में मुनिराज के गोचरी पधारने पर किस शालीनता से विधिपूर्वक व्यवहार करना चाहिये, यह इन अध्ययनों में वर्णित सुदत्त सेठ आदि से सीखना चाहिए । आजकल मुनिराज के घर में पधारने पर जो अतिभक्ति या अभक्ति, अविवेक एव दोषयुक्त व्यवहार किया जाता है, उसमें स शोधन करना चाहिए । जिससे श्रावक श्राविकाएँ भी दोष मुक्त व्रत आराधक हो सके । अर्थात् मुनिराज को बुलाकर लाना नहीं, स्वतः ही आने की आशा या अपेक्षा रखनी चाहिए । घर के निकट आने पर घर में आवाज देना, सचित्त पदार्थों को इधर-उधर करना, देय पदार्थों में कुछ की कुछ प्रवृति करना, अकल्पनीय पदार्थ को कल्पनीय करना; इत्यादि प्रवृतिएँ नहीं करनी चाहिए । जो चीजें जिस अवस्था में है एव देयपदार्थ भी जो जिस अवस्था में है उसमें उतावल या अतिभक्ति से कुछ भी परिवर्तित न करते हुए, शान्ति और विवेक पूर्वक जो भी देय पदार्थ कल्पनीय स्थिति में पड़े हक्त, उन्हें ही शुद्ध सरल भावों से मुनिराज की आवश्यकता, इच्छा एव निर्देशानुसार बहराने(देने) चाहिए । इस विषय में एषणा के स कलित ४२ दोषों का एव गोचरी सम्बन्धी अन्य विवेक व्यवहारों का भी श्रावक को यथायोग्य ज्ञान अवश्य होना चाहिए । इनका स्पष्टीकरण अलग पुस्तक में प्राप्य है ।

प्रश्न–८ : गोचरी के समय मुनिराज के साथ विनय व्यवहार का विवेक किस तरह रखना चाहिये ?

उत्तर– गोचरी के लिये मुनिराज के स्वागत रूप में जो यहाँ व दन नमस्कार का वर्णन है, उससे तीन बार उठ-बैठकर प चा ग झुका कर व दन करना नहीं समझ लेना चाहिए। ऐसा करना अविधि एव अविवेक कहलाएगा। क्यों कि प चा ग नमा कर सविधि व दना, गोचरी या मार्ग में गमनागमन के समय नहीं किया जाता है। वहाँ तो केवल विनय व्यवहार एव आदर सत्कार ही अपेक्षित होता है। यहाँ सूत्र में भी हाथ जोड़ कर तीन आवर्तन करके मस्तक झुकाकर **मत्थए व दामि** ऐसा दूर से करने का ही आशय रहा हुआ है।

मुनिराज को रोकना, तीन बार उठ-बैठ करना या चरण स्पर्श करना आदि विधि यहाँ अपेक्षित नहीं है, ऐसा समझना चाहिये। क्यों कि गोचरी के समय इस प्रकार मुनिराज को रोकना एव उन्हें विल ब करना अविवेक एव आशातना रूप होता है।

सार– गोचरी एव मार्ग में मुनिराज का मात्र आवर्तन पूर्वक स्वागत अभिन दन एव अभिवादन करना चाहिये।

आसन छोड़ना, पगरखी(जूते-चप्पल) खोलना, मुँह के सामने वस्त्र का उत्तरास ग लगाना, ये विनय-व दन के आवश्यक अ ग(अभिगम) है। सुमुख गाथापति आदि ने घर पधारे मुनिराज का विनय करने के लिए भी इन नियमों का पालन किया था। अतः मुनिराजों की सेवा में पहुँचना हो तो उत्तरास ग लगाने का कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए। उत्तरास ग लगाये बिना मुनिराज की सेवा में जाना श्रावकाचार के विपरीत आचरण है।

प्रश्न–९ : इस अध्ययन में अन्य भी कौन से ज्ञेय-तत्त्व प्राप्त होते हक्त ?

उत्तर– **(१)** भाग्यशाली आत्माएँ प्राप्त पुण्य सामग्री में जीवन भर आशक्त नहीं रहती हक्त किन्तु एक दिन उससे विरक्त होकर उसका त्याग कर देती है। **(२)** स यम स्वीकारने का अवसर जब तक न आवे तब तक श्रावक व्रतों को अवश्य धारण कर लेना चाहिए। दसों अध्ययन में वर्णित राजकुमारों ने विपुल भोगभय जीवन के होते हुए भी स पूर्ण बारह व्रत स्वीकार किए थे। वे राजकुमार होते हुए भी महिने के छः पौषध भी धारण करते थे। अ त मे शक्ति रहते स यम भी ग्रहण किया। **(३)** भुक्तभोगी जीवन के अन तर दीक्षा लेने वाले उक्त सभी राजकुमार स यमग्रहण करने के बाद ११ अ गों के अध्येता–क ठस्थ धारण करने वाले बने थे। आज भी श्रमणों को

ऐसे आदर्शों को सम्मुख रख कर, आगम अध्ययन अध्यापन का प्रमुख लक्ष्य रखना चाहिए एव गच्छ के अधिकारी श्रमणों को आगम निर्देशानुसार अपने-अपने स घ में अध्ययन की सुव्यवस्था करनी चाहिए। **(४)** पौषध में श्रावक को आत्मगुण विकास की धर्म जागरणा करनी चाहिए। **(५)** पाँच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि में देवकृत अचित्त पुष्प समझना चाहिए। **(६)** श्रावक स्वय तो गृहस्थ जीवन में रहता है फिर भी मुनि बनने का सदा अनुमोदन करता है, उन्हें धन्य-धन्य समझता है। श्रावक के दूसरे मनोरथ के रूप में वह स यम प्राप्ति के अवसर की चाहना एव प्रतीक्षा करता है।

प्रश्न–१० : इन सुबाहु आदि श्रमणों की भिक्षाचर्या से आज के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट साधना तत्त्व क्या स्पष्ट होता है ?

उत्तर– दस अध्ययनों में वर्णित मासखमण के तपस्वी मुनि पारणा लेने गुरु आज्ञा लेकर स्वय ही गये, यह एक आगमिक श्रेष्ठ पद्धति रही है जिसका दिग्दर्शन अनेक आगमों में मिलता है। आज इसे ही अवगुण रूप समझा जाता है अर्थात् स्वत त्र गोचरी करना साधु का आदर्श गुण न माना जाकर अवगुण और हेय माना जाता है। जिससे अनेक उत्तमोत्तम साधनाओं का, अभिग्रहों का स्वतः विच्छेद हो रहा है। अतः इन आगम वर्णनों का सम्यक् अनुचि तन कर गुण रूप में इन पर पराओं का सम्यक्तया पुनरुत्थान करना चाहिये। विशेष जानकारी के लिए सारा श पुष्प–४, सूयगड़ा ग सूत्र के **एक चर्या** परिशिष्ट का अवलोकन कीजिए।

॥ विपाक सूत्र स पूर्ण ॥

॥ ज्ञाता आदि छ अ ग स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग–५ स पूर्ण ॥

परिशिष्ट-१ : प्रश्नोत्तर

प्रश्न-१ : देवी देवता की मान्यता-पूजा करने से क्या समकित में दोष लगता है तथा समकित नष्ट होती है ?

उत्तर- कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र की श्रद्धा प्ररूपणा मान्यता करने का त्याग श्रावक को ६ आगार सहित होता है । ६ आगार में राजा, देवता, माता-पिता आदि-आदि का आगार होता है । आगार का सेवन करने से कोई भी व्रत भ ग नहीं होता है । १२ व्रतधारी श्रावक राजा हो तो उसको युद्ध में जाने का भी आगार होता है । वहाँ उसे मनुष्य प चेंद्रिय की हत्या करने पर भी प्रथम व्रतभ ग नहीं होता है, क्यों कि सापराधी का आगार होने से । उसी तरह समकित के ६ आगार सभी तीर्थंकर के शासन में श्रावकों के लिए होते है ।

अरणक श्रावक अठारहवें तीर्थंकर का श्रावक था । देवता समकित की परीक्षा करने आया था । जहाज को समुद्र में डुबा देने की, नष्ट करने की धमकी दी तथा डराया भी । तो भी अरणक श्रावक परीक्षा में पास हुआ । वही श्रावक उसी जहाज में चढने के समय धूप-दीप पूजा-पाठ, बलिकर्म, हाथ के प जे का छापा लगाना वगैरह भी किया । वह श्रावक भी समकित में पास रहा था । यह वर्णन ज्ञातासूत्र के आठवें मल्ली भगवती के अध्ययन में आता है ।

प्रश्न-२ : मृत कलेवर को प्रणाम करना मिथ्यात्व है क्या ?

उत्तर- जहाज की पूजा, धूप-दीप उत्कृष्ट कोटी की समकित वाला श्रावक चौथे आरे में कर सकता है क्यों कि श्रावक के ६ आगार होते हक्त । तो गृहस्थ अपने लौकिक कृत्य रीति रिवाज से अपने पारिवारिक मृत व्यक्ति की कोई भी पर परा विधि या कुल पर परा का पालन करे तो उसमें उसकी समकित नष्ट होना नहीं कहा जा सकता ।

फिर भी ऐसे श्रावकों को हम मध्यम कोटी के समकिती मान सकतेक्त । उत्कृष्ट दर्जे के श्रावक देवी देवता की सहाय वा छे नहीं । आगमोक्त अरणक श्रावक तो उत्कृष्ट कोटी की समकित सहित श्रावक था तो भी उसने सभी लौकिक कृत्य जहाज के लिये किये थे । पूजा-विनय भी(नमस्कार भी) किये थे । व दन-नमस्कार तो पाप नहीं पुण्य

है । किन्तु मिथ्या धर्म प्रवर्तकों को देव गुरु मान करके धर्म बुद्धि से विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का पाप लगता है ।

निशीथ सूत्र के अनुसार शिष्य के द्वारा आचार्य-गुरु की अनुपस्थिति में उनके आसन पर पाँव लग जाय तो उस आसन को प्रणाम किये बिना अर्थात् हाथ से चरणस्पर्श जैसा किये बिना सीधा चला जाय तो उसे गुरुचौमासी प्रायचित्त आता है । यह आसन का विनय सम्मान भी गुरु की दृष्टि से होता है । अतः कोई अपने माता पिता आदि परिवार के पूज्यजनों का मृत स स्कार की जो कुल पर परा हो उसमें चरण स्पर्श लोक रीति या कुल नीति समझ के कर ले तो उसकी समकित नहीं चली जाती है और इसमें समकित चली जाने का कोई कहे तो उसे अति प्ररूपणा का दोष लगना समझ लेना चाहिये ।

यदि कोई समकितधारी या व्रतधारी श्रावक गृहस्थ जीवन में निवृति लेकर पडिमा धारण करे । जिसमें प्रथम पडिमा समकित की होती है । उसमें वह किसी प्रकार का आगार नहीं रखता है तभी पडिमा होती है । उसके पालन के समय वह श्रावक कोई भी लौकिक रूढ़ी वाले रीति रिवाज का पालन आचरण नहीं कर सकता है । यह उत्कृष्ट श्रावक अवस्था है । किन्तु प्रायः श्रावक लोक मध्यम दर्जे के होते हक्त उन्हें आगार सेवन करना कमजोरी है ऐसा समझना चाहिये । क्यों कि विशिष्ट दर्जे के उच्च श्रावक देवता की सहाय वा छे नहीं । मध्यम दर्जे के साधु भी सा प बिच्छु भूतप्रेत का झाडा-झपटा आदि करावे तो उन्हें मिथ्यात्व नहीं लगता है और प्रत्येक गच्छ में ऐसी अपवाद परिस्थिति आ सकती है । तभी समझ में आता है कि उसमें मिथ्यात्व नहीं लगता है क्यों कि वह तो उपचार है ।

ऐसे तो कई धर्म वाले लोग कहते हक्त कि कर्म सिद्धा त की श्रद्धा रखने वाले को औषध-उपचार भी कराना नहीं कल्पता है । क्यों कि कर्म सिद्धा त की श्रद्धा-समकित में दोष लगता है । किन्तु किसी के उत्कृष्टाई में कहने से कुछ नहीं होता है । हमें तो आगम से खोजना समझना चाहिये कि कुल देवता की मान्यता वगैरह आगम वर्णित मध्यम दर्जे के श्रावकों के पूर्ण त्याग नहीं होता । तभी अरणक श्रावक ने नावा का पूजन आदि विधिएँ की थी जो कि उत्कृष्ट समकित वाला श्रावक सिद्ध हुआ था, देवता ने भी उसे धन्यवाद दिया था और वह

व दन नमस्कार करके दो कु डल की जोडी ईनाम देकर गया था ।

अतः अनेका त से भरे भगवान के शासन के श्रावक जीवन को एका त दुराग्रह में नहीं डाला जा सकता । साधु के जीवन में भी कितने ही नियमों में अनेका त होता है । पानी की एक बू द का स घट्टा भी नहीं करने वाला साधु समय आने पर नदी में चल सकता है, नावा में बैठ सकता है, यह शास्त्र में वर्णित है ।

स्त्री का स घट्टा भी नहीं करने वाला साधु नदी में डूबती हुई साध्वी को पकड कर तैरकर निकाल सकता है । पागल या देव प्रकोप से हैरान साध्वी को पकडकर स भाल सकता है । वैसे ही साध्वी भी पागल आदि साधु को पकड कर स भाल सकती है । ऐसे अनेका त भरे जिनशासन के अ दर बात-बात में कह देना कि समकित चली जाती है, यह अधूरी प डिताई का प्रगटीकरण मात्र होता है । श्रावक के अनेक दर्जे हो सकते हक्त । वैसे समकित के भी १० दर्जे तो उत्तराध्ययन सूत्र में बताये हक्त तथा साधु के भी ६ दर्जे भगवती सूत्र में बताये ही हक्त और भी अनेक दर्जे छट्ठे या पाँचवें गुणस्थान में होते ही हक्त । ध्यान यही रखना है कि उत्कृष्टतम दर्जे में पहुँचने वाले साधु श्रावक को इन सब आगारो का, लाचारी दर्जों का त्याग करना श्रेष्ठ है किन्तु जो आगार सेवन करे उसे व्रत भ ग कहना गलत होता है ।

प्रश्न–३ : विग्रहगति में समुद्घात कितनी मानना, ऋजुगति में कितनी और वक्रगति में कितनी, वेदनीय, कषाय, मारणा तिक, वैक्रिय चार में से ?

उत्तर– वाटे वहेता जीव में वास्तव में दो समुद्घात ही होती है मारणा तिक समुद्घात करने वाला ऋजुगति वक्रगति दोनों से मर सकता है । मारणा तिक समुद्घात जीव के मरने का अ तर्मुहूर्त समय रहता तब होती है जब कि ऋजुगति वक्रगति तो मरने के बाद होती है । उस समय मारणा तिक समुद्घात समाप्त हो जाती है । वैक्रिय भी समाप्त हो जाती है ।

प्रश्न–४ : श्रेणी में काल करने वाला अधिक से अधिक कितने भव करेगा ? (जघन्य-उत्कृष्ट)

उत्तर– श्रेणी में काल करने वाला अणुत्तर विमान में जाता है । अतः इस मनुष्य भव सहित उत्कृष्ट १५ भव हो सकते है । जघन्य तीसरे

भव मे अर्थात् अनुत्तर विमान से आकर सीधा मानव भव से मोक्ष जा सकता है ।

प्रश्न–५ : भगवान की देशना समवशरण में निर तर कितने घन्टे चलती है ?

उत्तर– भगवान की देशना जब भी पर्षदा जम जाती है जब भी और जब तक केवलज्ञान में भाषा की फरसना होती है देशना चलती है । कभी आधा घ टा, कभी १-२ घ टा भी हो सकती है । इस स ब ध में आज भी हमारे लिये कोई कायदा नहीं है । प्रस गानुसार १५-२० मिनट भी छोटा प्रवचन हो सकता है और घ टो तक भी ।

अनुमानतः सुबह दर्शन करने बगीचे में जो परिषद आने का वर्णन है उस समय १ घ टा करीब प्रवचन होता रहा होगा । तभी श ख पुष्कली घर जाकर फिर पौषध करते हक्त ।

प्रश्न–६ : गर्भ का जीव प्रत्येक मास वाला देवगति में जाता है तो प्रत्येक मास में कितने मास वाला जायेगा ? इसी तरह तिर्यंच के लिये अ तर्मुहूर्त बताया तो क्या तिर्यंच भी गर्भ अवस्था में रहा हुआ देवगति में जा सकता है ?

उत्तर– शास्त्रकार जब महिना-वर्ष आदि का खुलासा नहीं करना होता है तभी **पुहुत्त** शब्द(अनेक) का प्रयोग करते है, उससे दो महीने वाला १० हजार वर्ष का देव बन सके तो ९ महीने वाला एक दो सागरोपम का देव भी बन सके इस तरह बिना आग्रह के समझना चाहिये । क्यों कि जब भगवान बिना आग्रह का शब्दप्रयोग करते हक्त कि अनेक मास, अनेक वर्ष; तो फिर हमे भी उसी में स तोष करना चाहिये और विश्लेषण में अलग अलग स्थिति के देवों का समझ लेना चाहिये । तिर्यंच भी गर्भ में से नरक तथा देव में जा सकता है ।

प्रश्न–७ : क्या अवधिज्ञान की तरह मनःपर्यव ज्ञान के भी दर्जे होते हक्त ? अगर होते हक्त तो किस तरह ?

उत्तर– क्षयोपशम की अपेक्षा एक मनःपर्यव ज्ञानी दूसरे मनःपर्यव ज्ञानी से अन तगुण हीन और अधिक परस्पर हो सकते हक्त । ऐसा प्रज्ञापना सूत्र पद-५ से समझा जाता है । बाकी सूक्ष्म क्या अ तर हो सकता है वह तो केवली ही समझ सकते हक्त ।

०००००